पं. दीनदयाल उपाध्याय का

एकात्म मानववाद दर्शन

लेखक

डॉ. विनोद मिश्रा

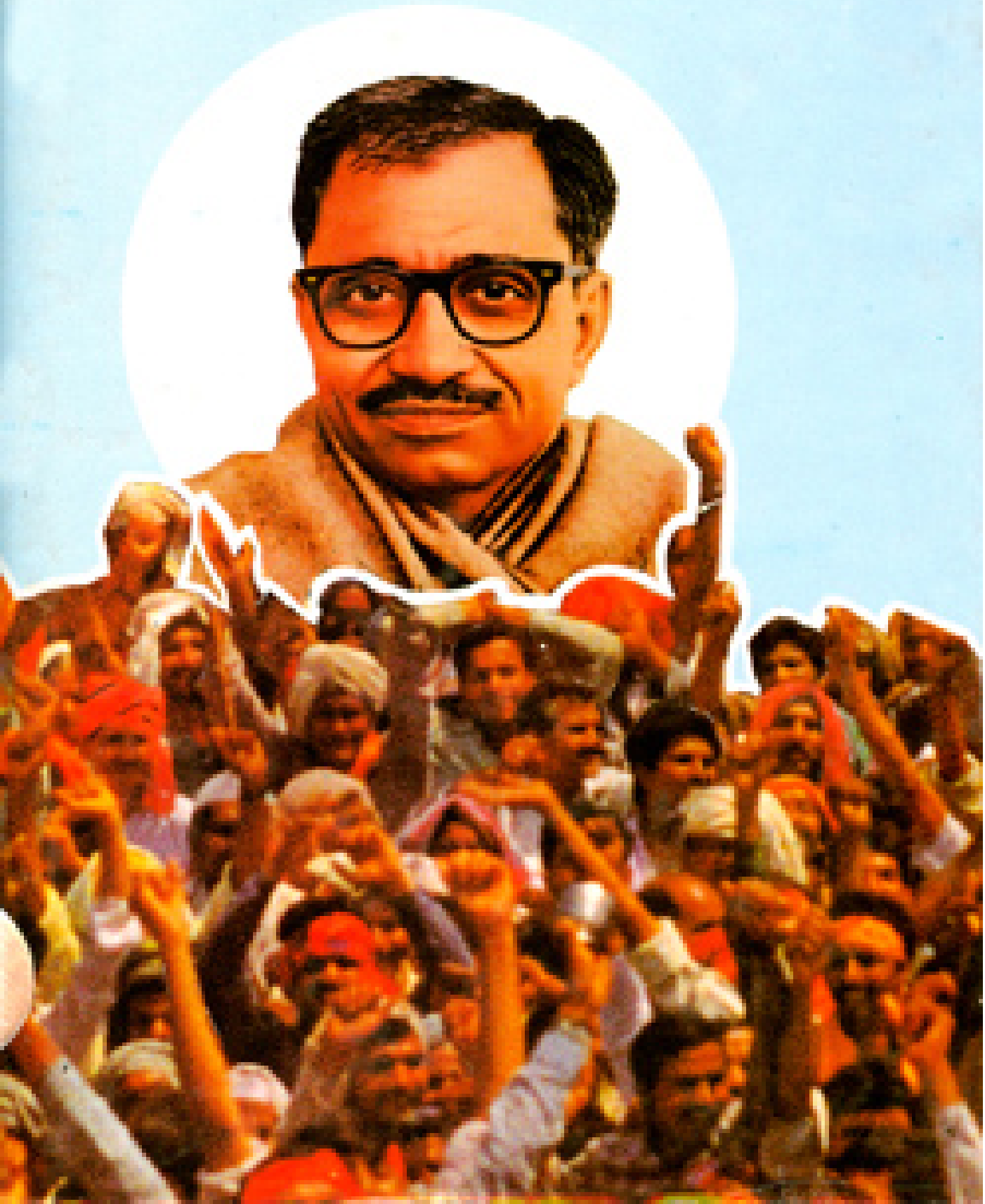

प्रस्तावना

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के निकट रहने का सौभाग्य ज्यादा तो प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु वे जब भी जबलपुर आते, इस दौरान का अल्प सानिध्य प्राप्त कर लगता कि जैसे हमारा उनका सम्बन्ध काफी पुराना है। जनसंघ के अखिल भारतीय महामंत्री, फिर अखिल भारतीय अध्यक्ष बनने के बाद तथा इसके बाद भेंट के दौरान कभी उनके इस व्यापक स्वरूप को हमने अपने ऊपर दबाव जैसा नहीं पाया न उन्होंने कभी महसूस होने दिया कि, वे कोई महान व्यक्ति हैं, महान चिंतक हैं या राष्ट्रीय स्तर के पदाधिकारी। हमने हमेशा यही अनुभव किया जैसे परिवार के मुखिया अपने परिवार के सदस्यों से दैनिक बातों पर चर्चा कर रहे हैं तथा उन्हें सलाह दे रहे हों।

वैसे तो पंडित जी मूलतः चिंतक थे तथा गंभीर से गंभीर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर सरलता से, स्पष्टता से टिप्पणी कर दिया करते थे। जनसंघ के अखिल भारतीय पदाधिकारी के नाते यह व्यापक सोच ठीक भी था। परन्तु उनके जीवन का यदि यह एक पक्ष था तो एक दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष भी था कि वे जनसामान्य की साधारण से साधारण समस्या पर भी गहरी नजर रखते थे। यह सोच उनके इस स्वरूप को स्पष्ट करती थी कि वे वास्तव में जन नेता थे। इस संदर्भ में मुझे उनके जबलपुर प्रवास के दौरान की घटना याद आती है। मैं पंडित जी को स्टेशन से लेकर घर आ रहा था। मार्ग में अनेकों स्थानों पर कैरोसिन तेल (मिट्टी के तेल) की लाइनें लगीं थी। वे उन्हें देखते जा रहे थे। एकाएक उन्होंने मुझसे प्रश्न किया कि 'परांजपे जी' क्या जबलपुर में जनसंघ नहीं है ? मैंने कहा नहीं पंडित जी ऐसी बात तो नहीं है ? परन्तु आपने ऐसा क्यों कहा ? तो उनका जवाब था कि मिट्टी के तेल की पूरे शहर में लगी लाइनें यह सिद्ध कर रही हैं, मानों यहाँ जनसंघ के कार्यकर्ता नहीं हैं अन्यथा यह स्थिति न होती। मैंने उन्हें बतलाया कि पंडित जी आपके प्रवास के कारण यह आंदोलन तथा तिथि बढ़ा दी गई है। अन्यथा यह कार्यक्रम आज ही होना था। कहने का मतलब यह कि वे यदि एक राष्ट्रीय पदाधिकारी के नाते व्यापक राजनैतिक, आर्थिक, अन्तर्राष्ट्रीय सोच रखते थे तो जनसामान्य की मूलभूत छोटी से छोटी समस्या पर भी गहरी नजर थी। जो वास्तव में उन्हें असाधारण स्वरूप प्रदान करती थी।

पं. उपाध्याय जी दीर्घकालिक सोच के व्यक्ति थे। जनसंघ के अध्यक्ष के नाते उन्होंने प्रथम आम चुनाव में ही जब जनसंघ बाल्यावस्था में थी। सम्पूर्ण देश में कार्यकर्ताओं को आव्हान किया कि हम सभी सीटों पर चुनाव लड़ेंगे। तब अनेकानेक लोगों ने कहा कि पंडित जी यह बात ठीक नहीं है ? क्या हम हारने के लिये चुनाव लड़ें ? क्या हारने से हमारी स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ? इससे कार्यकर्ता का मनोबल भी टूटेगा तथा बड़ी हास्यास्पद स्थिति का निर्माण होगा ? परन्तु पं. दीनदयाल जी लिये गये निर्णय पर अटल। परिणाम कि हम अधिकांश सीटों पर हारे। किन्तु भारतीय जनसंघ को इतने मत मिले कि उसे राष्ट्रीय स्तर पर एक 'राष्ट्रीय पार्टी' के रूप में मान्यता प्राप्त हो गई। तब कार्यकर्ताओं, पदाधिकारियों समेत लोगों को महसूस हुआ कि पंडित जी क्यों सभी सीटों पर चुनाव हेतु दृढ़ संकल्पित थे। यह था उनके दीर्घकालिक सोच का परिणाम।

पंडित जी का विदेशी वस्तुओं के प्रति कोई दुराग्रह तो नहीं था परन्तु उनका स्वदेशी (स्वतकनीक, स्वावलम्बन आदि) के प्रति जबरदस्त आग्रह था। उन्होंने जीवन पर्यन्त इसे अपने खान-पान, रहन-सहन, में अपनाया। उनके रहन-सहन एवं व्यवहार से हमेशा देश के आम व्यक्ति का स्वरूप झलकता था। वे आम जनता से इसके लिये आग्रह करते थे। परन्तु जनसंघ के कार्यकर्ताओं, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के स्वयं सेवकों से कठोरता पूर्वक इसे पालन करने का आदेश देते थे। उनका सोच था कि यदि हमारी ही कथनी-करनी में अंतर होगा, तो हम फिर आम व्यक्ति से कैसे आग्रह कर सकते हैं। उनका सोच था कि जब तक नेता स्वयं अनुशासित नहीं रहेंगे, देश या राष्ट्र के व्यक्तियों से यह कल्पना करना ही गलत होगा।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने साधारण परिवार में जन्म लेकर, विषम परिस्थितियों में जीवन पर्यन्त संघर्ष करके, जो असाधारण योग्यता अर्जित की। उससे यह सिद्ध हुआ कि साधारण व्यक्ति भी यदि धैर्यता, सहनशीलता, सिद्धांतों एवं मूल्यों को दृढ़ता से अपनाये रखे तो निश्चित सफलता उसका चरण वंदन करती है। लिप्सा, चाटुकारिता; सिद्धांतहीनता, अवसरवादिता, कथनी-करनी का अंतर व्यक्ति को कुछ समय तक तो स्थापित रख सकता है। परन्तु जब उसका अंत होता है तो बालू के ढेर के सदृश्य उसकी स्थिति होती है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय मूलतः चिंतक थे। संघ के आदेश से वे राजनीति में आये। अन्यथा हमेशा वे संघ कार्य के प्रति लौटना चाहते थे। परन्तु गुरुजी का आदेश होने के कारण वे अपने कार्य में हमेशा रत् रहे। उन्होंने भारतीय जनसंघ को 'एकात्म मानववाद दर्शन' के रूप में ऐसा चिंतन दिया। जो न केवल जनसंघ के लिये, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिये था। पंडित जी के 'एकात्म मानव दर्शन' सम्बन्धी सोच ने सिद्ध कर दिया है कि पाश्चात्य सोच जो (एक पक्षीय) है। चाहे वह पूंजीवाद हो चाहे साम्यवाद। वे अंततः समाप्त होंगे एवं समाज इनसे कतई लाभान्वित नहीं हो सकेगा। आज रूस के विखंडन तथा अमेरिका के बढ़ते भौतिकवाद ने सिद्ध कर दिया है कि एकपक्षीय या खंड खंड अध्ययन कभी भी हितकर नहीं होता। ऐसी विषम परिस्थितियों में हिन्दू दर्शन ऐसा दर्शन है जो चौराहे पर खड़ी भ्रमित मानवता को सही मार्ग दिखला सकता है। सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्थायें जिन्हें भारत ने पहले भी मार्ग दर्शन दिया है, आज पुनः मार्ग दिखा, विश्व गुरू की अपनी अवधारणा को सिद्ध करना होगा।

पं. दीनदयाल उपाध्याय के इस समष्टिगत चिंतन पर वैसे तो अनेकानेक व्यक्तियों द्वारा लेखन कार्य किया गया है। किन्तु 'एकात्म मानववाद दर्शन' की डॉ. विनोद मिश्रा की यह पुस्तक, जिसमें उन्होंने पं. दीनदयाल उपाध्याय के मूल चिंतन एकात्म मानववाद समेत अन्य विषयों पर जिस सरलता, स्पष्टता एवं सुरुचिपूर्ण ढंग से लेखन किया है। उसने आम व्यक्ति, कार्यकर्ताओं के इस भ्रम को तोड़ा है कि एकात्म मानववाद दर्शन अत्यन्त कठिन है। इसे सरलता से नहीं समझा जा सकता है। डॉ. विनोद मिश्रा गोविंदराम सेकसरिया अर्थ वाणिज्य महाविद्यालय जबलपुर में सहायक प्राध्यापक (Assistant Professor) के पद पर कार्यरत हैं तथा भा.ज.यु.मो. के प्रांतीय पदों पर आसीन भी रह चुके हैं तथा वे प्रदेश के प्रखर वक्ताओं में गिने जाते हैं। उन्होंने उम्र के अल्प पड़ाव में पं. दीनदयाल उपाध्याय के दर्शन पर जिस सहजता तथा सरलता से लिखा है तथा भाषा में जो प्रवाह शुरू से आखिर तक बना है उससे स्वयं स्पष्ट होता है कि डॉ. विनोद मिश्रा एक उत्कृष्ट लेखक भी हैं। उन्होंने जहाँ प्रमुख पदों पर रहकर एक श्रेष्ठ संगठनकर्ता के पक्ष को स्पष्ट किया है, वहीं दूसरी ओर पार्टी के वैचारिक दर्शन पर लेखन कार्य को व्यवहारिक स्वरूप देकर नेतृत्व की पूर्णता के गुण को साकार किया है। जो निश्चित तौर पर युवा पीढ़ी के लिये एक अनुकरणीय पहल है। क्योंकि जिस वैचारिक सोच का शनै शनै ह्रास हो रहा है, वह

चिंतनीय प्रश्न है। डॉ. मिश्रा ने यह महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ कर बुझते हुये दिये को जलाने का कार्य किया है।

मैं अल्प समय में, अति महत्वपूर्ण एवं कठिन विषय पर लिखी गई इस पुस्तक के लिये डॉ. मिश्रा को हार्दिक बधाई देता हूं एवं उनके उज्जवल भविष्य की कामना, इस आशा एवं विश्वास के साथ करता हूं कि वे हमेशा हमें अपने श्रेष्ठतम विचार लेखन से लाभान्वित करते रहेंगे।

शुभकामनाओं सहित,

दिनांक - २२/९/९४

दिन - गुरुवार

(बाबूराव परांजपे)

पूर्व सांसद भा.ज.पार्टी

जबलपुर (म.प्र.)

❑ ❑ ❑

खण्ड - प्रथम

लेखक की बात

खण्ड - प्रथम

लेखक की बात

पं. दीनदयाल जी उपाध्याय के एकात्म मानववाद दर्शन के संदर्भ में जो कुछ भी लिखा गया है। यह मेरा प्रथम प्रयास है। वैसे तो मैंने शोध प्रबंध लिखा परन्तु जितनी कठिनाई मैंने शोध प्रबंध के लेखन में महसूस नहीं की। उससे ज्यादा इसे लिखने में महसूस किया। शायद कारण मैं स्वयं नहीं बता पाऊंगा। लेकिन जब लिखना प्रारम्भ किया तो लिखता ही चला गया। इसका अपेक्षित परिणाम सामने है। इस 'एकात्म मानव दर्शन' की पुस्तक के रूप में।

मैंने जब भारतीय जनता पार्टी के कार्यकर्ता के रूप में कार्य प्रारम्भ किया तो मुझे अवगत कराया गया कि, भारतीय जनसंघ का मूल दर्शन 'एकात्म मानव वाद दर्शन' है तथा इसके प्रणेता पं. दीनदयाल जी उपाध्याय हैं। जिस व्यक्ति से भी सुनता तो यही जानकारी होती कि यह दर्शन श्रेष्ठतम दर्शन है। यह दर्शन अनोखा दर्शन है। इसको पढ़ना एवं जानना चाहिये। जब जिज्ञासा वश मैं सम्बन्धित व्यक्तियों से आग्रह करता कि आप बतलाइये कि आखिर एकात्म मानव वाद दर्शन क्या है ? क्या विशेषता है इस दर्शन की ? क्या संदेश है इस दर्शन में ? क्यों श्रेष्ठ है यह दर्शन ? आदि आदि। तो शायद आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि, प्रत्येक व्यक्ति का यही उत्तर होता था कि आप पढ़ लेंगे तो समझ जायेंगे। इस सार्वभौमिक उत्तर ने इस दर्शन के प्रति मुझमें व्यापक उत्सुकता पैदा कर दी।

इस उत्सुकता का परिणाम हुआ कि मैंने इस दर्शन की पुस्तकों को बाजार में खोजना प्रारम्भ किया। जब मैं किसी दुकान में जाता था, दुकानदार से आग्रह करता कि 'पं. दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानव वाद' की पुस्तक चाहिये। तो जवाब 'नहीं है' मिलता। इस जवाब को जब दो-तीन दुकानों में सुना तो मैंने सोचा निश्चित श्रेष्ठतम दर्शन है। परन्तु जब जबलपुर में दुकानों में यह पुस्तक नहीं मिली एवं एक दुकानदार द्वारा यह कहा गया कि आप किस किताब की बात कर रहे हैं। यह मेरे ख्याल से कोई पुस्तक नही है जो शायद इतनी लोकप्रिय है कि इसे रखा जाये ? इस जवाब ने मुझे निश्चित रूप से आहत किया। मैंने गुस्से में जब वरिष्ठ पदाधिकारियों से कहा कि आपकी बताई श्रेष्ठतम पुस्तक तो मिल ही नहीं रही। तो उन्होंने कहा कि इसे आप केशव कुटी (राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का जबलपुर का कार्यालय) से प्राप्त

करें। आश्चर्य होना स्वाभाविक था। लेकिन पुस्तक के मिलने का स्थान सुनकर शेष बातें गौण हो गईं।

मैंने तत्काल पुस्तक को प्राप्त किया एवं रात्रि में इसका एक बार नहीं अनेक बार अध्ययन किया। बार-बार एक-एक शब्द को ध्यान से पढ़ा। इसे पढ़ने पर अत्यधिक सरलता से इसलिये समझ एवं जान सका क्योंकि बी.काम. अंतिम वर्ष में 'आर्थिक एवं राजनैतिक विचारधारायें' (Economical and Political Thought s) मेरा एक विषय था। इसमें पूंजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, तानाशाही, लोकतंत्र, आदि विषय थे। जिनका सूक्ष्मता से मैंने अध्ययन किया था। इस अध्ययन का लाभ यह हुआ कि एकात्म मानववाद दर्शन को मैंने एक बार में सरलता से समझा एवं यह निर्णय कर लिया कि वास्तव में यह श्रेष्ठतम दर्शन है। इसको जानने के बाद मैंने पंडित दीनदयाल उपाध्याय की जयंती पर जबलपुर भारतीय जनता पार्टी द्वारा आयोजित व्याख्यान में इस पर व्याख्यान दिया। जब लोगों ने, कार्यकर्ताओं ने बधाई दी तो मैंने जिस आनंद एवं उत्साह का अनुभव किया। उसे शायद मैंने फिर कभी अनुभव नहीं किया। फिर तो मैं प्रत्येक कार्यक्रम, जो दीनदयाल जी के एकात्म दर्शन के तारतम्य में होते थे। मुख्य वक्ता के रूप में आमंत्रित होता था।

दो-तीन वर्ष तो मुझे अच्छा अनुभव हुआ। फिर मुझमें एक खीज, एक चिड़चिड़ाहट, एक सोच का भाव यह पैदा हुआ कि आखिर क्यों इतने श्रेष्ठतम दर्शन को जानने के बाद (कार्यकर्ता) इसे जानना नहीं चाहते ? क्यों इसे जानने-समझने का प्रयास नहीं करते ? क्यों इसे जन-जन तक पहुंचाया नहीं जा रहा ? क्यों प्रत्येक कार्यक्रम में मैं ही इस पर बोलता हूं ? बाकी क्यों चुप रहते हैं ? आदि-आदि। एक बात को मैंने स्पष्टता से अनुभव किया कि भाषा की क्लिष्टता, सर्वसामान्य कार्यकर्ता में इसके प्रति उत्साह जागृत नहीं कर पा रही है तथा जितना प्रचार-प्रसार होना चाहिये। शायद पदाधिकारी इसे कर भी नहीं रहे। इस बात ने मुझे यह संकल्प लेने को प्रेरित किया कि, अब मैं तो एकात्म मानववाद पर बोलूंगा पर अकेला नहीं। प्रत्येक वर्ष ऐसे कार्यकर्ता तैयार करूंगा जो इस पर बोलेंगे। इसके अलावा मैंने यह भी संकल्प लिया कि इस एकात्म मानववाद दर्शन पर लिखूंगा। इसे अत्यन्त सरल शब्दों में, रुचिकर ढंग से, ताकि आम कार्यकर्ता इसे सरलता से समझ सकें। इसके अलावा मैं इसे आम व्यक्ति, छात्र-छात्राओं, बुद्धिजीवियों तक पहुंचाऊंगा। क्योंकि यह भारतीय जनसंघ, भारतीय जनता पार्टी या राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का दर्शन नहीं है (अधिकांश लोग

इसे ऐसा मानते हैं) बल्कि यह तो एक ऐसा दर्शन है जो राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर से भी ज्यादा व्यापक है। यह तो आम व्यक्ति ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानवता का दर्शन है। फिर मैं सोचता हूं कि पं दीनदयाल जी ने जब इसे लिखा था तो उनमें ऐसा संकुचित सोच होता तो निश्चित उन्होंने इसका नाम शायद 'भारतीय जनसंघ का एकात्म मानव दर्शन' अथवा 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का एकात्म मानववाद' अथवा 'पं. दीनदयाल उपाध्याय वाद' नाम रखा होता। ऐसा कोई सोच न होना स्पष्ट करता है कि, यह 'वाद' (दर्शन) श्रेष्ठतम भी है तथा सम्पूर्ण मानवता के लिये भी है ? क्योंकि यह दर्शन व्यक्ति को समाज, राष्ट्र, प्रकृति, पर्यावरण तथा परमेश्वर से एकात्म करता है। यह दर्शन कहता है कि प्रगति एवं विकास संघर्ष में नहीं, बल्कि पारस्परिक सहयोग एवं समन्वय में निहित हैं। यह प्रकृति संघर्ष नहीं बल्कि सहयोग एवं समन्वय से संचालित है। यह दर्शन पूंजीवाद एवं साम्यवाद की तरह एकपक्षीय नहीं अपितु सम्पूर्ण विषयों का विस्तृतता से अध्ययन करता है। प्रकृति एवं परमेश्वर के प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म एवं बड़े से बड़े कार्य में आपस में सहयोग है। यही हिन्दू दर्शन का सोच है। यही एकात्म मानववाद में पं. दीनदयाल उपाध्याय ने कहा है।

एकात्म मानववाद दर्शन की इस पुस्तक को मैंने जानबूझ कर बढ़ाने का प्रयास नहीं किया एवं इसमें सम्पूर्ण विषय सामग्री को दस खंडों में विभक्त किया। भाषा की सरलता के अलावा उदाहरणों, कहानियों, छोटी छोटी शिक्षाप्रद बातों को समावेशित किया ताकि पाठक को पढ़ने में ज्यादा जोर न लगाना पड़े। इस संदर्भ में मैंने दीनदयाल जी के सम्पूर्ण लेखन के अतिरिक्त जिन जिन व्यक्तियों ने उन पर लिखा एवं बोला उसे लेखन का आधार बनाया। इसके अलावा भी अनेकानेक पुस्तकों, लेखों, पेपर की कतरनों को पढ़ा एवं एकत्रित किया। (आधार बनायी गई पुस्तकों, पत्र पत्रिकाओं, ग्रंथों की सूची पुस्तक के आखिर में दी गई हैं)। इस पुस्तक के लेखन में द्वितीयक उपलब्ध साहित्य का उपयोग किया गया है। कुछ नये विषयों को सम्मिलित किया गया है। (जैसे तृतीय एवं चतुर्थ खण्ड) तथा कुछ विषयों पर, जिन पर पंडित दीनदयाल जी ने संक्षिप्त में लिखा है। उस पर विस्तृत रूप से लेखन किया गया है (नवमा एवं दसवां खंड)। इस प्रकार पुस्तक में सम्पूर्ण विषय को सरलता से, एक ही साथ लिखने का प्रयास किया गया है।

पुस्तक में पंडित जी के जीवन प्रसंगों, घटनाओं आदि को स्पष्टता से समझने हेतु उनके साथ कार्य में सहभागी व्यक्तियों तथा उनका सानिध्य प्राप्त व्यक्तियों से

साक्षात्कार भी लिया गया है। इसमें राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ महाकौशल के प्रचारक श्री सुभाष बैनर्जी, पूर्व सांसद जबलपुर श्री बाबूराव परांजपे, श्रीमती जय श्री बैनर्जी, श्रीमती सुधा परांजपे, श्री नंद किशोर शुक्ला (प्रचारक राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जबलपुर), श्री चिन्तामन साहू, ठाकुर मुलायम सिंह, श्री धर्मनारायण जी शर्मा (प्रांत प्रचारक महाकौशल प्रांत), पं. भगवतीधर वाजपेयी (वरिष्ठ पत्रकार), मनोहर राव सहस्त्रबुद्धे एवं मेघराज जैन (संगठन मंत्री) आदि ने पं. दीनदयाल उपाध्याय की सरलता, सहजता, देश निष्ठा, अनुशासन एवं चिरंतन लेखन एवं सामाजिक तथा आम विषयों पर गहन सोच को बतलाया। जिससे मुझे लेखन में अत्यधिक सरलता हुई।

पं. दीनदयाल जी के जीवन प्रसंगों को जानते समय एक बात जो उपलब्धि मानता हूं एवं मेरा सौभाग्य था, वह थी पं. दीनदयाल जी की बहिन एवं बहनोई (श्रीमती महादेवी मुदगल एवं श्री परमानंद मुदगल, जो जबलपुर के धनवंतरी नगर मेडीकल कालेज के पास रहते हैं) से भेंट होना। यह जानकारी मुझे पूर्व सांसद श्री बाबूराव परांजपे जी ने दी एवं मैंने उनसे व्यक्तिगत भेंट कर उनका साक्षात्कार लिया। इस भेंट एवं साक्षात्कार को मैं अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं उपलब्धि मानता हूं।

पं. दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद दर्शन पर लेखन को प्रारम्भ करते समय जिस सरलता से उसे प्रारम्भ किया था। वह सरलता बीच बीच में पहाड़ जैसी लगी। अनेकानेक बार बीमार होने के बाद लेखन में व्यवधान पैदा हुआ। ऐसा लगा कि शायद पुस्तक पूर्ण नहीं हो पायेगी। परन्तु अंततः जब लेखन समाप्त हुआ तो ऐसा अनुभव किया कि, जैसे 'युद्ध' में विजय श्री प्राप्त की हो। पुस्तक को लिखना प्रारम्भ करते समय मन ही मन संकल्प किया था कि पुस्तक का विमोचन पं. दीनदयाल जी के वास्तविक उत्तराधिकारी पं. अटल बिहारी वाजपेयी जी के कर कमलों से हो तो सौभाग्य होगा। पंडित जी से पत्राचार किया उन्होंने मुझे पुस्तक लिखने हेतु बधाई एवं शुभकामनायें दीं तथा पुस्तक के पूर्ण होने के बाद मिलने हेतु कहा। मैंने उनसे ९ सितम्बर को सतना में उनके प्रवास के दौरान चर्चा भी की। यदि विमोचन पं. अटल बिहारी वाजपेयी के द्वारा होगा। तब मैं वास्तव में अनुभव करुंगा कि पं. दीनदयाल जी प्रत्यक्ष रूप से मानो स्वयं उपस्थित हैं।

पं. दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद दर्शन पर लेखन कार्य की समाप्ति के साथ साथ एक ओर अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव किया तो एकाएक दूसरी

ओर इसके प्रकाशन एवं मुद्रण सम्बन्धी कार्य को कैसे सम्पन्न किया जाये। इस चिन्ता ने परेशान करना प्रारम्भ कर दिया। इस संदर्भ में अनेक व्यक्तियों ने सहयोग हेतु आग्रह किया। किन्तु मैंने विनम्रता से अस्वीकार कर दिया। समस्या का समाधान मेरे अग्रज भाई अशोक मिश्रा जो जी.सी.एफ. फैक्ट्री में अराजपत्रित अधिकारी के पद पर सेवारत हैं। उनके द्वारा किया गया। उन्होंने कहा इस पक्ष को मुझे सौंप दो तथा इसकी चिन्ता मुझे करने दो। इस बात ने मेरी चिन्ता को दूर कर दिया एवं मेरा प्रकाशन सम्बन्धी कार्य आगे बढ़ने लगा।

इस पुस्तक के मुख पृष्ठ एवं अंतिम पृष्ठ को सुंदर बनाने का कार्य जबलपुर के प्रसिद्ध चित्रकार भाई जगदीश पटेल जो जी.आई.एफ. में कार्यरत हैं, उन्होंने किया। उन्होंने इस कार्य को लेने हेतु मुझसे एक शर्त रखी कि, वे इस कार्य को निःशुल्क करेंगे। अन्यथा यह कार्य मैं अन्यत्र सम्पन्न कराऊं। उनके द्वारा रखी गई इस शर्त को मुझे स्वीकार करना पड़ा। मैं विनम्रता पूर्वक उनके प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूं। पुस्तक के मुद्रण हेतु श्री प्रभात जैन सोलार ऑफसेट, गढ़ाफाटक के प्रयासो के लिये मैं उनका भी आभारी हूँ। इस पुस्तक में लेखन से प्रकाशन तक के कार्य के दौरान अनेकानेक व्यक्तियों का सहयोग, मार्गदर्शन एवं प्रेरणा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से मिलती रही। उनमें सर्व श्री बाबूराव परांजपे, श्री सुभाष बैनर्जी, ठा. मुलायम सिंह, श्री धर्मनारायण जी शर्मा, श्री मनोहर राव सहस्त्रबुद्धे, श्री मेघराज जैन, श्री नंद किशोर शुक्ला (प्रचारक), श्री अशोक मिश्रा, विनोद पचौरी, ठा. ईश्वर सिंह, दुलीचंद देवानी, धनश्याम दास गुप्ता उर्फ (घस्सू), दयाशंकर शुक्ला, वीरेन्द्र यादव, डा. के.के. अग्रवाल एम. डी. (रेडियोलॉजी), सुनील शर्मा, अरुण ठाकुर, ठा. रणजीत सिंह, राम कुमार पटेल, विशन सिंह, डा. बी.डी. कोष्टा, (सहायक प्राध्यापक), नरेन्द्र अग्रवाल, आनंद अवस्थी, श्याम विश्वकर्मा आदि प्रमुख हैं।

एकात्म मानव वाद दर्शन के पूर्व भी मैंने लेखन कार्य किया है। किन्तु किसी महापुरुष के जीवन दर्शन पर लिखने का मेरा प्रथम प्रयास है। आशा है कि पाठक-गण मुझे मेरी त्रुटियों से अवगत कराते हुये, राय भी देंगे। ताकि भविष्य में लेखन कार्य को जारी रख सकूं।

पं. दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद दर्शन को लिखकर अब मैं महसूस कर रहा हूं कि वास्तव में यह मेरी उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है। यदि उनके

बताये दर्शन को आगे कुछ लोगों तक पहुंचा सका तो समझूंगा कि मेरा प्रयास सार्थक रहा।

अंत में जो जरूरी बात भूल गया कि पं. दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद दर्शन की इस पुस्तक को पंडित जी के वास्तविक उत्तराधिकारी माननीय पं. अटल बिहारी वाजपेयी (सांसद) नेता प्रतिपक्ष भा.ज.पार्टी, पं. दीनदयाल उपाध्याय के बहनोई श्री परमानंद जी मुदगल एवं बहिन श्रीमती महादेवी मुदगल को सादर समर्पित करता हूं।

पुनः ज्ञात एवं अज्ञात सभी सहयोगी बंधुओं का आभार व्यक्त करते हुये -

दिनांक - ११/९/१९९४

दिन - रविवार

(डॉ. विनोद मिश्रा)

❑ ❑ ❑

खंड दो

जीवन की संघर्ष-मय यात्रा

खंड दो

जीवन की संघर्ष-मय यात्रा

१० फरवरी १९६८,- सुबह दूरभाष पर चर्चा। बिहार से आये फोन में बार-बार आग्रह कि आप लखनऊ से सीधे बिहार आयें। आपके आने से कार्यकर्ताओं में अत्यधिक उत्साह का संचार होगा। आप जरूर आयें। हम सभी आपका बेसब्री से इंतजार करेंगे। लखनऊ से आने हेतु स्वीकृति, परन्तु शर्त कि दिल्ली वाले आने का आग्रह न करें। अंततः बिहार आने की स्वीकृति के साथ बिहार के पदाधिकारियों में, कार्यकर्ताओं में असीम उत्साह, फिर उत्साह क्यों न हो, आने वाला व्यक्ति उन्हें अपने जैसा ही सीधा सरल लगता था। सभी की अभिलाषा पूर्ण कि वे सुबह लखनऊ से आयेंगे। सभी कामों में व्यस्त। बिना कहे दायित्वों का बंटवारा पूर्ण और इंतजार-इंतजार-सिर्फ इंतजार अगली सुबह का कि वे आ रहे हैं।

१० फरवरी, १९६८- सायंकाल ७ बजे स्यालदाह पठान कोट एक्सप्रेस लखनऊ पहुंचा। बिहार (पटना) जाने वाले यात्री को छोड़ने रामदासजी गुप्त (उत्तरप्रदेश के तत्कालीन उप मुख्यमंत्री मौजूद) पीताम्बर दास जी सहित अनेक लोग उन्हें छोड़ने आये। यात्री के पास एक अपना हल्का सस्ता सा सूटकेस, बिस्तर एवं पुस्तकों का झोला एवं खाने का टिफिन। यही सामान प्रायः वे लेकर चलते थे। उन्हें ठंड ज्यादा लगती थी, तो गर्म लेकिन सस्ती बनियानों के ऊपर खादी का कुर्ता जो साफ तो लेकिन अनेक स्थानों से स्वयं के हाथों से सिला हुआ। ७ बजे स्यालदाह पठान कोट एक्सप्रेस ने लखनऊ छोड़ा। यात्री ने सभी को नमस्कार का जवाब। वैसी मुस्कराहट के साथ जैसी वे हमेशा हर यात्रा के दौरान देते थे। फिर मिलेंगे। आप लोग अपना ध्यान रखियेगा। गाड़ी-धक-धक-धक-धक करती-हुई चली जा रही है। छोड़ने वाले गाड़ी को अपलक देख रहे थे। आंखों से ओझल होने के बाद भी आज न जाने क्यों आंख उसी ओर लगी थी। मानो गाड़ी अभी गई नहीं। ऐसा लगा रहा था कि आज गाड़ी को जाना नहीं था। ऐसा सोच रहे थे कि आज गाड़ी को आना ही नहीं था। सभी ने दिमाग को झटका, कि आज वे ऐसा क्यों सोच रहे हैं। अरे आना-जाना तो यात्रा में लगा रहता है। लखनऊ वाला पटना, पटना वाला लखनऊ, तो आयेगा, जायेगा ही। गाड़ी आयेगी-जावेगी नहीं तो कोई-आयेगा कैसे ? जायेगा कैसे ? वैसे तो इन्हें हमेशा ही

छोड़ने आते थे। परन्तु आज न जाने क्यों सभी के मन में विचारों के तूफान उमड़ रहे थे। आज लखनऊ प्लेट फार्म से पैर हट ही नहीं रहे थे। परन्तु अंततः गाड़ी को यात्री को लेकर जाना था। छोड़ने वालों को घर लौटना था। यात्री का अगले स्टेशन पर कोई इंतजार कर रहा था। बेसब्री से इंतजार-इंतजार-इंतजार।

१० फरवरी १९६८- रात्रि १२ बजे जौनपुर स्टेशन पर स्यालदाह पठान कोट एक्सप्रेस ने प्रवेश किया। जौनपुर के राजा साहब के निजी सचिव (Personal Secretary) श्री कन्हैया जी ने गाड़ी के रुकते ही डिब्बों को देखना शुरू किया एवं शीघ्रता से एक डिब्बे में प्रवेश कर गये। यात्री ने आगन्तुक को देखा। कन्हैया जी ने नमस्कार किया। यात्री ने उसी मुस्कराहट के साथ जवाब दिया। कन्हैया जी के हालचाल पूछे। कन्हैया जी ने राजा-साहब का पत्र उन्हें सौंपा। तत्काल पत्र को पढ़ा एवं कन्हैया जी ने कहा कि राजा साहब को हमारा नमस्कार कहियेगा। हम पत्र का जवाब शीघ्र भेज देंगे। यात्री, कन्हैया जी के बार-बार मना करने के बावजूद भी उन्हें बोगी के द्वार तक छोड़ने आये। गाड़ी ने १२ बजकर १२ मिनिट पर स्टेशन को छोड़ा। कन्हैया जी स्टेशन से खड़े गाड़ी एवं यात्री दोनों को निहार रहे थे। सोच रहे थे कि पत्र पढ़ते हुये भी हालचाल पूछते गये। फिर गाड़ी चलने पर रात्रि के समय भी बोगी के द्वार पर छोड़ने आये। इतनी रात्रि गये भी विश्राम नहीं, लेखन पठन जारी। फिर बड़ी सादगी भरी मुस्कराहट के साथ नमस्कार। अच्छा कन्हैया जी फिर मिलेंगे। कन्हैया जी सोच रहे थे कि गाड़ी आज न जाती तो अच्छा था। आज गाड़ी न आती तो और अच्छा था। फिर विचारों की श्रृंखला भंग हुई। कन्हैया जी धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुये आगे बढ़े। गाड़ी धक-धक धक-धक करती चली जा रही थी। क्योंकि आगे स्टेशन पर कोई-किसी का इंतजार कर रहा था। गाड़ी को स्टेशन का, स्टेशन को गाड़ी का, स्टेशन पर यात्री को गाड़ी का इंतजार था। बेसब्री से इंतजार-इंतजार।

१० फरवरी १९६८- रात्रि २.१५ मिनिट- स्यालदाह पठानकोट एक्सप्रेस सीधे पटना नहीं जाती है। अतः मुगलसराय स्टेशन पर जब गाड़ी २.१५ बजे रात्रि को प्लेटफार्म नं.१ पर पहुंची तो इस बोगी को गाड़ी से काटकर शंटिंग करके दिल्ली हावड़ा से जोड़ दिया गया। इस कार्य के पश्चात लगभग रात्रि २.५० बजे गाड़ी मुगलसराय से रवाना हो गई।

१० फरवरी १९६८- रात्रि १२-१२ बजे जौनपुर से २.१५ रात्रि के मध्य 'यात्री' के कूपे के आस-पास हलचल। रेल कंडेक्टर एक यात्री के कहे अनुसार बनारस

स्टेशन पर उन्हें उठाने आया तो उसे जानकारी दी गई कि 'वह' व्यक्ति तो शाहगंज स्टेशन परही उतर गया है। कंडक्टर जो शायद कुछ-कुछ नींद में था। बड़बड़ाया कि जब खुद ही उतरना रहता है, तो खामोखाह क्यों परेशान करते हैं। न खुद सोते न दूसरों को सोने देते हैं। मुगलसराय स्टेशन पर जब गाड़ी २.१५ बजे रुकी तो लखनऊ के यात्री का बिस्तर एक अन्य व्यक्ति ले जा रहा था। लखनऊ के 'यात्री' के सहयात्री ने उस अजनबी से पूछा कि 'आप बिस्तर कहां ले जा रहे हैं' तो जवाब कि मेरे पिता जी यहीं उतर गये हैं। मैं उनका सामान ले जा रहा हूं। सहयात्री चुप रह गया।

१० फरवरी १९६८- गाड़ी २.५० बजे रात्रि को रवाना। करीब पौन घंटे बाद ३.३० बजे रात्रि को मुगलसराय स्टेशन के 'लीवर मैन' ने टेलीफोन पर सहायक स्टेशन मास्टर को सूचना दी कि, स्टेशन के लगभग १५० गज पहले, लाईन से दक्षिण की ओर बिजली के खंभे नं. १२७६ के नजदीक एक लाश पड़ी है। कंकड़-पत्थरों के बीच पड़ी लाश के संदर्भ में सिपाही को तैनात कर दिया गया है। सहायक स्टेशन मास्टर ने पुलिस को मीमो (सूचना) भेजी जिसमें लिखा था 'आलमोस्ट डेड'।

११ फरवरी १९६८- मुगलसराय स्टेशन के घटना स्थल पर पड़ी हुई लाश का रेल्वे डाक्टर द्वारा मुआवना। जांच के पश्चात पूर्णतः मृत की घोषणा। पुलिस द्वारा शव के फोटो लिये गये। शव को कोई पहचान न सका। तो अंततः उसे लावारिश घोषित कर दिया गया। ऐसी न जाने कितनी लाशें रेल के नीचे, आस-पास मिलती हैं। कोई ठंड से, कोई बीमारी से, कोई भूख से मर जाता है। औपचारिकतायें उसी ढंग से पूर्ण होती है। वही कार्यवाही, वही प्रक्रिया, वही 'आलमोस्ट डेड' का मीमो। फिर गाड़ी आगे बढ़ जाती है। क्योंकि उसे तो सिर्फ आगे बढ़ना है। उसे किसी को छोड़ना है। किसी का इंतजार समाप्त करना है। चलना ही गाड़ी की जिंदगी है।

११ फरवरी १९६८- प्रातःकाल लावारिश लाश की तमाम औपचारिकताओं के बाद उसे छः घंटे बाद मुगलसराय स्टेशन पर लाश को रख दिया गया। आने-जाने वाले एक नजर देखते फिर आगे बढ़ जाते। देखते समय उत्सुकता, फिर चैन की सांस की उनका कोई नहीं है। कुछ को तो देखने कि फुर्सत नहीं। कुछ आंखों में आंसू लिये बढ़ जाते कि पता नहीं किसका बेटा, किसका भाई, किसका पिता होगा। शायद बेचारे का इस संसार में कोई नहीं है। लेकिन वे शायद भूल जाते कि मृत्यु के बाद वास्तव में कोई किसी का नहीं होता। सभी बंधन, रिश्ते, नाते जिन्दा रहने तक शेष है। वे भूल जाते हैं कि 'कुछ' जिंदा रहते हुये भी लाशें होते हैं। और कुछ 'मर' कर भी

जिंदा रहते हैं। वे कदापि नहीं मरते। वे नहीं जानते कि यह तो आत्मा का मात्र शरीर छोड़ना है। यह तो मात्र परिवर्तन है। यह तो आत्मा का (छोटे अंश का) उस परमात्मा (परम अंश) में विलीनीकरण है। आत्मा का परमात्मा से एकात्म होना है। जो सतत् प्रक्रिया है। जो जिंदा थे वे इस सत्य को समझ नहीं सके। वे ये भी नहीं जान पाये कि मरने वाला, स्टेशन पर पड़ी लाश यह सब कुछ इस समाज, इस देश को बता चुकी है कि इस आत्मा को परमात्मा में एकात्म होना ही है। शरीर तो (लाश एक साधन है) अंतिम सत्य तो परम मोक्ष ही है।

११ फरवरी १९६८- मुगलसराय स्टेशन पर आना जाना जारी। तभी एक चीख गूंजी। उस चीख ने सभी को स्तब्ध कर दिया। उस चीख ने हलचल पैदा कर दी। चीख तो मात्र एक नौजबान के मुख से निकली, पर कुछ समय बाद सम्पूर्ण-मुगलसराय, सम्पूर्ण- लखनऊ, सम्पूर्ण-बिहार, सम्पूर्ण-देश एवं विदेशों में चीत्कार मच गया। हर नौजवान चीख रहा था, सम्पूर्ण देश में चीत्कार हो रहा था। अभी 'कुछ' देर पहले मुगलसराय में पड़ी लाश देखकर ऐसा लगता था कि ८० करोड़ आबादी के भारत का कोई-गरीब पड़ा है। ऐसी लाशें पड़ी रहती है। वह था जो ८० करोड़ भारतीयों जैसा। परन्तु अब, अब तो पूरा भारत चीत्कार कर रहा था। हाहाकार मच रहा था। रुदन, आंसू, छटपटाहट देखकर कलेजा काबू में नहीं आ रह था। हाँ किसी का बेटा चला गया था। हाँ किसी का भाई चला गया था। हाँ किसी का पिता चला गया था। हाँ किसी का दोस्त चला गया था। हाँ किसी का मार्गदर्शक चला गया था। हाँ किसी की आत्मा चली गई थी। हाँ जनसंघ का सर्वस्व चला गया था। हाँ स्वयंसेवकों का आदर्श स्वयंसेवक चला गया था। हाँ परमपूज्य गुरुजी का आदर्श परमप्रिय शिष्य चला गया था। हाँ रामप्यारी एवं भगवती प्रसाद का 'दीना' राष्ट्रीय जनसंघ के अखिल भारतीय अध्यक्ष एकात्म मानववाद के प्रणेता पं. दीनदयाल उपाध्याय चले गये थे।

सम्पूर्ण देश में देखते ही देखते समाचार फैल गया। पं. दीनदयाल उपाध्याय की हत्या। पं. उपाध्याय नहीं रहे। भारतीय जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष पं. दीनदयाल उपाध्याय की नृशंस हत्या। समाचार अप्रत्याशित था। अरे कल ही रात को तो लखनऊ स्टेशन से रामदास जी गुप्त, पीतांबर दास ने विदा किया था। अभी कुछ घंटे पहले तो कन्हैया जी ने राजा साहब का पत्र दिया था। किसी को विश्वास नहीं हो रहा था। किसने हत्या की ? क्यों हत्या की ! ऐसे सरल, ईमानदार, देशभक्त की किसने इतनी नृशंसता से, बर्बरता से हत्या की। बिहार भारतीय जनसंघ के प्रदेश कार्यकारिणी के सदस्य, बिहार के पदाधिकारी, कार्यकर्ता-इंतजार कर रहे थे। वे स्टेशन पर फूलमाला

लिये अपने प्रिय नेता का इंतजार कर रहे थे कि आयें तो उनके गले में फूलों की माला डालें। परन्तु दुर्भाग्य अब वे मालायें उनके मृत शरीर में डालना पड़ेगी। अब वे कभी-बिहार नहीं आवेंगे, कदापि नहीं। शायद उन्हें मुगलसराय पसंद आ गया। आंसू रुक नहीं रहे थे। अब उनका बौद्धिक कदापि सुनने नहीं मिलेगा। अब उनकी मुस्कराहट, शायद देखने को मिले। चरैवेति-चरैवेति का मंत्र देने वाले पं. उपाध्याय का सफर रुक गया था। शायद उनकी हत्या करने के बाद हत्यारों ने सोचा होगा कि अब उनका बताया रास्ता बंद हो जायेगा, कार्य रुक जायेगा। परन्तु शायद वे नहीं जानते थे कि लखनऊ से मुगलसराय तक का यह यात्री ऐसे अनेक दीनदयाल पैदा कर गया था कि यात्रा तो रुक ही नहीं सकती थी। यह तो एक आत्मा का परमात्मा से मिलन का दृश्य था। ऐसे हजारों-लाखों आत्मायें थी जो उनके बताये मार्ग की पथगामिनी थी। बरबस श्री कृष्ण सरल की पंक्तियां याद आती हैं।

इस देह धर्म के नाते हमको जाना है।

कुछ ऐसा करके जाये, जिसकी याद रहे।।

आजाद रहे, आबाद रहे, धरती माता।

जग में गुंजित इस माता का जय नाद रहे।।

११ फरवरी १९६८- सम्पूर्ण-भारत में समाचार के साथ स्तब्धता, आक्रोश, रुदन, छटपटाहट। पं. दीनदयाल उपाध्याय की हत्या के समाचार से संपूर्ण-देश सन्न हो गया। चारों ओर से शोक संवेदनायें व्यक्त होने लगी। देश के राष्ट्रपति महामहिम डॉ. जाकिर हुसैन ने कहा- मुझे पं. दीनदयाल उपाध्याय की मृत्यु के समाचार से गहरा आघात लगा है।

सभी दलों के नेताओं, पदाधिकारियों ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। किसी क्षेत्र के प्रतिनिधि न होते हुये, लोकसभा एवं राज्यसभा से निर्वाचित न होते हुये भी दी गई श्रद्धांजलियों, शोक संवेदनाओं ने सिद्ध किया कि पं. दीनदयाल उपाध्याय कितने सम्मानीय एवं आदरणीय थे। उपराष्ट्रपति वी.वी. गिरी, श्री नीलम संजीव रेड्डी, मोरारजी देसाई, श्री यशवंत राव चव्हाण, श्री जयप्रकाश नारायण, श्री हीरेन मुकर्जी, श्रीमती पायलेट अल्बा, श्रीमती एवं आचार्य कृपलानी, श्री नाना साहब गोरे, श्री नाथ पै, श्री एस.एम.जोशी, श्री मधु लिमये, श्री प्रेम भसीन, श्री राजाभाऊ खोब्रागड़े, संत फतह सिंह, श्री जगजीवनराम, श्री स.का.पाटिल, चक्रवर्ती राजगोपालचार्य, बैरिस्टर

एन .सी . चटर्जी , श्री चरणसिंह , श्री के .एन .मुंशी , सेठ गोविंददास , वक्षी गुलाम मोहम्मद , सरदार स्वर्ण सिंह , श्री लक्ष्मणसिंह , श्री हुमायूं कबीर , श्री फखरूद्दीन अली अहमद , श्री ओमप्रकाश त्यागी , श्री राजगोपाल शालवाले , श्रीमती सिंधु ताई फाटक , श्री रघुवीरसिंह शास्त्री , श्री रामचंद्र विकल , आदि अनेकानेक नेताओं ने पं . दीनदयाल उपाध्याय को श्रद्धांजलि अर्पित की।

संघ के सर-कार्यवाह माननीय बाला साहेब देवरस , लाला हंसराज गुप्त , मा . माधवराव फुले , मा . प्रकाशदास भार्गव , मा . बाबा साहब घटाते , मा . बसंत राव ओक , मा . ब्रम्हदेव जी , मा . सोहन सिंह आदि निकट वासियों तथा मा . भाऊराव देवरस , बैरिस्टर नरेंद्रसिंह जी , श्रीमती बुआजी आदि ने श्रद्धांजलि अर्पित की।

भारतीय जनसंघ की कार्यकारिणी ने श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये कहा कि , 'थोड़े से वर्षों में देश के राजनैतिक जीवन में जनसंघ ने जो प्रमुख स्थान प्राप्त किया है। उसका श्रेय यदि किसी व्यक्ति को है तो वे हैं पं . उपाध्याय जी। '

पं .दीनदयाल उपाध्याय के उत्तराधिकारी पं . अटल बिहारी वाजपेयी ने कहा कि - 'एक दीपक बुझ गया है , चारों ओर अंधकार है। आईये , पंडितजी के रक्त की एक-एक बूंद को माथे का चंदन बनाकर ध्येय पथ पर अग्रसर हों। उनकी चिता से निकली एक-एक चिंगारी को हृदय में धारण कर परिश्रम की पराकाष्टा एवं प्रयत्नों की परिसीमा करें। इस आधुनिक दधीचि की अस्थियों का बज्र बनाकर आधुनिक वृत्रासुरों पर टूट पड़े और पवित्र भूमि को निष्कंटक बनायें। हमारा मित्र , सखा , नेता और मार्ग दर्शक चला गया , हमें उनकी पवित्र स्मृति को हृदय में संजोकर ध्येय पथ पर आगे बढ़ना होगा। वे मौलिक विचारक , कुशल संगठन कर्ता और सबको साथ लेकर चलने में प्रवीण थे। जनसंघ को बनाने का श्रेय उन्हीं को है।

देश की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने प्रं .उपाध्याय जी को श्रद्धांजलि देते हुये कहा कि , 'श्री उपाध्याय देश के राजनैतिक जीवन में एक प्रमुख भूमिका अदा कर रहे थे। जनसंघ एवं कांग्रेस के बीच मतभेद चाहे जो हो , श्री उपाध्याय सर्वाधिक सम्मान पात्र नेता थे। उन्होंने अपना जीवन देश की एकता एवं संस्कृति को समर्पित कर दिया था।

पं . दीनदयाल उपाध्याय के निधन से व्यथित होकर सरसंघचालक परमपूज्य श्री गुरूजी ने मात्र इतना कहा- 'हे प्रभो '।

भारत की संसद ने, पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के संसद सदस्य न होते हुये भी उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। मुझे तो राष्ट्रीय कवि श्री कृष्ण सरल की ये पंक्तियां उनके सम्मानार्थ याद आती है-

''सम्मान न पाता हर कोई ऐसा वैसा।

सम्मान त्याग से सदा कमाया जाता है।।

अपनी हस्ती जनता के लिये मिटाता जो।

तो सर-आंखों पर वही बिठाया जाता है।।

सम्पूर्ण देश एवं देशवासी शोकाकुल थे, व्यक्ति एवं जन स्तब्ध थे। भारत-माता मौन थी।

❑ ❑ ❑

संक्षिप्त जीवन परिचय-

जन्म तिथि - २५ सितंबर १९१६

जन्म स्थान - ग्राम धनकिया

नाम - दीनदयाल उपाध्याय 'दीना'

पिता का नाम - श्री भगवती प्रसाद

माता का नाम - श्रीमती रामप्यारी

शिक्षा- सीकर के कल्याण हाई स्कूल से मैट्रिक परीक्षा उत्तीण की। संपूर्ण अजमेर बोर्ड में प्रथम श्रेणी में प्रथम। बोर्ड एवं स्कूल द्वारा स्वर्ण पदक प्रदान किये गये। दो वर्ष बाद पिलानी के बिड़ला कालेज से इंटर की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण। इलाहाबाद से एल.टी.किया। सम्पूर्ण-महाविद्यालयीन शिक्षा छात्रवृत्ति के बल पर पूर्ण की।

संघ से संबंध- विद्यार्थी जीवन में ही श्री सुंदरसिंह भंडारी जी से संबंध। सन् १९३७ में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से संपर्क में आये। उस वर्ष-मकर संक्राति के उत्सव में बेदमूर्ति पंडित सातवलेकर के करकमलों द्वारा कानपुर की शाखा को ध्वज दिया गया। सन १९४२ में पंडित जी ने लखीमपुर जिला प्रचारक के नाते प्रचारक का जीवन प्रारंभ किया। सन् १९४७ में उत्तरप्रदेश के सहप्रांत प्रचारक के नाते- उनकी नियुक्ति की गई।

विशेष- अधिवक्ता राजकुमार (लखनऊ) की अध्यक्षता में उत्तरप्रदेश जनसंघ की स्थापना की गई। उस समय पं.दीनदयाल उपाध्याय जी को उत्तरप्रदेश जनसंघ का कार्य दायित्व दिया गया। उससे पूर्व ५ मई १९५१ को डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में शहर कलकत्ता में 'पीपुल्स पार्टी' की स्थापना की गई। २७ मई १९५१ को जालंधर में प्रादेशिक स्तर पर भारतीय जनसंघ की स्थापना की गई। ८ सितंबर १९५१ में विविध राज्यों के कार्यकर्ताओं की दिल्ली में बैठक की गई। अखिल भारतीय स्तर पर दल का गठन किया जाये। ऐसे विचार रूप को सभी ने स्वीकार किया। २० से २२ अक्टूबर १९५१ को दिल्ली में अखिल भारतीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। २१ अक्टूबर को अधिकृत रूप से भारतीय जनसंघ की घोषणा की गई। इसके बाद उसी समय पं. दीनदयाल उपाध्याय को अखिल भारतीय महामंत्री का दायित्व सौंपा गया।

सारथी से रथी बनना- भारतीय जनसंघ के अखिल भारतीय अध्यक्ष डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी की कश्मीर में हत्या के बाद ऐसा लगा कि जनसंघ के इस शून्य को कौन भरेगा? परन्तु डॉ. मुखर्जी के बाद खाली पद को १९६७ में पं. दीनदयाल उपाध्याय ने भरा। इस दिन को भारतीय जनसंघ के इतिहास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण दिन माना गया। जब सारथी को रथी बनाया गया। अध्यक्ष बनते ही पं. दीनदयाल जी ने विराट दर्शन को संपूर्ण देश में फैलाने के लिये दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया। कालीकट का अधिवेशन और जनसंघ तथा पं. दीनदयाल उपाध्याय, तीनों अविस्मरणीय हो गये। जहाँ जनसंघ के कार्यकर्ताओं, समर्थकों में असीम उत्साह, उनकी आंखों में अतीव आनंद था। कालीकट अधिवेशन ने जहां सत्ताधीशों एवं अन्य दलों को चौंकाया और संदेश दिया कि **'सिंहासन खाली करो हम आते हैं'** इस उत्साह ने हृदय एवं आंखों में चमक पैदा की तो वहीं कुछ आंखों में जलन एवं पीड़ा भर दी। नफरत की चिनगारियां पैदा कर दी। परिणाम शायद सभी को ज्ञात कि मुगलसराय स्टेशन में पड़ी 'लावारिश लाश'।

अच्छाई का मूल्यांकन तुरंत नहीं होता।

उस पर प्रहार होते आये भारी-भारी।।

अन्याय किसी को जब जीवित खा लेते है।

तो लोग उसे कहने लगते हैं अवतारी।।

जिस देश धरा में हैं जीवन का सुमन खिला।

उस देश धरा के लिये समर्पित हो जाओ।।

तुम अगर चाहते हो दुनिया तुमको ढूंढ़े।

कुर्बानी की राहों में जाकर खो जाओ।।

११ फरवरी १९६८- पं. दीनदयाल उपाध्याय नहीं रहे। लेकिन यादें, अविस्मरणीय यादें, घटनायें, उन्हें तो हमेशा उनकी याद दिलाती रहेगी। जो इसके प्रत्यक्ष साक्षी है।

(१) तब तक खत्म करता रहूंगा जब तक .....?

किसी ने पं. दीनदयाल उपाध्याय से पूछा। पंडित जी सत्ता व्यक्ति को भ्रष्ट बनाती है। कांग्रेस सत्ता में है। इस सत्ता प्राप्ति ने कांग्रेस को भ्रष्ट कर दिया है। कल आपकी जनसंघ भी सत्ता में आयेगी। तो उसमें भी यह दुर्गण आयेगा। फिर आप इसके निदान के लिये क्या करेंगे।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने बड़ी सरलता से कहा कि हॉ- सत्ता सामान्यतः भ्रष्ट करती है। जो कांग्रेस आज सत्ता दोष से भरी है। वही स्थिति जनसंघ में भी सत्ता प्राप्ति के बाद आ जायेगी। यदि जनसंघ में भ्रष्टाचार फैलेगा तो जिस प्रकार ऋषि परशुराम ने २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियों से शून्य किया था तब जब भगवान राम जैसे श्रेष्ठ व्यक्ति उन्हें मिल गये तो संतुष्ट हो चले गये। वैसे ही में जनसंघ को तब तक बार-बार नष्ट करूंगा। जब तक मुझे भगवान राम सदृश्य व्यक्ति न मिल जायेगें। क्योंकि व्यक्तिगत संगठन, राष्ट्रीय प्रश्नों एवं देश की अखंडता के आगे गौण हो जाते है। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने डॉ. श्यामबहादुर वर्मा के द्वारा पूछे गये प्रश्न का जिस स्पष्टता से उत्तर दिया था, वह दीनदयाल जी के सदृश्य राजयोगियों के लिये ही संभव था। डॉ वर्मा उत्तर सुनकर स्तब्ध थे। काश वे आज होते तो देश की दिशा एवं स्थिति ही कुछ और होती।

(२) देखा, इसके- बिना तुम्हारा नुकसान हो गया था .....?

पं. दीनदयाल उपाध्याय मुजफ्फरनगर से मोती हारा रेल द्वारा जा रहे थे। डिब्बे में कोई बड़े सरकारी अधिकारी भी सफर कर रहे थे। इतने में एक बालक आया और पंडित जी के जूतों में पॉलिस करने लगा। पॉलिस कर-पैसे लेकर जब जाने लगा तो पंडित जी के सामने बैठे अधिकारी से पूछा- साहब पॉलिस कर दूं, साहब ने पूछा- तुम्हारे पास साफ कपड़ा है। लड़के ने कहां-नहीं ? तो उन अधिकारी ने कहां जाओ फिर पॉलिस की जरूरत नहीं है। पंडित जी समाचार पत्र पढ़ते हुये इस वार्तालाप को सुन रहे थे। उन्होंने बच्चों को ठहरने को कहां एवं सूटकेस से तौलियां निकाला। उसे फाड़ा और बच्चे से कहां कि साहब के जूतों में पॉलिश करो। जब बच्चा पॉलिश कर जाने लगा एवं कपड़ा लौटाने लगा तो पंडित जी ने कहा इसे अपने पास रखो बेटा। साफ कपड़ा रखा करो। देखो इसके बिना तुम्हारा अभी नुकसान होने जा रहा था। सरकारी अधिकारी महोदय स्तब्ध थे। कुछ बोल नहीं पा रहे थे। सोच रहे थे कि कौन है महाशय। तभी स्टेशन आया। जनसंघ के हजारों कार्यकर्ता स्टेशन को पं. दीनदयाल उपाध्याय जिंदाबाद, जनसंघ जिंदाबाद के नारों से गुंजा रहे थे। उन्होंने डिब्बे में चढ़कर पं. उपाध्याय को पुष्पों से लाद दिया। तब अधिकारी महोदय के मुंह से निकला- अहा ! तो ये ही है पं. दीनदयाल उपाध्याय। उन्होंने डिब्बे में घटित घटना के संदर्भ में माफी मांगी। परन्तु पंडित जी अपनी चिरपरचित मुद्रा में मुस्करायें। शायद पंडित जी की मृत्यु का समाचार सुनकर वे पुनः स्तब्ध हुये होंगे।

(३) योजना आयोग माने ..... ?

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी से किसी व्यक्ति ने पूछा। पंडित जी योजना आयोग (प्लानिंग कमीशन) से क्या अभिप्राय होता है। पंडित जी ने मुस्कराते-हुये जवाब दिया कि भारत के प्लानिंग कमीशन से तात्पर्य है। वह प्लानिंग जो मात्र कमीशन के लिये तैयार की जावे। पंडित जी का जवाब हो सकता है कि उस समय उन महाशय को पंसद न आया हो। पंरतु आज यदि भारतीय सत्ताधीशों पर, योजनाओं के कर्णधारों को देखा जायें तो स्पष्ट है कि आज देश में योजनायें बनती और बिगड़ती ही 'कमीशन' को ले देकर हैं। वे हमारे बीच नहीं हैं पंरतु उनका दीर्घकालिक सोच एवं पैनी दृष्टि उनके गहरे तत्व ज्ञान को स्पष्ट करती है।

(४) मुझे उसकी, उंसे मेरी जरूरत थी ..... ?

पंडित उपाध्याय जी प्रवास से सीधे लखनऊ कार्यालय पहुंचे। दैनिक क्रियाओं से निवृत्ति के पश्चात उन्होंने कार्यालय प्रमुख श्री महेश दत्त शर्मा से कहा कि शर्मा जी बाल काफी बढ़ गये हैं। अपने नाई को बुलाइये। जब नाई को बुलवाया गया तो पता चला वह तो आवश्यक कार्य से कहीं गया है। पंडित जी बोले अच्छा में सैलून से होकर आता है। कुछ देर बाद वे लौटे तो शर्मा जी ने देखा कि पंडित जी के बाल तो बने हैं। परन्तु वे छोटे बड़े हैं। तब शर्मा जी ने पूछा पंडित जी आपने कहां बाल बनवाये तो जवाब था कि 'धुम्मा सैलून' से। श्री शर्मा जी को आश्चर्य हुआ। उन्होंने जाकर देखा तो सैलून में तो भीड़ थी। उसी सैलून के आगे एक पटिया सड़क पर डाले एक नाई बैठा था। शर्मा जी समझ गये कि पंडित जी ने यहीं बाल बनवाये हैं। उन्होंने आकर कहा कि आपने वहां बाल क्यों बनवायें तो जवाब था। कि शर्मा जी उसे ग्राहक चाहिये था वह खाली बैठा था। मुझे बाल बनवाना था। दोनों को एक दूसरे की आवश्यकता थी। यह समाज इसी आवश्यकता पर टिका एवं चल रहा है। दुर्भाग्य यह है कि हम उसकी उपेक्षा कर देते हैं, जिसे काम चाहिये। हम वहां खड़े होते हैं, जहां काम ज्यादा और समय उसके पास नहीं है। आज के संदर्भों में देखा जाये तो ऐसा लगता है कि गांव के लुहार, बढ़ई, नाई, कुम्हार आदि जो नष्ट होने की कगार पर है। उसका कारण उनके पास काम तो है पर लोग वहां जा रहे है, जहां समय नहीं है। इस असंतुलन को दूर करके ही देश, समाज को दिशा दी जा सकती है। पंडितजी समाज के निचले व्यक्ति के संदर्भ में कैसा सोचते थे, यह इस बात से पूर्णतः स्पष्ट है।

(५) अब आप मेरा वक्तव्य छाप सकते हैं .....?

सन् १९६४ की बात है। जनवरी-फरवरी के दौरान मद्रास में हिंदी के विरोध में व्यापक हिसंक घटनायें हो रही थी। उन इलाकों का दौरा कर पंडित जी लौटे। बंबई में उनकी पत्रकार वार्ता का आयोजन किया गया। उस प्रेस वार्ता में पंडित जी ने कहा कि देश की अखंडता सबसे बड़ी जरूरत एवं आवश्यकता है। देश को गृह युद्ध का खतरा उठाकर भी भाषायी उपद्रवों को दबा देना चाहिये।' इस जवाब को सुनकर एक मराठी अखबार के संवाददाता ने जो ईसाई थे तथा जो संभवतः अंग्रेजी के समर्थक भी थे। उन्होंने कहा- पंडित जी आप यह क्या कह रहे हैं ? आप देश को गृह युद्ध का परामर्श दे रहे हैं। क्या आपके वक्तव्य को छाप दिया जाये ?

तो पंडित जी ने पुनः निर्भीकता से कहा कि हां मैंने जैसा कहा है वैसा आप ज्यों का त्यों लिखे। 'देश की अखंडता, देश की एकता, ज्यादा महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। इसे बचाये रखने के लिये गृह युद्ध का खतरा उठाना पड़े तो उसे भी उठा लेना चाहिये। परन्तु भाषायी दंगों, उपद्रवों को कठोरता से खत्म कर देना चाहिये।' महोदय अब आप मेरा वक्तव्य समाचार पत्र में छाप सकते हैं।

ऐसी निर्भीकता विरले लोगों में रहती है।

(६) मैंने इस विषय की पांच सौ पुस्तकें पढ़ी है.....?

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी को लिखने एवं पढ़ने की अत्यधिक रुचि थी वार्तालाप करते हुये। उठते-बैठते पठन पाठन ही मुख्य ध्येय था। यही कारण है कि जब भी वे यात्रा करते थे तो पैसेंजर गाड़ी में सफर करते। ताकि पढ़ने एवं लिखने का ज्यादा से ज्यादा समय मिल सके। जब वे 'पंचवर्षीय योजना' (Five Year Plan) पर पुस्तक लिखने का विचार कर रहे थे तो उन्होंने प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैया) से सलाह मांगी। तो उन्होंने प्रति प्रश्न किया कि पंडितजी आप तो अर्थशास्त्र के छात्र रहे नहीं। आप 'फाइव ईयर प्लान' पर कैसे लिखेंगे। तो रज्जू भइया ने कहा कि मैं जवाब सुनकर आश्चर्य चकित हो गया। पंडित जी ने कहा कि इस विषय को लिखने के पूर्व मैंने अर्थशास्त्र की साधारण से लेकर उच्चकोटि की लगभग ५०० पुस्तकों का अध्ययन किया है। यह बात स्पष्ट करती है कि वे बिना अध्ययन किये किसी भी विषय पर न तो बोलते थे न लिखते थे।

(७) जब देशी साबुन मिल सकता है .....

पंडितजी नागपुर संघ कार्यालय आए हुये थे। उस समय बाबूराव पालधीकर सुबह के समय शेविंग कर रहे थे। अचानक पंडितजी की नजर पड़ी उन्होंने शेविंग सोप को उठाया और खिड़की के बाहर फेंक दिया। बाबूराव पालधीकर समझे कोई मजाक कर रहा है उन्होंने पलटकर देखा तो पं. दीनदयाल जी खड़े थे। उन्हें आश्चर्य हुआ कि पंडित जी तो कभी किसी से मजाक नहीं करते ? उन्होंने प्रश्नवाचक मुद्रा में देख? तो पंडित जी ने कहा कि जब स्वदेशी साबुन हमें सरलता से मिल सकता है तो विदेशी साबुन की आवश्यकता क्यों ? हम स्वयंसेवकों को तो स्वदेशी को अपनाने का आग्रह करते हैं तथा हम स्वयं उसके विपरीत आचरण करते हैं। क्या यह उचित है? इस बात से स्पष्ट है कि वे स्वदेशी वस्तुओं के लिये कितने सतर्क थे। उसे व्यवहारिक एवं सैद्धांतिक दोनों रूपों में अपनाते थे। आज जब राजनेताओं के आचरण को देखा जाये तो उनकी करनी एवं कथनी में व्यापक अन्तर होता है। इस स्थिति ने ही देश में विकास की गति को न केवल अवरुद्ध किया बल्कि राजनेताओं की विश्वसनीयता को संदिग्ध किया है। ऐसी घटना का उल्लेख जबलपुर में पी. एच. ई. के यंत्री(इंजीनियर) अरुण गोरे ने भी बतलाया।

(८) वे स्वयं पीछे-पीछे चलेंगे .....

दूसरे आम चुनाव के बाद , पंडित जी कार्यकर्ताओं की बैठक को संबोधित कर रहे थे तभी एक कार्यकर्ता ने प्रश्न किया कि पंडित जी मुस्लिम समाज को कैसे जनसंघ की ओर आकर्षित किया जाये बतलाइये ? उन्होंने बड़ी ही तत्परता से कहाकि यह वर्ग हमेशा सत्ता के पीछे चलता है। अभी कांग्रेस सत्ता में है तो यह कांग्रेस के साथ है। यदि आप अपनी शक्ति में वृद्धि कर लेंगे तो यह आपके पीछे-पीछे चलने लगेगा। अतः आप शक्ति को प्राप्त कीजिये। बाकी कार्य अपने आप स्वयं हल हो जायेंगे। इसी प्रकार के संघ के बौद्धिक के दौरान एक स्वयं सेवक ने कहा कि पंडित जी एक और एक मिलकर ग्यारह होते हैं। अतः हिन्दू एवं मुस्लिम समाज को मिलकर शक्ति बननी चाहिये। इसके लिये हमें प्रयास करना चाहिये ? तो पंडितजी ने कहा एक और एक तो ग्यारह होते हैं परन्तु क्या एक और आधा मिलकर ग्यारह हो सकते हैं? क्या एक और चौथाई मिलकर ग्यारह हो सकते हैं? कदापि नहीं। उन्होंने कहा कि पहले हिदूं समाज को एक करो क्योंकि जब तक यह संगठित नहीं होगा बाकी चीजें व्यर्थ हैं। जिस दिन हिदूं एक हो जायेगा उस दिन वे स्वयं (मुसलमान) आपसे मिलकर ग्यारह कर देंगे। अतः शक्ति को संग्रह करो बाकी चीजें अपने आप हो जायेंगी।

(९) हमें अणु शक्ति से लैस होना चाहिये .....

डाल्टन गंज में २० जून १९६६ को एक जनसभा का आयोजन किया गया। पंडित दीनदयाल जी उस सभा में मुख्य वक्ता थे। उन्होंने अनेक विषयों पर अपने विचार व्यक्त करते हुआ कहा कि देश की एकता एवं अखंडता एवं आंतरिक सुरक्षा सबसे महत्वपूर्ण विषय है। इस हेतु उस पर विशेष ध्यान देना एवं प्रयास करना आवश्यक है। हमें विदेशी तकनीक पर आश्रित नहीं रहना चाहिये। हमें स्वयं अणु शक्ति से सम्पन्न होना होगा। अतः भारत को इस दिशा में प्रयास करना होगा। भारत के संदर्भ में हम देखते हैं कि, इतने वर्षों बाद पं. दीनदयाल उपाध्याय जी की सोच कितना सही है।

(१०) अपना संपूर्ण जीवन जब राष्ट्र को समर्पित कर दिया .....तब?

अपने प्रवास की समाप्ति के दौरान पं. दीनदयाल जी उपाध्याय लखीमपुर के संघ कार्यालय में आये। उन्हें जिस वस्तु की आवश्यकता होती थी तत्काल वैद्य जी वह वस्तु लाकर दे देते थे। तभी पंडित जी ने कुछ कागजात श्री वैद्य जी को दिये एवं उन्हें जला देने का आदेश दिया । जब वे इन कागजातों को जलाने लगे, तो अनायास स्वाभाविक रूप से उनकी दृष्टि उन पत्रों पर गई तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि वे कागजात तो वास्तव में विभिन्न परीक्षों में उत्तीर्ण परीक्षाओं के प्रमाण पत्र थे। जिन परीक्षाओं में पंडित जी ने प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त किया था। वैद्य जी ने कहा पंडिजी ये प्रमाण पत्र जलाने की क्या आवश्यकता है। ये तो आपकी सफलताओं के प्रमाण हैं। इन्हें नहीं जलाऊंगा। तो पंडित जी ने जोर दिया कि 'भाई कि जब मैंने अपना संपूर्ण जीवन ही माँ-भारती के चरणों में समर्पित कर दिया है तो अब इन प्रमाण पत्रों की क्या आवश्यकता है।' ज्यों-ज्यों प्रमाण पत्र अग्नि को समर्पित हो रहे थे त्यों-त्यों पंडित जी का मुख मण्डल आलोकित होता जा रहा था। बरबस अमर क्रांतिकारी श्री वीर सावरकर की पंक्तियाँ याद आ रहीं थीं -

जलाकर यह स्वार्थ। हम हो गये कृतार्थ।।

(११) ऐसी विजय मैं कदापि पसंद नहीं करुंगा .....?

जौनपुर लोक सभा चुनाव में पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी प्रत्याशी। चारों ओर चुनावी प्रचार अपने चरम पर था। विजय प्राप्ति हेतु विपक्ष के प्रत्याशी सही गलत सभी कुछ अपने भाषणों में बोल रहे थे। परन्तु पंडित जी अपनी उसी संयमित शांत शैली में अपनी बात जनमानस में रख रहे थे। कार्यकर्ताओं को लगा कि ऐसे में चुनाव जीतना तो असंभव है। तो उन्होंने पंडित जी से कहा कि 'पंडित जी बिना तीखापन

आये एवं विपक्षियों पर आरोप लगाये बिना जीत संभव नहीं है। क्योंकि मतदाता को शिक्षात्मक व्याख्यान पसंद नहीं हैं। 'अतः शैली में, भाषणों में परिवर्तन करना ही होगा। तो पंडित ने तत्काल कहा कि यदि ऐसी बात है तो मैं चुनाव से हटना पसंद करुँगा। मैं अनावश्यक रूप से व्यक्तिगत आलोचना का विरोधी हूं। मैं पार्टियों की नीतियों, कार्यक्रमों को जनता के समक्ष रखूंगा। इसके अलावा प्रत्येक बात को मैं अनैतिक एवं गलत मानता हूं। यदि इस प्रकार के आचरण से जीत मिले तो ठीक अन्यथा मुझे ऐसी जीत नहीं चाहिये।' आज पंडित जी की बातें याद आती हैं तो लगता है कि इस लोकतंत्र के कमजोर होने का कारण इन्हीं बातों की उपेक्षा करना है। क्योंकि आज 'ऐन केन प्रकारेण' जीत हासिल करना प्रत्येक दल की प्राथमिकता रह गई है। समाज में व्यापक हिंसा, भ्रष्टाचार, अराजकता का मूल कारण मात्र चुनाव जीतने की लिप्सा। साधन कुछ भी हो साध्य अर्जित ही होना चाहिये। ऐसा सोच ही समाज में रह गया है।

इसी जौनपुर चुनाव में एक अन्य प्रसंग भी उपस्थित हुआ जौनपुर लोकसभा चुनाव में बाम्हण एवं राजपूतों की बराबर-बराबर संख्या थी। पंडित जी तो नीतियों, कार्यक्रमों के अनुसार चल रहे थे। परन्तु उनके प्रतिद्वंदी राजपूतों को जातिगत आधार पर प्रभावित कर रहे थे। फलस्वरूप कई पदाधिकारियों, कार्यकर्ताओं ने पंडित जी को कहा कि हमें भी ब्राम्हणवाद का सहारा लेना चाहिये तथा इसी ढंग से प्रचार प्रसार करना चाहिये। उन्होंनें पंडितजी से कहा कि आप भले ही यह बात न कहें, परन्तु हमें ऐसा करने की स्वीकृति दीजियेगा। इस बात को सुनते ही वे क्रोधवश बोले कि 'सिद्धांतों की बलि चढ़ाकर, नीतियों को तिलांजलि देकर प्राप्त विजय हमें स्वीकार नहीं बल्कि इससे अच्छी तो पराजय है।' उन्होंने फिर कार्यकर्ताओं को समझाते हुए कहा कि 'उपचुनाव किसी पार्टी या संगठन के लिये महत्वपूर्ण नहीं होता है। जीत अथवा हार भी महत्वपूर्ण नहीं है। परन्तु यदि एक बार जातिवाद का सहारा लिया तो यह भूत हम सभी पर सवार हो जायेगा। फिर जनसंघ एवं कांग्रेस में अन्तर ही समाप्त हो जायेगा।'

आज के संदर्भों में पंडितजी की बात को देखें तो लगता है कि जो बात उन्होंने आज से २०-२५ वर्षों पूर्व कही थी आज पूर्णतः सत्य हो रही है। पार्टियाँ जातिवाद एवं क्षेत्रीयता के आधार पर चुनाव लड़ रही हैं और इसका परिणाम समाज में कटुता, हिंसा, घृणा का वातावरण फैलता जा रहा है तथा एक जाति दूसरी जाति के, एक वर्ग दूसरे वर्ग के प्राणों का प्यासा है। चुनावों में हिंसा, हत्यायें, आतंक इसी जातिवाद का परिणाम है। पंडित जी का चिंतन कितना सही था आज यह बात स्पष्ट है।

(१२) अन्यथा वे आचार्यों के आचार्य हैं .....?

एक विश्वविद्यालय में पंडित दीनदयाल उपाध्याय को कालेज के प्राध्यापकों के साथ चर्चा हेतु आमंत्रित किया गया। पंडित जी ने चर्चा के दौरान कुछ बातों को उल्लेखित किया तो प्राध्यापकों को आश्चर्य हुआ कि जिन पुस्तकों का उद्धरण उन्होनें दिया वे पुस्तकें विश्वविद्यालय ग्रंथालय तक पहुंची नहीं थीं तथा यदि पहुंची भी थीं तो प्राध्यापकों ने उनका अध्ययन नहीं किया था। जब समापन हुआ तो धन्यवाद देने खड़े हुये प्राध्यापक ने कहा कि 'दि ओनली सिम्बल थिंग अबाउट दिस मैन इज हिज ड्रेस, अदरवाइज ही इज मास्टर आफ मास्टर्स। (इनके बारे में एक ही बात साधारण है - वह है इनके वस्त्र अन्यथा ये आचार्यों के आचार्य हैं)

इस बात से स्पष्ट होता है कि वे अध्ययन के प्रति लगनशील थे तथा नई-नई बातों की जानकारी प्राप्त करना उनका स्वभाव था।

(१३) यह व्यक्ति देश के माथे पर कलंक है .....?

पं. दीनदयाल उपाध्याय ट्रेन में सफर कर रहे थे उनके साथ उनके मित्र भी यात्रा कर रहे थे। वे काफी अमीर थे उसी समय एक भिखारी भीख मांगते हुए आया। देखने में काफी हष्ट-पुष्ट था। दीनदयाल जी के मित्र उसे एक रुपये का सिक्का निकाल कर देने लगे। तभी पंडित जी ने अपने मित्र को उस भिखारी को पैसा देने से मना कर दिया। थोड़ी देर बाद कम्पार्टमेंट में एक अंधे भिखारी ने प्रवेश किया। वह गाना गाता जा रहा था तथा भीख मांग रहा था। पंडित जी ने अपने मित्र से कहा कि अभी आप जो सिक्का उस भिखारी को दे रहे थे इसे दे दीजिये। मित्र ने वह सिक्का उस अंधे भिखारी को दे दिया। उसके बाद पंडित दीनदयाल जी से उन्होंने आश्चर्य से पूछा कि पंडित जी पहले वाले भिखारी को आपने भीख देने से रोका तथा अब भिखारी को भीख देने को कहाँ आखिर क्यों ? पंडित जी ने जवाब दिया कि पहले वाला भिखारी नौजवान एवं स्वस्थ्य था। वह कार्य करने के योग्य था। ऐसे व्यक्ति को भीख देकर उन्हें कार्य न करने हेतु प्रोत्साहन देना है। ऐसे व्यक्ति स्वयं के लिये एवं देश के माथे पर कलंक हैं। जबकि अंधा भिखारी तो गाना गा रहा था। वह भीख नहीं मांग रहा था। वह अपनी योग्यता की प्रशंसा पाना चाह रहा था। वह अपाहिज होते हुये भी, दया का पात्र नहीं बन रहा था, इसलिये मैंने आपसे उसे भिक्षा देने को कहा था । इस बात को सुनकर पंडित जी के मित्र आश्चर्य चकित हो गये।

(१४) बिना नमक की दाल खाने का राज क्या .....?

श्रीमती महादेवी मुदगल पंडित दीनदयाल उपाध्याय की ममेरी बहिन थी। जब वे खाना बनाया करती थी तो प्रायः पंडित जी का आग्रह रहता था कि उन्हें बिना नमक की दाल दी जाये। पूछने पर उत्तर मिलता था कि मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है अतः सादी दाल, सादी रोटी दी जाये। जब यह क्रम अनेकों दिन चला एवं चलता ही रहता था तो उनकी बहिन श्रीमती महादेवी मुदगल ने कहा भैया तुम्हें हमारी कसम साफ-साफ बताओ कि क्या तुम्हारा स्वास्थ्य वाकई खराब है। तो उन्होंने बड़े ही स्नेहिल शब्दों में कहा कि तुमसे झूठ नहीं बोलूगा बहिन। वास्तव में चूंकि मैं प्रचारक हूं इसलिये ऐसी आदत डालना चाहता हूं कि कहीं भी भारत वर्ष में रहूं, जैसे मेरे करोड़ों भाई-बहिन भोजन करते हैं वैसा मैं करुं। जब मैं ऐसा करता हूं तो मुझे अत्यधिक आत्म संतुष्टि मिलती है। फिर मैं अपनी आदत भी नहीं बिगाड़ना चाहता और स्वस्थ्य भी रहना चाहता हूं। श्रीमती मुदगल जो जबलपुर के धनवंतरी नगर में रहती हैं (यह जानकारी बहुत कम लोगों को है श्री बाबूराव जी परांजपे पूर्व सांसद जबलपुर ने मुझे यह बात बताई और मैंने उनसे भेंट की) जब यह वाकया बतलाया तो मुझे लगा वास्तव में पं. दीनदयाल, दीनों के दयाल थे। वे साधारण व्यक्तित्व के असाधारण पुरुष थे।

(१५) थर्ड क्लास में चलता हूं तो वास्तविक भारत दिखता है .....?

मैंने जब पंडित दीनदयाल उपाध्याय के बहनोई (श्री परमानंद मुदगल जी) से चर्चा की तो उनकी आंखों में विगत अनेक वर्षों पूर्व के वे दृश्य दिखलाई देने लगे। उन्हें स्पष्ट करते समय उनका चेहरा अत्यधिक प्रफुल्लित था। प्रायः दीनदयाल जी ट्रेन में यात्रा किया करते थे। यह यात्रा जनता रेल में थर्ड क्लास में रहती थी। जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष, फिर थर्ड क्लास में यात्रा। एक दिन श्री मुदगल जी ने कहा पंडित जी आप जनता रेल में थर्ड क्लास में क्यों चलते हैं तो पंडित जी ने मुस्कुराते हुए कहा कि, इसके ३ कारण हैं। पहला- रेल यात्रा काफी सस्ती पड़ती है इसलिये प्रवास में आर्थिक बोझ भी नहीं पड़ता। दूसरे- इसमें इतना समय मिल जाता है कि समयाभाव के बावजूद भी लेखन एवं अध्ययन का मेरा कार्य सुचारु रूप से चलता रहता है। इसके अलावा तीसरी महत्वपूर्ण- एवं आवश्यक बात है कि, थर्ड क्लास में यात्रा से आम आदमी की तकलीफों, उनका सानिध्य मिलता है तथा वास्तव में मुझे वास्तविक भारत के दर्शन हो जाते हैं। पंडितजी की इस सोच से स्पष्ट होता है कि वे वास्तव में महात्मा गांधी के पथगामी थे। जो प्रायः यात्रा थर्ड क्लास में यात्रा किया करते थे। आज जब देश के कर्णधारों के व्यवहारिक रूप को देखों तो लगता है कि वास्तव में कितना अन्तर है। वे मंच पर तो देश की समस्याओं पर आसूं बहाते हैं, सिद्धांतों की दुहाई देते हैं।

परन्तु सबसे ज्यादा सिद्धांतों को रौंदना एवं मखौल उड़ाना यही नेता करते हैं। शायद इसी करनी एवं कथनी के अन्तर ने नेताओं की विश्वसनीयता को संदेह के घेरे में ला खड़ा किया है।

(१६) परांजपे जी क्या जबलपुर में जनसंघ नहीं है ..... ?

जनसंघ एवं भा. ज. पार्टी के वरिष्ठ नेता एवं पूर्व सांसद श्री बाबूराव परांजपे जबलपुर ने एक घटना का उल्लेख करते हुए कहा कि वे पंडित दीनदयाल जी को जबलपुर स्टेशन से लेकर अपने निवास राइट टाऊन गेट नं. ४ आ रहे थे। होमसाइंस रोड पर मिट्टी के तेल की कतारें लगी थी। इस दृश्य को देखते हुए उन्होंने श्री परांजपे से प्रश्न किया कि 'परांजपे जी जबलपुर में जनसंघ नहीं है क्या ? पंडित जी के प्रश्न से चौंकते हुये परांजपे जी ने कहा कि मैं आपका प्रश्न नहीं समझा ? पंडित जी ने कहाकि परांजपे जी साधारण बात है। पूरे शहर में मिट्टी के तेल की कतारें देखकर लग रहा है कि जनसंघ के रहते हुये यह संभव है? तो दादा परांजपे जी ने कहा 'नहीं पंडित जी' यह पर्चा देखिये यह इसी आंदोलन का है। चूंकि आप शहर में आ रहे थे। इसलिये जबलपुर जनसंघ ने इस आंदोलन की तिथि को कुछ दिन के लिये बढ़ा दिया है। हमारा ध्यान जनसमस्या के लिये है। इस घटना से स्पष्ट है कि पंडित जी का ध्यान यदि राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की ओर था तो उनका ध्यान सर्वसाधारण की सामान्य से सामान्य छोटी समस्या की ओर भी था। यह बात ही उन्हें महानतम स्वरूप प्रदान करती थी।

(१७) कभी महसूस ही नहीं होता था कि वे इतने बड़े चिन्तक थे .....?

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रचारक, पूर्व जनसंघ एवं भारतीय जनता पार्टी के वरिष्ठ नेता श्री सुभाष बैनर्जी जबलपुर जिन्हें पंडित दीनदयाल उपाध्याय के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने कहा कि वे प्राय: लेखन एवं अध्ययन में हमेशा रत रहते थे। 'एकात्म मानव दर्शन' के वैचारिक दर्शन के साथ यह सिद्ध हो चुका था कि वे उच्चकोटि के चिन्तक एवं दार्शनिक हैं। परन्तु जब वे कार्यकर्ताओं से चर्चाओं में व्यस्त रहते तो कभी भी परायापन महसूस नहीं होता था। हमें कभी यह महसूस नहीं होता था कि वे बहुत बड़े पदाधिकारी या बहुत बड़े चिन्तक हैं। इस अपनत्व के भाव, सरलता एवं सादगी के गुण ने उन्हें श्रेष्ठता प्रदान की। मैंने जब दादा बैनर्जी से प्रश्न किया कि, जनसंघ का श्रेष्ठतम एवं मूलदर्शन होने के बाद भी क्या कारण है कि 'एकात्म मानववाद' का जितना विस्तार होना चाहिये उतना नहीं हुआ। इसके लिये

कौन जिम्मेदार है ? तो उन्होंने अत्यन्त सरलता एवं स्पष्टता से स्वीकार किया कि यह हमारा दुर्भाग्य है कि श्रेष्ठतम दर्शन के व्यावहारिक पक्ष को हम जन सामान्य तक पहुंचाने में उतने सफल नहीं रहे। जितना हमें होना चाहिये। उन्होंने कहा कि भविष्य की सफलताओं की संभावनाएँ इस 'दर्शन' की व्यापकता पर ही आधारित है। अतः हमें इसे सैद्धांतिक पक्ष के साथ-साथ व्यावहारिक पक्ष को भी ध्यान में रखकर इसे बढ़ाना होगा।

(१८) अत्यंत सादा रहन-सहन ..... ?

श्रीमती सुधा परांजपे, श्रीमती जयश्री बैनर्जी, ठा. मुलायम सिंह, चिंतामन साहू, मनोहर राव सहस्त्रबुद्धे, श्री नंद किशोर शुक्ला आदि जबलपुर के अनेकानेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों से भेंट की। जिन्हें पंडित दीनदयाल उपाध्याय का सानिध्य प्राप्त हुआ था। उन्होंने स्पष्ट किया कि पंडित दीनदयाल जी का व्यक्तित्व अत्यन्त सरल एवं सादा था। वे जो बात करते थे उसी के अनुरूप उनका आचरण था। सादे व्यक्तित्व के संदर्भ में उनकी टिप्पणी होती थी कि देश में लाखों करोड़ों व्यक्तियों को भरपूर भोजन एवं पर्याप्त वस्त्र प्राप्त नहीं होते हैं ऐसे में हमारा यह दायित्व होता है कि, साधारण ढंग से जियें एवं आवश्यकताओं को कम से कम करें। वे प्रत्येक कार्य को स्वयं अपने हाथों से संपन्न करने के पक्षधर थे। इसी बात को उन्होंने अपने 'स्वदेशी के विचार' के तहत स्पष्टता से स्पष्ट किया।

पं. दीनदयाल उपाध्याय के उपरोक्त विचारों एवं व्यवहारों को आज के भारत के संदर्भ में देखें तो कहीं भी (पूरे तौर पर नहीं) व्यावहारिक स्वरुप दिखलाई नहीं देता। आज स्वदेशी के नाम पर विदेशी तकनीक एवं आचरण का बोलबाला है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश ने देश के स्वावलंबन के आधार को तहस नहस कर दिया है। बढ़ते हुए विदेशी कर्ज एवं देश के कर्णधारों के पाश्चात्य सोच के व्यापक स्वरूप को देखकर कभी-कभी प्रश्न उठता है कि क्या यह उन्हीं गांधी एवं दीनदयाल का देश है, जो कभी विश्व में श्रेष्ठतम था और आज हर छोटी बड़ी आवश्यकताओं के लिये भीख का कटोरा लिये खड़ा है।

(१९) पाले पोसे सकल अंग तुलसी सहित विवेक ..... ?

पं. दीनदयाल उपाध्याय भारतीय जनसंघ के मुखिया थे तो यह बात केवल सैद्धांतिक नहीं बल्कि उसका व्यवहारिक स्वरूप भी परिलक्षित (दिखलाई) होता था।

एक बार पं. अटल बिहारी वाजपेयी पंजाब के प्रवास से लौटे। जैसे ही दिल्ली कार्यालय पहुंचे उन्होंने घोषणा कर दी कि अब वे आगे का प्रवास रद्द कर देंगे। शायद प्रवास में काफी कष्ट हुआ था तथा कार्यकर्ताओं ने ज्यादा परेशान कर दिया था। इस खीज ने पंडित वाजपेयी को ऐसा करने पर मजबूर कर दिया था। सभी कार्यकर्ता एवं पदाधिकारी स्तब्ध थे। सभी सोच रहे थे कि अब शायद पं. दीनदयाल जी कुछ कहेंगे। शायद उन्हें डांट भी सकते हैं। परन्तु दीनदयाल जी ने कहा अच्छा भाई आप दौरे मत करना। परन्तु आप प्रवास से आये हैं। आपको थकान है। आप स्नान कीजिये एवं इसके बाद आराम। पं. अटल बिहारी वाजपेयी स्नान करके जब लौटे तब तक पंडित दीनदयाल जी ने स्वयं दाल-सब्जी रोटी बना ली। उन्हें बैठा कर स्वयं हाथों से खिलाया। परिणाम पं. अटल बिहारी वाजपेयी मुस्कराते हुये, बिना किसी शर्त के आगे के प्रवास पर रवाना। ऐसे थे पंडित दीनदयाल जी पार्टी के मुखिया।

ऐसा ही एक और उदाहरण- १९५८-५९ बम्बई में भारतीय जनसंघ की अखिल भारतीय कार्यकारणी की बैठक। सभा का संचालन स्वयं पंडित दीनदयाल जी कर रहे थे। पंडित जी ने प्रत्येक सदस्य से आग्रह किया कि वे समयाभाव को देखते हुये संक्षिप्त में अपनी बातों को रखे। प्रो. बलराज मधोक जब बोलने खड़े हुये तो आदत से मजबूर वे संक्षिप्त में अपनी बात नहीं रख सके और उनका भाषण चलता रहा। अतः मजबूर होकर पंडित जी को उन्हें टोकना पड़ा तो प्रो. मधोक यह कहते हुये नाराज होकर बैठ गये कि 'उन्हें हमेशा ऐसा कहकर बैठाया जाता है।' दूसरे दिन पदाधिकारियों के प्रवास के कार्यक्रम तैयार हो रहे थे। तभी प्रो. बलराज मधोक के प्रवास की बात आयी तो प्रो. मधोक चूंकि नाराज तो थे ही उन्होंने कहा उनकी क्या आवश्यकता है। अतः मैं प्रवास पर नहीं जाऊंगा। सभी आश्चर्यचकित। तभी पंडित जी ने कहा बलराज जी केरल एवं मद्रास में तो अंग्रेजी में बोलना आवश्यक होता है। फिर आपके अलावा और कौन है, जो अंग्रेजी में जनसंघ की बात स्पष्ट कर सके। इन राज्यों में आपका प्रवास पार्टी के लिये काफी लाभप्रद होगा। इस बात ने ऐसा असर डाला कि बलराज मधोक जी तत्काल मद्रास, केरल के प्रवास पर रवाना। इन दो प्रसंगों से लगता है कि पं. दीनदयाल जी उपाध्याय केवल जनसंघ के मुखिया ही नहीं थे बल्कि सही अर्थों में उसको सार्थक स्वरूप प्रदान करते थे। तभी तो बाबा तुलसी की ये पंक्तियाँ उनके 'मुखिया' के व्यक्तित्व पर सही बैठती थीं-

मुखिया मुख सो चाहिये। खान पान में एक।

पाले पोसें सकल अंग। तुलसी सहित विवेक।।

पं. दीनदयाल उपाध्याय की हत्या ने इन घटनाओं, यादों को ताजा कर दिया है। वे शारीरिक रूप से हमारे बीच तो नहीं हैं परन्तु उनका चिंतन, दर्शन, उनकी विचारधारा आज भी हमारा मार्ग दर्शन कर रही है। पं. उपाध्याय के जीवन पर उक्त पंक्तियाँ पूर्णतः सही बैठती हैं -

सच ही तो है, सैकड़ों-हजारों वर्षों में।

सूरमा एक कोई धरती पर आता है।।

वह लिखा लिखाया है इतिहास नहीं पढ़ता।

वह आता है तो खुद इतिहास बनाता है।।

❑ ❑ ❑

खण्ड तीन

राष्ट्र निर्माण 'स्वतकनीक' एवं 'स्वावलंबन' से ही सम्भव ?

खण्ड तीन

राष्ट्र निर्माण 'स्वतकनीक' एवं 'स्वावलंबन' से ही सम्भव ?

देश जब गुलामी के दौर के झंझावातों से गुजर रहा था उस समय के नेताओं, बुद्धिजीवियों, छात्रों समाजसेवियों का एक मात्र उद्देश्य या लक्ष्य था, कि देश को आजाद किस प्रकार किया जाए ? भारत माँ की गुलामियों की बेड़ियों को कैसे काटा जाये ? इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये, इस देश के तमाम शहीदों ने, आजादी के दीवानों ने अपने-अपने तरीके से कार्य को सम्पादित किया। इसलिए किसी ने अहिंसा का सूत्र इस देश को देकर अंग्रेजों की लाठियों को पीठों और सिरों पर झेला, तो जिसे यह मार्ग लम्बा या कायरतापूर्ण लगा तो उसने हिसांत्मक रास्ता अख्तियार किया और वंदे मातरम् के उद्घोष, भारत माता की जय के साथ हंसते-हंसते फाँसी के फंदे को गले से लगा लिया। अब अहिंसा एवं हिंसा के इस विवाद में न पड़ते हुए कि श्रेष्ठतम क्या है? यदि उद्देश्य प्राप्ति का लक्ष्य देखा जाये तो कहना होगा कि उस समय प्रत्येक व्यक्ति ने भारत माँ के प्रति अपने पुत्रवत् दायित्व का गंभीरता से पालन किया। सोच एवं विचार का अंतर तो स्वाभाविक ही है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने देश की आजादी के बाद के 'सोच' को रेखांकित करते हुए कहा है कि देश को आजादी मिलने के बाद मैंने विभिन्न संगठनों के प्रमुखों, राजनैतिक नेताओं एवं अन्य विचारधाराओं के प्रमुखों से सवाल किया कि बतलाइये देश तो आजाद हो गया है ? अंग्रेज भारत से पलायन कर गये हैं ? हम स्वतंत्र हैं। तो इस स्वतंत्र भारत का राजनैतिक दृष्टिकोण क्या होना चाहिये ? हमारी आर्थिक व्यवस्था किन नीतियों पर आधारित होना चाहिये ? हमारी युवा नीति (Youth Policy) क्या होना चाहिये ? हमारा सामाजिक ढाँचा (Social Structure) कैसा होना चाहिये ? आदि विषयों पर हमारा दृष्टिकोण क्या है या कैसा होना चाहिये ? पं. दीनदयाल जी उपाध्याय ने कहा कि उन्होंने जब यह प्रश्न किया तो उसका जवाब सुनकर वे हैरान (किमकर्तव्य विमूढ़) हो गये। जवाब था। अभी-अभी तो हमने आजादी प्राप्त की है? अभी-अभी तो हमें चैन मिला है ? अभी हमें आराम करना है, क्योंकि हम काफी थक गये हैं। थोड़ा आराम कर लें फिर देश के बारे में सोच लिया जायेगा। इतनी भी जल्दी क्या है ?

उन्होंने कहा कि इस जवाब के बाद मुझे ऐसा लगा कि क्या देश की आजादी के बांद के प्रश्न गौण हो जाते हैं। क्या आज़ाद भारत के नेता इतने थक गये थे कि उन्हें आराम करने का वक्त देना चाहिये था। और कितना वक्त चाहिये ? फिर उन्होंने स्वयं से प्रश्न और जवाब किया कि जिस देश के नेता आजादी के बाद थक गये हों, जहाँ सोचने के लिये वक्त चाहिये या आराम से सोच लेंगे अभी तो बहुत समय है। देश कोई भागा तो नहीं जा रहा है। आदि आदि बातों ने मुझे सोचने पर मजबूर कर दिया कि क्या होगा भारत वर्ष का ? देश के नागरिकों का भविष्य भगवान ही जाने ? आज जब १९९४ में, इस पुस्तक (पं. दीनदयाल जी उपाध्याय के एकात्म दर्शन) पर लिख रहा हूं एवं भारतवर्ष - की ओर दृष्टिपात करता हूं तो लगता है कि जो समस्यायें विकराल रूप से फैल रही हैं। समस्याओं (पंजाब, असम, मिजोरम, काश्मीर, झारखंड) जैसे मुद्दों से प्रदेशों समेत देश आक्रांत है। इन समस्याओं ने देश की एकता और अखंडता के सामने चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। उसका मुख्य कारण यही है कि आजादी के तत्काल बाद जिस सोच, जिस दृष्टिकोण की आवश्यकता समग्रता से विचारने एवं उनसे लड़ने की थी उस गति से कार्य शुरू हुआ नहीं। कार्य बिलकुल नहीं हुआ या बिलकुल सोचा नहीं गया यह कहना उपयुक्त नहीं होगा ? कुछ लोगों ने सोचा एवं उसे कार्य रूप में क्रियान्वित भी किया। परन्तु राष्ट्र निर्माण या विकास तभी तीव्र गति से तथा समग्रता से होगा जब व्यक्ति, समाज, राष्ट्र सभी एक दूसरे से एकात्म होंगे।

स्वार्थों की संकीर्णता - देश की आजादी के बाद जो सत्ता में आये या जिन्होंने सत्ता में आने का प्रयास किया। उनका मूल ध्येय (साध्य) सत्ता में बने रहना या सत्ता में आना था। इस हेतु उन्होंने देश को लुभावने वायदों, नारों, स्लोगन देकर आकृष्ट किया एवं सत्ता प्राप्ति के पश्चात उन पुराने वायदों, नारों को भुलाकर नये वायदों एवं नारों की खोज की। जो इस कार्य में जितना निपुण रहा, वह सत्ता में बना रहा। जो इस स्थिति को प्राप्त नहीं कर सका वह जनता की ओर से संघर्ष का कार्य करता रहा। (सत्ता प्राप्ति के बाद प्रायः संघर्ष समाप्त हो जाता है)। यही कारण था कि इस देश के प्रथम प्रधान मंत्री स्व. जवाहर लाल नेहरू के वैज्ञानिक समाजवाद को १७ साल ढ़ोया, तो उनकी पुत्री देश की यशस्वी प्रधानमंत्री स्व. श्रीमती इंदिरा गांधी के 'गरीबी हटाओ' के वाक्य से प्रभावित होकर लगभग १६ साल तक उन्हें सत्ता में बनाये रखा (यह गौण प्रश्न है कि गरीबी शाश्वत या स्थायी है जो भारत वर्ष का पर्याय हो चुकी है)। इस देश ने सम्पूर्ण क्रांति का उद्घोष भी आत्म सात् किया तथा जनता दल (पार्टी) को राज्य गद्दी सौंपी तो इस सम्पूर्ण क्रांति ने देश को विश्वनाथ प्रताप सिंह जैसे प्रधानमंत्री भी दिये जिन्होंने कहा था कि मैं अपने जीते जी कोई सरकारी पद नहीं लूंगा

या मेरी कोई महत्वाकांक्षा नहीं है। परन्तु देश का प्रमुख पद (प्रधानमंत्री) स्वीकार कर लिया। क्या इस देश के बुद्धिजीवियों को, इस देश के पत्रकारों को, इस देश के कर्णधारों को ऐसे नेताओं से सवाल नहीं करने चाहिये कि वे जो कहते हैं, वे उस पर अमल क्यों नहीं करते। यदि उन्हें अमल नहीं करना तो चुप नहीं रह सकते। क्या इस देश के कर्णधारों की स्मृति इतनी जल्दी खो जाती है ? क्या वे इस देश की जनता को निरा बेवकूफ समझते हैं। इस देश में ही देश को २१वीं सदी में ले चलने का दिवास्वप्न दिखलाया गया। जबकि देश में आज भी आदिवासी अंचलों में (बस्तर-अबूझमाड़ आदि) १६ वीं शताब्दी का जीवन यापन लोग कर रहे हैं। इन तमाम सवालों से ऐसा लगता है कि इस देश को स्वार्थों की संकीर्णता ने अपने मायाजाल में जकड़ लिया है। हम मकड़ी के जालों की सदृश्य अपनी बनायी स्वार्थों की दीवारों, लोलुपता, चारित्रिक दुर्बलता की दीवारों में घिर गये हैं। इसका समाधान या तो इसे तोड़ा जाए अथवा जो मकड़ी का अंत वो हमारा ?

निजी लाभ हेतु सब स्वीकार है - पं. दीनदयाल उपाध्याय ने कहा कि जिस देश का अपना विश्वस्तरीय सोच रहा है, जिसकी संस्कृति एवं आध्यात्म वंदनीय एवं विश्व का दिग्दर्शक रहा है उस देश में चारित्रिक गिरावट एवं निजी लाभ हेतु सब स्वीकार की प्रवृति कभी-कभी सोचने पर विवश करती हैं कि क्या यह वही आद्य शंकराचार्य का देश रहा है। जिन्होंने सनातन धर्म को बाह्य विचारों के झंझावातों से सुरक्षित किया ? क्या यह वही देश है, जहाँ स्वामी विवेकानंद के शिकागो (अमेरिका) के दिग्विजयी उद्घोष ने सम्पूर्ण हिन्दू संस्कृति को विश्व में गौरवान्वित किया ? क्या यह वही भरत का भारत है, जिसने अपने राम के लिये भरत ने 'सत्ता' को १४ वर्षों तक खड़ाऊँ के रूप में पूजा ? उन्होंने कहा जब सत्ता प्राप्ति हेतु सभी कुछ चलता है अथवा सर्व स्वीकार की प्रवृति देखता हूं तो आश्चर्य करता हूं। उन्होंने स्वतंत्रता के बाद सत्ता प्राप्ति का एक दृष्टांत स्पष्ट करते हुए कहा कि कांग्रेस को सत्ता से कैसे च्युत किया जाए। इस हेतु एक दल के नेता ने एक सर्वदलीय मोर्चा बनाने की औचित्यता प्रतिपादित की (जो उस समय कांग्रेस के खिलाफ संयुक्त मोर्चा बनते थे, वे आज कल भारतीय जनता पार्टी के खिलाफ बन गये हैं) पं. दीनदयाल जी ने उन 'महाशय' से कहा कि सब मिल कर मोर्चा बना ले यह तो ठीक है परन्तु जरा 'कार्यक्रम' के संदर्भ में भी सोच लिया जाये ? तो उन महाशय का उस समय जवाब था कि आप तो मोर्चा बना लें। हमें तो घोर कट्टरपंथी कार्यक्रमों से लेकर निम्न कट्टरपंथी (समाजवादी अथवा पूंजीवादी) कार्यक्रमों में कोई भी स्वीकार करने में एतराज नहीं है। हमें तो सभी कुछ स्वीकार है। हमारा उद्देश्य तो मात्र कांग्रेस को सत्ताच्युत करना है।

पं. दीनदयाल जी के उस समय के उक्त प्रसंग को जब मैं लिख रहा हूं तो देश के तात्कालिक बदलाव की (नेताओं) प्रवृति पर एक प्रसंग याद आ रहा है। एक गांव में एक आस्तिक एवं एक नास्तिक था। आस्तिक गांव वालों से कहता फिरता था कि भगवान (ईश्वर) होता है, सम्पूर्ण प्रकृति का सूत्रधार वही है, दुख-सुख, लाभ-हानि, यश-अपयश का प्रणेता वही ईश्वर है। मौसमों में परिवर्तन एवं जीवन देने तथा मृत्यु का कारक वही ईश्वर है। इसलिये ये गांव वालो हमें ईश्वर को मानना चाहिये तथा उसकी सत्ता को स्वीकार करना चाहिये। इसलिये सभी को आस्तिक हो जाना चाहिये। नास्तिक गांव वालों से कहता कि ये सब बातें बेकार हैं। यह प्रकृति स्वयं संचालित है तथा पृथ्वी के घूमने के कारण मौसम में बदलाव आता है। कोई ईश्वर नाम की सत्ता नहीं है। यह सब बेवकूफ बनाने की बाते हैं। इसलिये सभी को नास्तिके हो जाना चाहिये। गांव वाले दोनों के तर्कों को सुनते एवं कोई जवाब नहीं दे पाते। क्योंकि दोनों के तर्क इतने वजनदार थे कि उन्हें नकारा नहीं जा सकता था। दोनों के विवाद में परेशान गांव के एक श्रेष्ठ बुजुर्ग व्यक्ति ने सोचा कि रोज-रोज की पंचायत से बेहतर है कि एक बार निर्णय हो जाये तो उन्होंने सलाह दी कि दोनों का शास्त्रार्थ (वाद-विवाद) करा दिया जाये। दोनों में पहले तय हो कि आस्तिक सही या नास्तिक। एक शाम को गांव के सभी बड़े-बूढ़े, युवा, बच्चे, महिलायें सभी इकट्ठे हुये। मंच बना। मंच में आस्तिक एवं नास्तिक दोनों बैठे। दोनों का विवाद (शास्त्रार्थ) प्रारम्भ हुआ। सम्पूर्ण रात्रि शास्त्रार्थ चलता रहा। सुबह होने पर पता चला कि आस्तिक, नास्तिक हो गया। नास्तिक, आस्तिक हो गया। गांव वालों एवं उनकी समस्यायें जहाँ की तहाँ।

इस दृष्टांत को देखने के बाद ऐसा लगता है कि इस भारत वर्ष में भी आस्तिक और नास्तिक का संघर्ष सदियों से चल रहा है। कभी पूंजीवादी, समाजवादी हो जाता है। कभी समाजवादी, पूंजीवादी हो जाता है। कभी सत्ता के लिये कार्यक्रम बनते हैं। कभी कार्यक्रम सत्ता के लिये किये जाते हैं। देश की जनता जहाँ १९४७ में थी। वहीं १९९४ में खड़ी है। कांग्रेस जिसने सत्ता संभाली उसी कांग्रेस में घोर पूंजीवादी समर्थित हैं तो दूसरी ओर घोर समाजवाद के अनुयायी भी हैं। जो कांग्रेस या अन्य दल (उस समय जनसंघ, अब भारतीय जनता पार्टी को छोड़कर) धर्म निरपेक्षता की बात करते थे। उनमें ही १९४७ में आजादी के बाद केरल में कम्युनिस्ट पार्टी, मुस्लिम लीग, स्वतंत्र पार्टी, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, विद्रोही कांग्रेस आदि भिन्न-भिन्न विचारधाराओं एवं सिद्धांतों की पार्टियों में चुनाव के दौरान गठबंधन हुये। उद्देश्य मात्र सत्ता की प्राप्ति। कोई सैद्धांतिक अथवा वैचारिक सोच नहीं। आज १९९४ में इस बात को देखें तो क्या अंतर दिखेगा ? यही कांग्रेस उत्तर प्रदेश में उस बहुजन समाज पार्टी एवं समाजवादी

पार्टी (B.S.P.& S.P.) को अपना समर्थन विधानसभा में दे रही है। जिसे वह जाति द्वेष भड़काने का कारण मानती है। इसी कांग्रेस का कम्युनिस्ट पार्टी के ज्योति बसु 'डंकल प्रस्ताव' पर विरोध करते हैं तो इसी कांग्रेस को बचाने के लिए लोकसभा में अविश्वास प्रस्ताव का बर्हिगमन ! जिस बहुजन समाज पार्टी द्वारा कांग्रेस को देश बर्बाद करने का कारण माना जाता है। उसी कांग्रेस के राज्यसभा सदस्य श्री हंसराज भारद्वाज को राज्य सभा में मध्यप्रदेश से भेजने में सहयोग दिया जाता है ?

१९९३ में देश के प्रधानमंत्री श्री नरसिम्हा राव की कांग्रेस (इ) के खिलाफ लाये गये अविश्वास प्रस्ताव पर जनता दल (अ) के अजीत सिंह विरोधी दलों का साथ देकर एक गरिमा स्थापित करते हैं। कुछ माहों पश्चात वे ही सभी सांसदों के साथ जब कांग्रेस में अपने दल का विलय कर लेते हैं तो 'अहि नकुल योग' की बात सत्य लगती है तथा सोचना पड़ता है कि क्या सांप एवं नेवलों का साथ सम्भव है। परन्तु निजी स्वार्थों, सत्ता की लिप्सा एवं घोर चारित्रिक पतन ने यह सम्भव कर दिखाया है। सत्ता में बने रहने का एक और दृष्टांत में दिये बिना शायद अपने लेखन को सार्थक नहीं मानूंगा कि म.प्र. के प्रथम मुख्यमंत्री पं. रविशंकर शुक्ल जी के पुत्र श्री विद्याचरण शुक्ल कांग्रेस में थे तो मंत्री थे। कांग्रेस में नहीं निभा पाये तो विश्वनाथ प्रताप सिंह के साथ। (मंत्री नहीं बन पाये) इसके बाद चन्द्रशेखर के प्रधानमंत्री बनने पर मंत्री तथा उनकी सरकार के टूटते ही श्री नरसिम्हाराव के प्रधानमंत्री बनते ही देश के जल संसाधन मंत्री बने। सिद्धांतों, उसूलों, चरित्र आदि से कोई सरोकार नहीं। मात्र सत्ता में टिके रहना एक ध्येय। ऐसे व्यक्ति इस देश को दिशा एवं मार्गदर्शन दे। इस देश का नेतृत्व करे और हम देश के उत्कर्ष की बात सोचें तो क्या यह सम्भव है। यही विचार मंथन एवं चिंतन का प्रश्न है।

देश के सामने सभी का चरित्र खुली किताब की तरह है। देश की जनता ने सभी को देख भी लिया है। (आजादी मिले ४७ वर्ष हो चुके हैं) इतना समय पर्याप्त है। इसलिये आज देश के निर्माण का प्रश्न पैदा होता है, भावी पीढ़ी की दिशा दर्शन का आग्रह उठता है, देश की समस्याओं का समाधान करते हुये राष्ट्र को 'परम वैभव' के शिखर पर स्थापित करना है तो देश को स्वार्थों की संकीर्णता से मुक्ति दिलानी होगी? देश को विवेकानंद, महाराणा प्रताप, शिवाजी, शहीदे आजम भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद, झांसी की रानी, महात्मा गांधी, सरदार वल्लभ भाई पटेल, लाल बहादुर शास्त्री, परम पूज्य श्री हेगड़ेवार जी, डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी, पं. दीनदयाल उपाध्याय, राम मनोहर लोहिया, गोविन्द बल्लभ पंत, आचार्य कृपलानी, जयप्रकाश

नारायण, पं. अटल बिहारी वाजपेयी, गुलजारी लाल नंदा एवं मोरारजी देसाई जैसे अन्यादि नेताओं के चरित्र को पढ़ना-पढ़ाना एवं जीवन में आत्म सात करना होगा। क्योंकि इस देश का आत्मबल इस देश का चरित्र रहा है। फिर किसी भी व्यक्ति, समाज एवं देश के उत्थान एवं पतन में चरित्र का विशेष महत्व होता है तभी तो कहा गया है कि 'चरित्र गया सो सब कुछ चला गया' (Character is gone so Every thing is gone.)

'स्व' को बिना बढ़ाये भारत का कल्याण सम्भव नहीं - पं. दीनदयाल उपाध्याय ने पूर्णतः स्पष्टता से कहा कि समस्याओं के जन्म लेने एवं उनमें निरंतर वृद्धि का प्रमुख कारण हमारा पश्चिम के ज्ञान विज्ञान एवं पाश्चात्य सोच का कारण है। आज हजारों वर्ष की गुलामी के बाद, इतने कष्टों के बाद हमें सोचना होगा कि पाश्चात्य सोच या दर्शन को स्वीकारें अथवा 'स्व' (स्वावलंबन) की तरक्की को। आज हमारे सामने प्रश्न है कि प्रगति के कौन से मापदंड को स्वीकार करें। भारत के या पाश्चिम के ? जिस देश मे जल का अत्यधिक व्यापक संकट खड़ा हो। उस देश में विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organisation) के विकास मापदंडों के अनुसार १४० लीटर पानी प्रत्येक व्यक्ति द्वारा खर्च किए जाने को अनेक लोग सही विकास मान सकते हैं। परन्तु इसे विकास नहीं विनाश कहना ज्यादा व्यावहारिक या उपयुक्त होगा। ऐसे अनेकानेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। भोग में लिप्त तथाकथित 'विकसित' लोग 'भारत' के अपरिग्रह का नाजायज लाभ उठाकर इसे ही कोसते रहें, अब यह नहीं चल सकता है। विकास का भारतीय अर्थ तो यहाँ के व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का समग्र विकास उसके शरीर, मन, मस्तिष्क और आत्मा का विकास है। इन चारों ही दृष्टि से हम कितने विभाजित हुये हैं स्वाधीनता के पश्चात ? प्रश्न करने वाले ही यह अपने मन से पूछें तो ज्यादा उचित होगा।

आज इसी तरह का दूसरा प्रश्न भी है ? आज हम जहाँ तक बढ़ चुके हैं वहाँ से एकदम पीछे लौटना कैसे सम्भव है ? रातों रात न हम वर्तमान में पहुंच सकते हैं और न आनन-फानन में स्वावलम्बन आ सकता है। पराश्रयी बने रहने वालों को 'सहायता' 'अनुदान' और 'आसान ऋण' देकर प्रोत्साहन देने वालों की विश्व में जितनी विपुल उदारता है उतनी ही कम, अपितु नगण्य सहिष्णुता, स्वावलंबी बनने वालों के प्रति है। अतः अपने 'स्व' (स्वावलम्बन) के मार्ग में अनेक बाधाएँ आयेंगी। जो स्वाभाविक भी हैं। परन्तु इन बाधाओं से डरकर मुंह छुपाने का परिणाम तो हम सदियों तक भुगत चुके हैं। क्या अब भी हम उसी मार्ग पर चलते रहना चाहेंगे ? स्वाधीन भारत के कर्णधार पहले ही दिन से राष्ट्र की एकता और अखंडता पर विदेशी और देशी आक्रमणों

का भय दिखाकर राज करते रहे हैं। परन्तु इस काल्पनिक अथवा वास्तविक भय से अभी तक छुटकारा क्यों नहीं मिला ? यह विचारणीय प्रश्न है ? जो व्यक्ति स्वावलम्बन एवं यथार्थ को लागू होना आज असम्भव मानते हैं उन्हें समझ लेना चाहिये कि आने वाले कल तो कुछ कर ही नहीं पायेंगे। देश पुनः एक बार फिर विदेशी कंपनियों (डंकल प्रस्ताव से विकासशील देशों के सामने कमोवेश यह स्थिति उत्पन्न कर विकसित देशों के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर दी है) के हाथों गिरवी चला जायेगा। माननीय प्रधानमंत्री श्री नरसिम्हाराव को तो केवल वे नीतियाँ सूझ रहीं हैं जो विदेशी कंपनियों के अनुरूप हैं। राष्ट्र की उन्हें कोई चिंता नहीं है।

यदि हमे लेश मात्र भी स्वावलम्बन की, मुक्त एवं तनाव रहित, शांत एवं सुखमय जीवन की और अपने गौरवपूर्ण सुनहरे इतिहास को पुनः जीवंत रखने की चाह है तो इस अपनी मातृ भूमि को देखना होगा। जननी से विरक्त होकर इससे विमुख होकर कोई पुत्र अथवा पुत्री चैन से न तो बैठ सकता है न सो सकता है। हमने इसे बांझ बना देने में कोई कसर नहीं रखी है। सो यह हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हमी इसे शस्य श्यामला बनाकर अपनी भूलों का प्रायश्चित भी करें। एक पूर्वी राष्ट्र नाइजीरिया ने दृढ़ निश्चय करने रासायनिक खाद पर प्रतिबंध लगा दिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि उसकी पैदावार कम होने के स्थान पर बढ़ गई थी। आज हम भारतीय संस्कृति एवं दर्शन से विमुख होकर स्वयं को नहीं अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र को संकट में डाल चुके हैं। हम अपने बताये अर्थों को भुलाकर विदेशी शब्दों के आडम्बर में उलझ चुके हैं। यहाँ दर्शन से अभिप्राय किसी शास्त्रीय दर्शन से नहीं अपितु, भारतीय दर्शन से, उस भारतीय दृष्टि की ओर संकेत मिलता है जो सदैव प्रकृति की ओर निहारकर, उसे संवारने के साथ-साथ मानव जीवन को निखारती भी है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने कहा कि मैंने एकात्म दर्शन में जितने सिद्धांतों, नीतियों या आत्मा के प्रसंगों का उल्लेख किया है वे इस प्रकृति से सीखे हुए हैं। यह कोई रहस्य नहीं है बल्कि आपके और हमारे तन (शरीर) एवं मन की ही बाते हैं। हमारे दैनिक जीवन एवं धरती पर घटने वाली घटनायें, प्रकृति के परिवर्तन सभी के लिए समान हैं। आधुनिक विज्ञान के प्रभाव ने हमें ऐसा जीवन जीना सिखा दिया है कि हमें अपने ही शरीर एवं मन की बात सुनने की फुरसत नहीं है। जिस शरीर के लिए हम दिन रात एक करते रहते हैं उसी शरीर एवं मन को हम निरंतर प्रताड़ित करते रहते हैं। ये कभी मिथ्या नहीं बोलते हैं न ही भ्रमित ही करते हैं। इसके बाद भी सत्य से हमारा परहेज हमारा जीवन दर्शन हो गया है। 'निंदक नियरे राखियो' की लोकोक्ति को तिलांजली देकर हमने 'न ब्रूयात सत्यमप्रियम' को पकड़ लिया है या आत्मसात

कर लिया है। जिस समय पेट भोजन के लिए तड़पता है उस समय हमें पेट से ज्यादा पार्टी मीटिंग, व्यापारिक सौदे या चापलूसी या सुरा ग्रहण करने की होती है। दूसरी ओर जीभ के लालच में हम पेट पर बोझ लादते रहते हैं। मन या बुद्धि किस चिड़िया का नाम है, हमें पता ही नहीं है। उसे और अहम जनित इच्छाओं को हम एक मानकर 'मूड' के गुलाम हो गये हैं। अपराधी या तस्कर के तन-मन भी उन्हें उस मार्ग से चलने से रोकते हैं, पर इनकी कोई सुने तब न ? उधर प्रकृति सदा अपनी पुस्तक हमारी आंखो के सामने फैलाये रखती है। प्रकृति की पुस्तक हमें ज्ञान के बोझ से लादती नहीं। बल्कि इस बोझ से मुक्ति प्रदान करती है। कैसे हमारे अपने शरीर के रंग जन्म से मृत्यु तक बदलते हैं, कैसे मौसम में किस फूलों की घटा छा जाती है। क्रोध एवं तनाव तथा शांति की अवस्थाओं में व्यक्ति अथवा मानवेतर प्राणियों (जीव जन्तुओं) की सांसों की गति कैसे बदल जाती है। सम्पूर्ण शरीर से निरंतर क्षय पदार्थों (मल) के उत्सर्जन के बावजूद भी क्यों शरीर दूषित नहीं होता है। तेज चलने, दौड़ने अथवा खेलकूद एवं एकाग्रचित होकर बैठने का चिंतन पर क्या प्रभाव पड़ता है। रीढ़ की किस स्थिति में हमें आराम एवं स्फूर्ति का आभास होता है। नीचे बैठकर भोजन करने एवं खड़े-खड़े भोजन करने का शरीर स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है। भोर की पहली किरण के साथ-साथ मुर्गे की बांग एवं कोयल की कूक क्यों उठ-उठ कर बोलने लगती है। जल सृष्टि का परम ज्ञानी हंस बड़े-बड़े बांधों में क्यों दिखलाई नहीं पड़ता तथा इनमें कमल क्यों नहीं खिलते हैं। पूनम के चांद को देखने से क्यों प्रसन्नता होती है। ट्यूब लाइट या सोडियम से वह आनंद मन को क्यों प्राप्त नहीं है ? ओस के बूंदों की सी चमक, पेड़ों के पत्तों पर पानी की बरसती बूंदो सी क्यों नहीं दिखती। सबसे ज्यादा सुंदर फूल कांटों के मध्य खिलना क्यों पसंद करते हैं। हीरा, कोयले में ही क्यों प्राप्त होता है। आदि-आदि अनेकानेक जिज्ञासाएं कुदरत हमारे सामने रखती है कि हम हैरान एवं किमकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। परन्तु हमें अपने ड्राइंगरूम, बेडरूम, कार, हवाई जहाज, टी.वी., जी.टी.वी., कूलर, रेफ्रिजरेटर, देशी एवं विदेशी सुरा से फुरसत ही नहीं है। वाद्य संगीत पर, झूमने वालो को, माइकल जेक्सन या पार्वती खान के पॉप संगीत पर, झूमने वालों को झरने की कलकल अथवा बयॉ के सांध्य गुंजन में कोई सुर या ताल ही नजर नहीं आता है। ऐसी अनेकानेक बातें हैं जिसका कोई ओर छोर नहीं है। इन उदाहरणों को स्पष्ट करने का मात्र उद्देश्य यह है कि, प्रकृति दुनिया का हर विषय सिखा सकती है और साथ-साथ मुक्त भाव से जीना भी सिखाती है। फिर भी कोई इसे न स्वीकार करे तो क्या करें ?

भारत वर्ष की मिट्टी, पानी, हवा धूप और आकाश में क्या ताकत है। यही हम सबको भी करना होगा। भारतीय दर्शन ने मानव स्वभाव को समझकर, सुखी-शांत एवं मुक्त जीवन जीने की ऐसी पद्धति विकसित की है जो पूर्णतः वैज्ञानिक है। यह वस्तुपरक ही नहीं बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी सस्ती है। यह सर्व विदित है कि आयुर्वेद से इलाज करवाने एवं एलोपैथी से इलाज करवाने में खर्च में कितनी असमानता है। रोटी एवं ब्रेड के भावों, गोबर लकड़ी के ईंधन एवं कैरोसिन एवं गैस के खर्चों, मिलों एवं हाथकरघा के कपड़ों से लेकर धातु विज्ञान, कृषि विज्ञान, भवन निर्माण, वस्त्रोद्योग, घी-तेल एवं खांडसारी तथा प्रसाधन सामग्री तक में भारतीय तकनीक जहां उत्पादन को सर्वश्रेष्ठ गुणों से परिपूर्ण रखती है। वहीं लागत (Cost) भी नहीं बढ़ने देती है। यह मर्यादा में बंधे समाज एवं शासन व्यवस्था के कारण ही सम्भव हुआ है।

उपरोक्त दृष्टिकोण को स्पष्ट करने का प्रमुख औचित्य मात्र यही है कि हमने अपने श्रेष्ठतम विचार को छोड़कर अधोत्तम तकनीकों को आत्मसात किया। जिस भारत का हजारों लाखों वर्ष का अपना सोच एवं दर्शन रहा, उसे हमने झूठा एवं तिरस्कारपूर्ण माना। जिस भारत ने विश्व को वैचारिक सोच, श्रेष्ठतम वेद दर्शन, श्रेष्ठतम तकनीक, श्रेष्ठतम आर्थिक प्रणालियों एवं श्रेष्ठतम सामाजिक संरचना का दिग्दर्शन कराया, वही भारत आज दिग्भ्रमित हो, हाथ फैलाये पश्चिम की ओर मुख किये खड़ा है। जिस शांति निकेतन में विश्व के लोग ज्ञान प्राप्ति हेतु आकर-रहकर गौरवान्वित महसूस करते थे। उस भारत का विद्यार्थी, वैज्ञानिक, अमेरिका, रूस, कनाडा, जापान जाकर गौरवान्वित महसूस करता है।

जिस भारत का औद्योगिक व्यापार-व्यवसाय श्रेष्ठतम था। उस भारत को पाश्चात्य मॉडल (डंकल प्रस्ताव) को स्वीकार करना पड़ रहा है। जिस भारत का चरित्र स्तुत योग्य था, वहां चरित्र का हाहाकार ? ऐसा क्यों ? स्पष्टतः इसका एक ही जवाब कि हमने अपने 'स्व' को छोड़ा। हमने अपने स्वावलंबन से विश्वास हटाया और पाश्चात्य दर्शन एवं सोच को जीवन का अंग बना लिया। परिणाम सामने कि विश्व गुरु आज शिष्यों से अपने स्वयं के भाष्यों पर टीका करवा रहा है।

तो आईये ! आज हीं अपनी माटी की ओर देखने और उसकी धड़कन सुनने का संकल्प ले। दुनिया के जितने भी दर्शन पैदा हुये हैं। वे रेगिस्तान से पैदा हुये हैं। उस दृष्टि से थार के रेगिस्तान की अपेक्षा कश्मीर से कन्याकुमारी तक की भारत भूमि विश्व में सर्वोत्तम भूमि है। भारतीय दर्शन, यहां के व्यक्ति के तन, मन में गहराई से

व्याप्त है। उसे पुस्तकों में, ग्रंथों में खोजने की आवश्यकता नहीं है, न ही किसी शोध संस्थान में उसे ढूंढने की। भारत का प्रत्येक व्यक्ति ही जीता-जागता शोध संस्थान है। आवश्यकता केवल इसे प्रतिष्ठित करने की है। क्योंकि यहीं हमें प्रकृति के साथ पूर्ण समन्वय से रहना सिखाता है। मनुष्य की वाणी एवं व्यवहार में तो पूर्ण समानता आना सम्भव नहीं है। तदापि वाणी, विवेक, व्यवहार में व्यापक विसंगति विनाशकारी हो सकती है। इसे समझकर निष्ठाओं की प्रतिष्ठा करनी है। जब इस देश में राम का नाम जागा है तो मर्यादायें भी जागेगी। यह सुनिश्चित है। अब इसे कोई रोक नहीं सकता है। जो इसमें बाधा बनेगा, वह भी शायद टिक नहीं सकेगा। चाहे-वह भारतीय जनता पार्टी ही क्यों न हो ?

भारत अब उठेगा, उठकर रहेगा। यह असहय को भी सहने वाला, हलाहल को भी पीकर शांत रहने वाला शिवशंकर का देश है। जब यह उठता है तो ऐसा उठता है। कि दुनिया देखती रह जाती है। हमें अपनी 'स्वतकनीक' हमें अपने 'स्वावलंबन' के अस्त्रों से सुसज्जित होना पड़ेगा। तभी कल्याण है। यह अब 'भारत' के उतने पर ही सम्भव है। इसलिये हमें उठना होगा। अब भारत को उठना ही होगा। यह स्वतकनीक एवं स्वावलंबन को छोड़ने से नहीं, बल्कि उनके अपनाने से होगा। उनको आत्मसात करने से होगा।

❑ ❑ ❑

खण्ड - चतुर्थ

अन्तर्राष्ट्रीय विचारधाराऐं असफल क्यों?

खण्ड- चतुर्थ

अन्तर्राष्ट्रीय विचारधाराऐं असफल क्यों?

पं. दीनदयाल जी उपाध्याय के एकात्म मानववाद विश्लेषण को समझने के पूर्व, विश्व की प्रमुख विचारधाराओं को समझना नितांत आवश्यक है। क्योंकि इन विचारधाराओं का मुख्य ध्येय जाने बिना, इनकी सफलता अथवा असफलता को समझे बिना एकात्म दर्शन अधूरा माना जायेगा एवं शायद श्रेष्ठता के औचित्य पर भी व्यक्ति अपना मत व्यक्त नहीं कर पायेगा। विश्व की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्थाओं को दो खेमों में, वर्तमान समय में, स्पष्टता से विभाजित किया जा सकता है:-

(अ) पूंजीवादी खेमा अथवा पूंजीवादी व्यवस्याएँ एवं

(ब) समाजवादी (साम्यवादी खेमा) अथवा समाजवादी व्यवस्थाऐं।

वैसे तो वर्तमान समय में विश्व विकसित अर्थव्यवस्थाओं एवं विकासशील (पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं) मे विभक्त है तथा दोनों व्यवस्थाऐं अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार पूंजीवाद एवं समाजवाद या साम्यवाद की समर्थक है। अतः इस विवाद में न पड़ते हुए, अर्थव्यवस्थाओं को पूंजीवादी एवं समाजवादी व्यवस्थाओं में विभक्त कर इनका विश्लेषण ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है।

(अ) पूंजीवादी खेमा अथवा पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाऐं - पूंजीवादी अर्थव्यवस्था विश्व के अनेक देशो में प्रचलित है। यह सर्वप्रथम इंग्लैंड और यूनाइटेड किगंडम के भागों में विकसित हुई। बाद में सभी महाद्वीपों में इसका फैलाव होता चला गया। अब यह उत्तरी अमेरिका (यू.एस.ए. और कनाडा), पश्चिमी योरोप, जापान, न्यूजीलैंड तथा आस्ट्रेलिया में प्रचलित है। विभिन्न अवस्थाओं में अब यह एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के विकासशील देशों में भी पनप रही है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की परिभाषा एक ऐसी अर्थव्यवस्था के रूप में दी जा सकती है 'जिसमें वस्तु उत्पादन प्रमुख होता है। अर्थात लाभ प्राप्ति के उद्देश्य से बाजार में बेचने के लिये मजदूरों से बनवाई जाती है।' इस छोटी सी परिभाषा से पूंजीवाद के मूल रूप को समझा जा सकता है। इसके अतिरिक्त पूंजीवादी व्यवस्था में किसी सम्पत्ति का अधिकार, लाभ प्राप्ति का उद्देश्य, कीमत तंत्र तथा आय एवं सम्पत्ति की असमानताऐं जैसे तत्व होते हैं जो पूंजीवादी व्यवस्था के स्वरूप को स्पष्टता से स्प्ट करते हैं।

पूंजीवादी व्यवस्था में शनै-शनै विस्तार होता चला गया एवं ऐसा लगा मानो विकास एवं सुधार का श्रेष्ठतम 'वाद' यदि कोई है तो वह पूंजीवाद ही है। परन्तु पूंजीवाद के विकास का तत्व यदि 'लाभ प्राप्त करना' रहा है। लाभ की प्राप्ति इसका प्रमुख गुण रहा है। तो इसका प्रमुख अवगुण भी इसी 'लाभ' तत्व को माना जाने लगा है। आज अमेरिका, जो पूंजीवादी खेमे का नेतृत्व कर्ता है अथवा अगुआई कर रहा है। इसी पूंजीवादी व्यवस्था, बढ़ती आत्म हत्याओं, नौजवानों में बढ़ती नशे की प्रवृति, नैतिक मूल्यों में ह्रास, असुरक्षा की भावना सदृश्य अनेकानेक ऐसे अवगुणों ने जन्म ले लिया है कि सम्पूर्ण अमेरिका का आर्थिक एवं सामाजिक ढांचा खोखला सा हो चला है। इस पूंजीवाद के 'लाभ तत्व' ने तो जैसे सम्पूर्ण विश्व की मानवीयता (Huminity) को खत्म सा कर दिया है। इस संदर्भ में, मुझे एक उदाहरण ऐसा याद आता है जिसे लिखना मैं इसलिये आवश्यक समझता हूं ताकि विश्व के नेतृत्व कर्ता, पूंजीवाद के समर्थक उसके विस्तारक यह जान सकें कि उनका 'पूंजीवाद' किस निचले सोच तक चला जाता है। सम्पूर्ण पूंजीवादी व्यवस्था 'पूंजी' की धुरी के चारों और चक्कर लगाती है। यदि पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादकों, उद्योगपतियों अथवा व्यापारियों को लाभ मिलता है तो वे व्यवसाय को संचालित करते रहते हैं। जिस दिन लाभ मिलना बंद हो जाता है उस दिन व्यवसाय भी बंद हो जाता है। भले ही इससे हजारों लाखों लोग बेघरबार हो जाऐं, हजारों नौजवान बेरोजगार हो जाऐं, इस बात की इस व्यवस्था में कोई चिंता नहीं की जाती है। क्योंकि 'लाभ' की इस व्यवस्था में प्रधानता होती है। अमेरिका जहाँ पूंजीवादी अर्थव्यवस्था प्रमुख है। जो पूंजीवाद का नेतृत्व कर्ता है। सम्पूर्ण विश्व की व्यवस्थाओं का मुखिया बनने का दावा प्रस्तुत करता है। अमेरिका में उत्पन्न खाद्यान्न (गेंहू) का यदि अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य उसे बाजार में प्राप्त नहीं होता है। तो अमेरिका इस गेंहू को या तो समुद्र में फेंक देता है, अथवा नष्ट कर देता है अथवा जला देता है। इसका प्रमुख कारण है कि अमेरिका नहीं चाहता है कि उसके अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़े। जबकि यदि विश्व के अनेक विकासशील देशों को देखा जाये तो वहाँ लोग इसलिए हजारों लाखों की संख्या में काल के गाल में समा जाते हैं। क्योंकि उन्हें पर्याप्त मात्रा में भोजन प्राप्त नहीं होता है। वर्तमान समय में सोमालिया, नाइजीरिया, दक्षिण अफ्रीका के देशों सहित अनेक ऐसी अर्थव्यवस्थायें हैं जहाँ लाखों लोग भोजन के अभाव में मर रहे हैं।

इस बात पर दृष्टिपात किया जाये तो लगता है कि ऐसा पूंजीवाद, कैसे समग्र सोच, एवं सम्पूर्ण नेतृत्व की बात कर सकता है। कैसे पूंजीवाद को सर्वश्रेष्ठ माना जाये और कैसे इस विचारधारा को स्वीकार किया जाये। जिस विचारधारा में, जिस वाद में मानवीय सम्वेदनायें शून्य हों। जिस पूंजीवाद में 'अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य' को बनाये रखने के लिए लाखों लोगों की मृत्यु को स्वीकार कर लिया जाये। जहाँ 'मूल्य एवं मृत्यु' को समतुल्य मान लिया जाये। इस विचारधारा को श्रेष्ठतम या सम्पूर्ण कहना या स्वीकार करना निरापागलपन ही माना जायेगा। इसलिये यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पूंजीवादी व्यवस्था कभी भी विश्व का नेतृत्व नहीं कर सकती है। क्योंकि यह व्यवस्था का एक पक्षीय अध्ययन करती है तथा एक पक्षीय या खंड-खंड अध्ययन समष्टिगत विश्लेषण नहीं माना जा सकता है। मुझे इसलिये यह कहने में कोई भ्रम नहीं है कि पूंजीवादी व्यवस्था या विचारधारा विश्व में कदापि सफल नहीं हो सकती है।

(ब) समाजवादी (साम्यवादी खेमा) अथवा समाजवादी व्यवस्थायें - पूंजीवादी विचारधारा के विपरीत दूसरी विचारधारा जिसका नेतृत्व कर्ता (रूस अथवा चीन) [रूस के विखंडन ने इस व्यवस्था के सोच को खत्म सा कर दिया है] यह मानकर चलते थे कि उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व समाप्त होना चाहिये तथा 'लाभ' व्यक्तिगत हितों तक सीमित न रहकर सामूहिक दायित्व होना चाहिये। प्रो. कालमार्क्स जो इस विचारधारा के जनक एवं प्रेरक माने जाते हैं, का कहना है कि 'समाजवाद अथवा साम्यवाद ही विश्व में नया सोच या दिशा दे सकता है।' उन्होंने कहा कि **'पूंजीवाद के विनाश के बीज उसमें स्वयं अर्न्तनिहित होते हैं।'** तथा 'लाभ अतिरेक' का सिद्धांत प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा कि बिना हिसांत्मक क्रांति के साम्यवाद असंभव है। सभी पूंजीपतियों को नष्ट करते हुये, धर्म को प्रतिबंधित करते हुये (साम्यवादी धर्म को अफीम मानते हैं तथा उनका सोचना है कि धर्म प्रतिबंधित अथवा समाप्त नहीं होता है तो धर्म की अफीम को चटा कर पूंजीवाद पुनः स्थापित हो सकता है) कुछ समय तक मजदूरों का तानाशाही शासन रखना पड़ेगा तथा इसके बाद एक वर्ग विहीन समाज की स्थापना होगी तथा मजदूरों का राज्य या साम्यवाद आयेगा। समाज को नई दिशा मिलेगी लाभ एवं पूंजी पर समाज का अधिकार होगा। जो काम करेगा, वह खायेगा। जो काम नहीं करेगा उसे खाने तथा जीने का अधिकार नहीं होगा। पूंजीवाद में जहाँ स्वतंत्रता का अधिकार था। साम्यवाद या प्रो. कालमार्क्स ने रोटी तथा स्वतंत्रता का लालच दिया

और कहा दुनियाँ के मजदूरों एक हो जाओ। जो समाजवाद के झंडे तले आयेगा। रोटी और स्वतंत्रता दोनों का अधिकार प्राप्त होगा। आज जब मैं यह बात लिख रहा हूं तो मैं सोच रहा हूं कि मान लो प्रो. मार्क्स जिंदा होते और रूस का विखंडन देखा होता, रूस की जर्जर दुरावस्था को देखा होता तो शायद या तो स्वयं साम्यवाद को नकार देते अथवा विचारधारा के विपरीत, नई विचारधारा का सृजन करते (जो निश्चित पूंजीवाद अथवा समाजवाद या साम्यवाद नहीं होता)।

मैं जब कार्लमार्क्स की विचारधारा एवं उनकी रोटी एवं स्वतंत्रता देने की अवधारणा (आश्वासन) को पढ़ता हूं तो मुझे 'विश्व की श्रेष्ठतम कहानियाँ' पढ़ते-पढ़ते एक कहानी याद आती है जो साम्यवादी व्यवस्था का चरित्र निरूपण करती है। एक नौजवान साम्यवाद की पूंजीवाद पर जीत पर प्रसन्न है अथवा रोटी की प्राप्ति से अथवा स्वतंत्रता के अधिकार से। पुलिस स्टेशन के सामने से जब मुस्कराता हुआ गुजरता है तो थाने का सिपाही उसकी मुस्कराहट देखकर, उसे पास बुलाता है। उसे बंद करने का तथा उसे जेल में भेजने का आदेश देता है। पूछने पर, सिपाही इस नौजवान से कहता है कि तुम्हारी इतनी हिम्मत, साम्यवाद में तुम्हारी इतनी जुर्रत कि 'साहब' की तबियत खराब है और तू मुस्कराते हुए जा रहा है। बेचारा मुस्कराने का इनाम जेल में जाकर पाता है। खैर .... जेल से छूट कर पुनः थाने के सामने से गुजरने की मजबूरी (शायद घर थाने के सामने से ही जाने की मजबूरी थी) सो पुनः निकला। परन्तु इस बार यह सोचा कि मुस्कराने का नतीजा भुगत चुका सो चेहरे पर उदासी का आवरण ओढ़े पुनः निकला। सिपाही ने फिर बुलाया। पुनः थाने में बंद कर जेल भेजने की व्यवस्था। पूछने पर ज्ञात हुआ कि 'साहब' का आज जन्म दिन है और तू उदास है। तुझे दुख हो रहा है। तो पुनः जेल में बंद। जेल से जब छूटने की बारी आती है तो नौजवान द्वारा छूटने से इंकार ? जेलर से सवाल ? साहब मुझे बतलाइये न मुस्करा सकता हूं ? न उदास रह सकता हूं ? तो कौन सा चेहरा लेकर जाऊं ? कहानी कहने का उद्देश्य यही कि रोटी एवं स्वतंत्रता की गारंटी बेमानी। साम्यवाद को स्वीकारने वाले की स्थिति को देखकर बरबस याद आ गया 'न खुदा ही मिला, न विसाले सनम' चौबे जी छब्बे जी बनने गये, दुबे जी बनकर लौटे। गये थे हरि भजन को ओटन लगे कपास।

जब पूंजीवाद एवं समाजवाद (साम्यवाद) के इस विश्लेषण का अध्ययन करता हूं तो ऐसा लगता है कि इन दोनों विचारधाराओं को समर्थन अथवा व्यापकता न मिलने का कारण अथवा असफलता का प्रमुख कारण समग्रता का अभाव या दोनों का खंड-खंड अध्ययन। ऐसी परिस्थिति में बरबस पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के एकात्म मानववाद के चिंतन पर ध्यान केन्द्रित होता है तथा लगता है कि जब विश्व में राष्ट्रवाद, पूंजीवाद, समाजवाद (साम्यवाद), तानाशाह जैसी विचारधारायें असफल हो गईं हैं तो फिर इस विश्व को कोई दर्शन दिशा एवं शांति दे सकता है तो वह है पं. दीनदयाल उपाध्याय जी का एकात्म मानववाद चिंतन।

❑ ❑ ❑

खण्ड - पाँच

एकात्म मानववाद

(शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा का विश्लेषण)

खण्ड- पाँच

एकात्म मानववाद

(शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा का विश्लेषण)

पं. दीनदयाल जी उपाध्याय के एकात्म दर्शन का महत्व नितात इसलिए बढ़ जाता है। क्योंकि यह दर्शन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, प्रकृति एवं परमेश्वर (परमेष्ठी) का सम्पूर्ण एकात्म भाव से अध्ययन करती है। क्योंकि किसी भी विषय का अधूरा अथवा खण्ड-खण्ड अध्ययन निश्चित रूप से उचित नहीं होगा एवं प्राप्त परिणाम घातक होंगे। अधूरे अध्ययन के तहत् मुझे यहाँ एक रोचक प्रसंग याद आ रहा है। एक व्यक्ति ने अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। उसमें सांख्यकीय (Statistics) उसका विषय था। उसमें भी उसने मात्र औसत (Average) का विशेष रूप से अध्ययन किया था। एक बार वह अपने गांव की बारात में अन्यत्र जाने हेतु सम्मिलित हुआ। बारात ने गांव से गन्तव्य हेतु प्रस्थान किया। मार्ग में एक नदी मिली। नदी को जैसे ही बाराती पार करने लगे तो औसत का अध्ययन किये गये महानुभाव ने सभी बरातियों को रोका एवं कहा कि 'रुकिये'। मैंने शहर जाकर जो अध्ययन किया है उसका आज लाभ प्राप्त किया जाये। गांव वालों ने उसके अध्ययन विशेष को देखते हुए स्वीकृति प्रदान कर दी। अब उन महानुभाव ने इस पार से उस पार नदी की गहराई का अध्ययन किया। कहीं नदी २ फुट गहरी, कहीं ४ फुट गहरी, कहीं ५ फुट गहरी एवं एक स्थान पर सबसे ज्यादा ७ फुट गहरी थी। नदी की इस पार से उस पार तक गहराई के अध्ययन के बाद जो औसत गहराई का योग था वह ५ फुट आया। अब उन्होंने बच्चे, बूढ़े, नौजवानों की ऊंचाई का औसत निकाला। कुछ ३ फुट, कुछ ४ फुट, कुछ ५ फुट, कुछ ६ फुट थे। बारातियों की लम्बाई का औसत $5\frac{1}{2}$ फुट आया। उन्होंने देखा नदी की गहराई का औसत ५ फुट आया बारातियों की ऊंचाई का औसत $5\frac{1}{2}$ फुट तत्काल बिना कोई विश्लेषण किये उन्होंने बरातियों को आदेश दे दिया। निकल चलो कोई चिंता की बात नहीं। निष्कर्ष सभी बाराती नदी में डूब गये क्योंकि नदी एक स्थान पर ७ फुट गहरी थी। तभी से कहावत बनी -

'कि लेखा-जोखा ज्यों का त्यों ।

पूरा कुनबा डूबा क्यों ।।

इस उदाहरण को देने का मात्र उद्देश्य यह कि किसी भी बात का अधूरा या खंड-खंड अध्ययन निश्चित कल्याण कारक नहीं रहता है।

पूंजीवादी व्यवस्था जिसने समाज में भौतिकवाद को बढ़ाया, जिस अमेरिकी क्रांति, फ्रांसीसी क्रांति, इंग्लैंड की क्रांति ने व्यक्ति स्वतत्रता के महत्व को प्रतिपादित किया, भले ही इन व्यवस्थाओं में बेकारी, बेरोजगारी, व्यापक भुखमरी तनाव जैसी स्थितियाँ रही हों परन्तु जनतंत्र अथवा व्यक्तिगत स्वतंत्रता को महत्व दिया गया। परन्तु जिस इंग्लैंड से लोकतंत्र का जन्म हुआ। जिस इंग्लैंड का विश्व के सैकड़ों देशों में राज्य था तथा कहावत थी कि 'विक्टोरिया के राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता है।' उसी लोकतंत्र के जनक के देश में काले एवं गोरे का व्यापक भेद क्या व्यक्ति स्वतंत्रता की सार्थकता को प्रतिपादित करता है ? जिस अमेरिका द्वारा विश्वशांति की हिमायत एवं लोकतंत्र कीं औचित्यता की बात करते हुए सम्पूर्ण विश्व को नेतृत्व की बात की जाती है क्यों उसने चीन को मात देने के पहले वियतनाम को लाखों अरबों डालर देकर तथा हजारों अमेरिकी सैनिकों को मौत के मुख में झोंका ? क्यों भारत जैसे लोकतांत्रिक देश की सम्प्रभुता के लिए पाकिस्तान को सैनिक सहायता दे एशिया में अशांति पैदा की? इन उदाहरणों का औचित्य ही सिद्ध करता है कि पूंजीवादी व्यवस्थाओं में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बात बेमानी है तथा सबसे ज्यादा मजाक व्यक्तिगत स्वतत्रता का यही लोकतंत्रीय सरकारें या इसके नेतृत्व कर्ता कर रहे हैं। कारण है व्यवस्था का एकपक्षीय अथवा खंड-खंड अध्ययन।

प्रो. कार्ल मार्क्स ने जिस साम्यवाद का प्रतिपादन किया उसमें उन्होंने विश्व को लालच दिया कि जिसको रोटी चाहिये वो साम्यवाद स्वीकार करे अथवा इसे लाने में सहयोग दे। लोगों ने रोटी की लालच में साम्यवाद (कम्युनिज्म) की अवधारणा को स्वीकार किया। पता चला कि रोटी की लालच में व्यक्तिगत स्वतंत्रता का भी अधिकार हाथ से चला गया। व्यक्तिगत अधिकार जिन्हें सामूहिक अधिकार के रूप में स्पष्ट किया गया था, वे मात्र कुछ व्यक्तियों अथवा दल के कुछ नेताओं के पास तक सीमित हो गये। आज तो इन साम्यवादी देशों में इस बात पर बहस छिड़ी है कि असली कम्युनिस्ट कौन है। एक दूसरे पर मिथ्या एवं अर्नगल आरोपों-प्रत्यारोपों का दौर चल रहा है।

एक बालक जो काफी कुशाग्र बुद्धि का तथा साथ-साथ नटखट भी था। उसके पिता प्रायः उसकी नटखट प्रवृत्ति से परेशान थे। क्योंकि बालक एक स्थान पर ज्यादा देर चुपचाप नहीं बैठ पाता था। उन्होंने एक दिन उसे काम में व्यस्त करने के लिये विश्व का नक्शा (मानचित्र) दिखाया। फिर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये एवं कहा कि मैं जब तक दूसरा कार्य देख रहा हूं। तुम इसे जोड़ो। बालक को कार्य उसके स्वभाव के अनुकूल लगा तो उसने विश्व मानचित्र को जोड़ना चालू किया। अथक परिश्रम के बाद भी बालक उस विश्व के मानचित्र को जोड़ नहीं पा रहा था। वह अत्यधिक परेशान भी था। तभी हवा का एक झोंका आया तो सभी टुकड़े उलट गये। उन उल्टे पुल्टे कागजों को जब बालक ने देखा तो उसे उसमें एक मानव आकृति के कुछ चित्र उसे बनते नजर आये। अब बालक पहले वाला, विश्वमानचित्र को जोड़ने वाला कार्य- भूल गया। उसे तो मानव आकृति नजर आने लगी। तो उसने मानव आकृति बनानी चालू की। कुछ समय के परिश्रम के पश्चात उसने देखा कि सम्पूर्ण मानव आकृति बन गयी। वो वह अत्यधिक प्रसन्न हुआ। इसके बाद उसने जब मानव आकृति को पलटा तो देखा कि उसके पीछे विश्व का मानचित्र बना है। इस कहानी का मूल ध्येय भाव यह कि यदि एक बार व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ लिया, तो धीरे-धीरे समाज, राष्ट्र एवं विश्व को जोड़ने के सूत्र मिल जायेंगे। एक बार व्यक्ति सही ढंग से आगे बढ़ गया तो इस संपूर्ण विश्व की गाड़ी भी स्वमेव बढ़ जावेगी। आज एक व्यक्ति का दूसरे से संघर्ष, एक समाज की दूसरे समाज से ईर्ष्या, एक राष्ट्र की दूसरे राष्ट्र को गुलाम बनाने की प्रवृति तथा संपूर्ण विश्व में अराजकता एवं अव्यवस्था की स्थिति का मूल कारण, हमने व्यक्ति को सुधारने की ओर ध्यान नहीं दिया। यदि इस कार्य को हमने संपन्न कर लिया तो शेष बाते तो अपने आप ठीक हो जायेगी।

पं. दीन दयाल उपाध्याय ने स्पष्ट करते हुये कहा कि व्यक्ति अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है तथा इसका भी संपूर्णता से अध्ययन आवश्यक है। उन्होंने कहा कि एक वचन का व्यक्ति तथा उसका अध्ययन भी ४ खंडों में दिया जाता है। अर्थात मनुष्य का निर्माण इन्ही ४ खंडों-

१. शरीर सुख

२. मन सुख

३. बुद्धि सुख एवं

४. आत्मा सुख से हुआ है।

एकात्म मानववाद दर्शन चित्र नं. २

व्यक्ति अध्ययन	पुरुषार्थ	
शरीर सुख	काम	
मन सुख	अर्थ	
बुद्धि सुख	धर्म	कर्ममार्ग
आत्मा सुख	मोक्ष	भक्ति मार्ग
		ज्ञान मार्ग

अतः जब व्यक्ति का विचार या अध्ययन होगा तो चारों सुखों को ध्यान में रखना होगा। किसी एक का भी अभाव व्यक्ति को संपूर्णता प्रदान नहीं करेगा। हिन्दू दर्शन व्यक्ति के चारों सुखों की कल्पना करता है।

१. व्यक्ति एवं शरीर सुख- एकात्म मानव दर्शन में व्यक्ति सुख का जब विचार प्रारम्भ किया जाता है तो सबसे पहले व्यक्ति के शरीर सुख पर ध्यान दिया जाता है। क्योंकि जब शरीर स्वस्थ्य रहेगा। तो आगे बाकी बातें भी ठीक रहेगी। इसलिये शरीर को स्वस्थ्य रखने के लिये जो न्यूनतम आवश्यकतायें (Minimum Wants) हैं। उनकी पूर्ति होना आवश्यक है। अब यह जरूर है कि आवश्यकतायें (कामनायें) ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है। उनके प्रति प्राप्ति का सोच भी निरंतर बढ़ता जाता है तथा व्यक्ति उनको प्राप्त कर शारीरिक सुख प्राप्त करता है। जैसे प्रारम्भ में व्यक्ति अपने कार्यालय आने जाने के लिये साइकिल का प्रयोग करे, फिर स्कूटर फिर कार इत्यादि। जैसे-२ आवश्यकताओं में वृद्धि होती है। त्यों-त्यों उनकी पूर्ति का प्रयास भी करता है तथा शारीरिक सुख प्राप्त करने का प्रयास करता है। अच्छा खाना, अच्छा पहनना, टी.वी. फ्रिज, रेफ्रिजिरेटर आदि सुखी जीवन के लक्ष्य इस समाज में माने गये हैं। आज के युग में शरीर को अधिक से अधिक आराम कैसे दिया जाये। यही शारीरिक सुख एवं सम्पूर्ण सुख मान लिया गया है। पूंजीवाद के विस्तार एवं उपभोक्ता संस्कृति जो पाश्चात्य देशों से उदित हुई, ने भौतिक सुविधाओं का विस्तार कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि भौतिक सुख ही संपूर्ण सुख है तथा इसको प्राप्त करना ही अंतिम लक्ष्य है। परंतु शायद अब पश्चिम के इस भौतिक वाद के अमेरिका, ब्रिटेन, इंग्लैंड को जो प्रतिकूल परिणाम प्राप्त हो रहे हैं। जैसे युवाओं में बढ़ती नशा खोरी, बढ़ती हुई अनुशासनहीनता एवं उच्छंखलता, मानसिक रोगियों की बढ़ती संख्या, (अमेरिका में

एक परिवार में एक व्यक्ति कम से कम मनोरोगी है), आत्म हत्याओं की संख्या में वृद्धि, युवतियों का विवाह के पूर्व गर्भधारण करना एवं गर्भपात कराना, नींद लाने के लिये ट्रंक्विलाइजर की गोलियों का सेवन करना, असुरक्षा की व्यापक भावना (अमेरिका में स्कूलों में छात्र बंदूक लेकर जाते हैं) आदि स्थितियों ने सिद्ध कर दिया है कि भौतिक सुख तथा इससे प्राप्त शारीरिक सुख एक आवश्यकता तो है। परन्तु इसे सम्पूर्ण नहीं माना जा सकता है। यही कारण है कि आज अमेरिका, बिट्रेन, इंग्लैंड भी हिन्दू दर्शन की अवधारणा को स्वीकार करने के लिये बाध्य होने लगे हैं। क्योंकि हमारे ऋषियों, मनीषियों ने हमेशा यही कहा कि कामनाओं (आवश्यकताओं या इच्छाओं) का विस्तार नहीं उनकी सीमितता ही। अंततः सुख कारक होती है। इसलिये हमारे दर्शन ने व्यक्ति के शरीर सुख को तो एक सुख माना है परन्तु इसे मात्र एक पक्ष माना है। व्यक्ति के लिये शरीर सुख के साथ-२ कुछ अन्य सुखों की औचित्यता भी प्रतिपादित की है। वह है मनसुख, बुद्धि सुख एवं इन्हें प्राप्त करते हुये अंत में आत्मा का सुख प्राप्त कर मोक्ष (परम सुख) प्राप्त किया जाये।

(२) **व्यक्ति एवं मन सुख** - व्यक्ति (मानव) अध्ययन के शरीर सुख को, एक सुख तो माना जाता है। परन्तु इसे सर्वसुख नही माना जाता है। इसलिये एकात्म दर्शन में शरीर सुख के साथ-साथ मन के सुख की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। शरीर जो सुख प्राप्त करता है उसकी अभिव्यक्ति मन द्वारा की जाती है। अच्छा खाना या पहनना शरीर के अर्न्तगत होता है। परन्तु हमें कैसा लगा यह मन द्वारा तत्काल व्यक्त किया जाता है। इसलिए शरीर सुख के साथ-साथ मन के सुख की कल्पना भी की गई है। अर्थात शरीर के सुख-दुख के साथ-साथ मन का भी सुख-दुख होता है। इस संदर्भ में यहाँ एक रोचक दृष्टांत दिया जाता है।

एक व्यक्ति जो समाजवादी विचारधारा का समर्थक था प्रायः यही बात दोहराया करता था कि 'रोटी का प्रश्न' विश्व का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है तथा यदि इस प्रश्न का समाधान हो गया तो व्यक्ति को कोई तकलीफ शेष नहीं रह जाती है। उसने कहा कि साम्यवाद ने यह समस्या हल करके व्यक्ति को व्यापक राहत दी है। इसलिये 'रोटी' के अलावा बाकी बातें महत्वहीन हैं। उस मित्र की बातें सुनकर उसके मित्र ने कहा बंधुवर मैं तुम्हारी इस बात को स्वीकार कर लेता हूं कि 'रोटी' की समस्या ज्वलंत समस्या है तथा सबसे महत्वपूर्ण भी ? मैं तुम्हारी इस समस्या का समाधान कर देता हूं। तुम रोज मेरे घर आया करो मैं तुम्हें भोजन कराऊंगा। परन्तु तुम्हें मेरी मात्र एक शर्त स्वीकार करनी होगी ? मित्र ने कहा बतलाइये ! तो उसने कहा कि मैं भोजन

कराने के बाद आपको चार जूते लगाऊंगा। तो उसका मित्र बोला। वाह यह क्या बात है ? इसे मैं क्यों स्वीकार करुंगा ? तो दूसरे मित्र ने कहा जैसे आप इस बात को स्वीकार नहीं कर रहे हैं। वैसे मुझे भी यह स्वीकार नहीं है कि 'रोटी' का प्रश्न या शारीरिक सुख ही सर्वसुख है। कहना का मतलब शरीर सुख के साथ-साथ मन का भी सुख होता है जो अपने आप में महत्वपूर्ण एवं आवश्यक होता है।

पं. दीनदयाल ने मन सुख के अनेकानेक दृष्टांत दिये हैं। उदाहरणार्थ दूरस्थ गये मित्र का काफी समय बाद पत्र मिलने पर हृदय आनन्द से विभोर हो जाता है, किसी व्यक्ति को नौकरी प्राप्ति की सूचना मिलना, किसी खोये व्यक्ति का वर्षों उपरांत परिवार से भेंट होना, विद्यार्थी को परीक्षा परिणाम में अनुकूलता का समाचार मिलना। बदरीनाथ, केदारनाथ या वैष्णव देवी के दर्शनार्थियों को अपार कष्टप्रद यात्रा के बाद दर्शनों के उपरांत प्राप्त सुख, किसी बीमार व्यक्ति को मित्र, रिश्तेदार द्वारा सहानुभूति व्यक्त करना, किसी सफलता के बाद माता-पिता अथवा भाइयों द्वारा शाबाशी (कपिल देव के द्वारा ४३२ विकेटों को लेने के पश्चात् सम्पूर्ण राष्ट्र की प्रसन्नता) आदि-आदि ऐसे उदाहरण हैं जो स्पष्ट करते है कि मन का सुख भी अलग प्रकार का सुख होता है। किसी व्यक्ति द्वारा अपशब्दों का प्रयोग करना, मालिक द्वारा नौकर को गालीगलौच देना, आदि मन में क्रोध या दुख का भाव पैदा करती है। इस प्रकार शरीर सुख के अलावा भी एक ऐसा सुख होता है जो व्यक्ति द्वारा अनुभव किया जाता है। जिसे व्यक्ति का मन का सुख कहा जाता है। इस सुख का अध्ययन भी आवश्यक माना जाता है।

(३) व्यक्ति एवं बुद्धि सुख - व्यक्ति या मानव अध्ययन केवल शरीर सुख या मन सुख तक सीमित नहीं होता है। शरीर एवं मन सुख के अलावा बुद्धि सुख भी होता है। अतः यदि शरीर सुख का अध्ययन आवश्यक है। मन सुख का अध्ययन जरूरी है तो बुद्धि सुख का अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने स्पष्ट करते हुए कहा है कि वैसे तो मनुष्य एवं प्राणियों में समानता है लेकिन जो अंतर होता है वह बुद्धि का होता है। जहाँ जीव-जन्तु प्राणी भोजन, निद्रा, भय, मैथुन आदि तक अपने जीवन को सीमित रखते हैं। परिवार, समाज, राष्ट्र सृष्टि तथा परमेश्वर आदि के गूढ़ प्रश्नों से उनका कोई औचित्य नहीं होता तथा वर्तमान एवं भविष्य में क्या होगा? इससे उन्हें कोई सरोकार नहीं है। इसका प्रमुख कारण जीव-जन्तुओं में बुद्धि तत्व का अभाव होना है। अतः वे शरीर सुख तक सीमित हो जाते हैं। परन्तु मानव में बुद्धि होने के कारण वह इन तमाम प्रश्नों पर गौर करता है। तत्पश्चात अपनी अल्प या तीक्ष्ण बुद्धि से इन प्रश्नों के समाधान खोजता है। यदि प्रश्न खोजने में सफल हो जाता है तो प्राप्त सुख बुद्धि सुख माना जाता है।

व्यक्ति के बुद्धि सुख के उसके प्रसंग दैनिक जीवन में देखने को मिलते हैं। परीक्षा के दौरान यदि कोई छात्र किसी गणित के प्रश्न को हल नहीं कर पाता है, तब वह सोचता है, बुद्धि पर जोर देता है तथा जब उसकी वास्तविकता समझ जाता है तो उस प्रश्न को हल कर देता है। इसे बुद्धि सुख माना जाता है। किसी कविता की पंक्ति का काव्य पाठ के दौरान विस्मृत होना, किसी भाषण या व्याख्यान के दौरान घटना प्रसंग को भूल जाना। उसे याद करना फिर अनायास उसका याद आ जाना। बुद्धि सुख के तहत माने जायेंगे। इन छोटी-छोटी बातों एवं सामान्य व्यक्तियों को यदि बुद्धि के सामान्य सुख प्राप्त होते हैं तो मनोवैज्ञानिकों, तत्ववेत्ताओं, ऋषि मुनियों जो प्रकांड बुद्धि के होते हैं वे सृष्टि में उपस्थित विशिष्ट प्रश्नों पर मनन एवं चिंतन करते है तथा इन प्रश्नों का हल खोजकर बुद्धि सुख प्राप्त करते हैं। इस संदर्भ में विशिष्ट उदाहरण दिये जा सकते हैं, जो विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा प्राप्त किये गये हैं।

वैज्ञानिक न्यूटन पेड़ के नीचे सोया पड़ा था। अचानक पेड़ से फल टूट कर गिरता है तथा न्यूटन के सिर पर गिरता है। न्यूटन की बुद्धि जागृत होती है तथा उसी से स्वयं प्रश्न करती है कि पेड़ से फल टूटा। ठीक है ? परन्तु यह नीचे ही क्यों गिरा? ऊपर क्यों नहीं गया ? फल दायें-बायें क्यों नहीं गया ? नीचे ही क्यों आया ? आखिर उसने विशिष्ट बुद्धि का प्रयोग किया और खोजते-खोजते निकाला गुरुत्वाकर्षण का नियम। इस नियम की प्राप्ति के बाद उसने जो सुख प्राप्त किया उसे बुद्धि सुख कहा गया। आर्कमिडीज जब स्नान करने जाता है तथा हौज में डूबता है तो देखता है कि उसके कूदने से उसके वजन के बराबर पानी बाहर आ जाता है। अनेकानेक बार प्रयोग को दोहराते हुए अंततः जब उसे सापेक्ष घनत्व के सिद्धांत का मूल भाव ज्ञात होता है तो बिना वस्त्रों को पहने वह प्रसन्नता से इतना मग्न हो जाता है कि शहर की गलियों में 'यूरेका-यूरेका' (मैंने पा लिया-मैंने पा लिया) चिल्लाते हुए भागता है। इसे बुद्धि सुख कहा गया। जैम्स बॉड जब सिगड़ी पर रखे बर्तन एवं पानी को गरम करता देख रहा था । तो देखता है कि बर्तन के ऊपर रखा ढक्कन हिल रहा है। वह सोचता है ऐसा क्यों ? पुनः हाथ से ढक्कन को दबाता है। भाप जोर मारती है तथा ढक्कन हिलता है तथा वाष्प के बाहर आते ही पुनः ढक्कन शांत हो जाता है। इस बात से उसकी बुद्धि विचलित होती है वह सोचता है ऐसा क्यों ? और ऐसा क्यों, अंततः भाप (वाष्प) के इंजिन के जन्मदाता के रूप में उसे विख्यात करता है।

बालक बुद्ध (सिद्धार्थ) सारथी के साथ रथ में बैठा नगर भ्रमण को जा रहा है। एक वृद्धा की झुकी कमर, कमजोर दृष्टि तथा लाठी लिए जाते देखता है तो पूछता

है कि सारथी यह क्या है ? सारथी कहता है, कुमार यह वृद्धावस्था के लक्षण हैं। कुमार फिर प्रश्न करता है कि क्या यह स्थिति मुझे भी प्राप्त होगी ? तो सारथी जवाब देता है कि हाँ कुमार हम सभी को इस स्थिति में पहुँचना होगा ? पुनः रथ आगे बढ़ता है। एक व्यक्ति की अर्थी को नगरवासी श्मशान की ओर ले जा रहे थे। पुनः सिद्धार्थ प्रश्न करते हैं कि सारथी यह क्या है ? सारथी कहता है कि कुमार इसका जीवन समाप्त हो गया है, इसे मृत्यु कहते हैं ? कुमार कहते हैं कि सारथी क्या हम सभी को इस अवस्था को प्राप्त करना होगा तो जवाब मिलता है कि, हाँ कुमार, मैं भी, आप भी, इसी तरह मृत्यु को प्राप्त होंगे ? ये दृश्य, ये प्रश्न तथा उत्तर सिद्धार्थ को सोचने पर मजबूर करते हैं तथा अंततः वे इन प्रश्नों को खोजने का व्रत लेते हैं, वैराग्य पैदा होता है। जीवन मरण के प्रश्नों को खोजते-खोजते अंततः जब उसे प्राप्त करते हैं तो महात्मा बुद्ध हो जाते हैं।

तुलसी देशाटन करने के बाद अपने घर राजापुर पहुंचते हैं। पत्नी से, बच्चे से बिछड़े बहुत समय हो जाता है। वे काम की चिंता में कामातुर थे। वर्षांत में तुलसी बाढ़ में लकड़ी के एक बड़े टुकड़े में बैठकर रत्नावली के मायके जाते हैं (लकड़ी का टुकड़ा वास्तव में मुर्दा था, पर प्रेम लगन में उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया)। जब ससुराल पहुंचते हैं तो एक तो अर्द्ध रात्रि की बेला, फिर मूसलाधार पानी तथा बादलों का गर्जन, वे खिड़की से लटके रस्से को पकड़कर ऊपर जाते हैं तथा पत्नी रत्नावली से मिलते हैं। वह ऊपर किस प्रकार आये जब पूछती है तो वे बताते हैं कि वे उसके द्वारा लटकाई रस्सी को पकड़ कर आये हैं। रत्नावली को आश्चर्य होता है। वह देखती है, तो घोर आश्चर्य एवं भय उत्पन्न होता है कि उसके पति ने जिसे रस्सी समझकर पकड़ा एवं ऊपर आये, वह तो भयंकर काला सांप था। जो वर्षांत में भीगकर सिकुड़ गया था एवं लटका था। इस भय मिश्रित क्रोध में रत्नावली उन्हें कहती है कि 'आप इस नश्वर' पापी देह से इतनी प्रीति रखते हैं जो अंततः परमेश्वर से मिलने वाली नहीं है। यदि आप मेरी अपेक्षा उस परमेश्वर (राम) से इतनी प्रीति रखते तो मेरा, आपका एवं इस जगत का कल्याण होता तुलसी की बुद्धि अचानक जागृत होती है। सोचते हैं कि वास्तविकता तो है। यही एक सत्य है ? इसी सत्य को उनकी बुद्धि ग्रहण करती है और इस सत्य के कारण रामबोला (तुलसीदास का बचपन का नाम) तुलसीदास से गोस्वामी तुलसीदास बन जाते हैं। बुद्धि का ज्ञान उन्हें सर्वत्र जन-जन में व्याप्त कर देता है। इस प्रकार ज्ञान के उदय को बुद्धि सुख की अवधारणा माना गया है।

(४) **व्यक्ति एवं आत्मा का सुख** - जिस प्रकार व्यक्ति के लिए शरीर सुख आवश्यक होता है। मन के सुख की आवश्यकता होती है, बुद्धि सुख की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार आत्मा का भी अपना सुख होता है। व्यक्ति के लिये इस सुख की प्राप्ति भी आवश्यक होती है। आत्मा के सुख को परिभाषित किया जाये। इसके पूर्व संक्षिप्त में यह भी जानना नितांत आवश्यक है। 'आत्मा' की जब बात की जाती है तो प्रायः पश्चिम के 'कुछ' तथाकथित बुद्धिजीवियों द्वारा हिन्दू दर्शन के प्रति यह प्रश्न कि 'आत्मा' क्या है? यह पूछा जाता है तथा यह दिखलाई नहीं देती। अतः कैसे इसकी उपस्थिति या अस्तित्व को स्वीकार किया जाये। पश्चिम के द्वारा यह प्रश्न उठाना मैं यहाँ स्वाभाविक इसलिये मानता हूं क्योंकि वे भौतिकवाद में इतना उलझ गये हैं कि 'शरीर' सुख के अतिरिक्त वे किसी सुख की बात स्वीकार नहीं करते हैं। वैसे तो इन्द्रियाँ मात्र शरीर सुख को अनुभव करती हैं। मन एवं बुद्धि का सुख वे भी अनुभव नहीं कर पाती हैं। परन्तु हम मन एवं बुद्धि सुख के अस्तित्व को मान कर चलते हैं। इस आधार पर आत्मा के सुख या अस्तित्व को भी माना जायेगा? प्रायः पुनः प्रश्नकर्ता यह प्रश्न कर सकता है कि मान लो हम आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार कर लेते हैं तो आखिर प्रश्न उठता है कि आत्मा क्या है ? यह कैसी रहती है ? आदि-आदि।

प्रायः सामान्य बुद्धि का व्यक्ति इन प्रश्नों की औचित्यता एवं अनौचित्यता पर मौन रहता है अथवा गृहस्थ जीवन की व्यस्तताएं इतनी ज्यादा हैं कि उसे इन बातों को सोचने का समय ही नहीं मिलता अथवा यह सोचता है कि इन सब बातों पर एक उम्र के पश्चात (वृद्धावस्था में पदार्पण के पश्चात) अर्थात 'अंग गलितम् पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं मण्डं' विचार करेगा। हमारी हिन्दू संस्कृति में आत्मा को अशरीरी, निर्गुण, विलिप्त कहकर परिभाषित किया गया है। रसायन शास्त्र में इसे रंग हीन, गंधहीन, वायुहीन कहा गया है। आत्मा को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसीलिये आत्मज्ञान अथवा आत्म सुख सर्वोत्तम कहा गया है। आत्मा को ही हमारे यहाँ परमेश्वर, परमब्रह्म, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, सार्वभौमिक अनेक रूपों में स्पष्ट किया गया है। हिन्दू दर्शन की इस अवधारणा को पश्चिम के अर्थशास्त्री स्वीकार नही करते हैं? परन्तु पं. दीनदयाल जी ने स्पष्ट करते हुए कहा है कि यदि सामान्य सोच से हटकर गहराई में जाकर चिंतन करें, मनन करें, तो ध्यान में आयेगा कि व्यक्ति-२ में, एकता का अनुभव कराने वाला, सभी व्यक्ति सुखी एवं सम्पन्न हो ऐसा भाव जागृत करने वाला, उनमें प्रेरणा एवं उत्साह की अनुभूति कराने वाला, जो भाव सम्पूर्ण जगत में है। वही भाव प्रत्येक व्यक्ति

में है। यही भाव जीव जन्तुओं में भी है। इन सभी को व्यवस्थित रूप से जो संचालित करता है वह परमब्रह्म (ईश्वर) है तथा उस ईश्वरीय सत्ता का भाव व्यक्ति में आत्मा के रूप में विद्यमान है।

इस प्रकार आत्मा का सुख, शरीर सुख, मन सुख एवं बुद्धि सुख से श्रेष्ठ माना गया है। व्यक्ति के सम्पूर्ण एवं संतुलित विकास के लिये शरीर, मन एवं बुद्धि सुख के साथ-साथ आत्मा के सुख की प्राप्ति भी आवश्यक है। अन्यथा आत्मा सुख के अभाव में व्यक्ति की स्थिति वैसी ही होती है जैसे मानलो किसी नाव में अनेकानेक यात्री नदी के पार जाना चाहते हैं परन्तु वे नाव में किसी स्थान विशेष पर बैठना चाहते हैं तो सभी यात्री नाव के उस स्थान पर जाने हेतु धक्का मुक्की करेंगे। परिणाम स्पष्ट है। नाव डूबेगी एवं यात्री मृत्यु को प्राप्त होंगे। शरीर सुख में लगी भौतिकवादी अर्थव्यस्थायें इसी अल्प मृत्यु को प्राप्त कर रही हैं। अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, इंग्लैंड में बढ़ती हुई आत्महत्यायें एवं पागलपन की स्थितियां अति भौतिकवाद की परिणति है। इसलिये हमारे देश में शरीर सुख, मन सुख, बुद्धि सुख के साथ-साथ आत्मा के सुख को स्वीकार किया गया है। इस संदर्भ में (आत्म सुख) भी अनेकानेक दृष्टांत दिये जाते हैं - माता जब अपने पुत्र को स्तनपान कराती है। तो बालक की भूख मिटती है। उसे शरीर सुख मिलता है। परन्तु माँ को, पुत्र को, स्तनपान कराने पर जो अतुलनीय सुख मिलता है। इसे ही आत्म सुख कहा जाता है। किसी भूखे व्यक्ति को रोटी देने पर उसे शरीर सुख मिलता है। परन्तु रोटी देने पर होने वाला अप्रत्यक्ष सुख, आत्मा का सुख कहा जाता है।

भगवान राम एवं लक्ष्मण सीता को खोजते हुए जंगलों में भटक रहे थे। तभी शबरी उन्हें अपने आश्रम ले जाती है। राम एवं लक्ष्मण को बेर खिलाती है। कही भगवान राम को खट्टे बेर न मिले इसलिए वह उन्हें स्वयं चखती है। फिर जूठे बेर उन्हें देती जाती है। भगवान भी शबरी के बेर प्रेम पूर्वक ग्रहण करते जाते हैं। शबरी को खिलाने पर एवं भगवान राम को खाने पर जो सुख प्राप्त होता है वही आत्मा का सुख है। जो शरीर, मन, बुद्धि के एकात्म होने एवं बाहय जगत से नाता टूटने एवं आंतरिक जगत से सम्बन्ध होने से उत्पन्न होता है। तभी तो जो सुख राम एवं शबरी ने प्राप्त किया अनुज लक्ष्मण उसे प्राप्त करने से वंचित हो गये।

भगवान कृष्ण जब हस्तिनापुर कौरवों एवं पांडवों की संधि वार्ता कराने हेतु जाते हैं तो दुर्योधन उन्हें अपने महल में भोजन हेतु आमंत्रित करता है। भगवान कृष्ण वहाँ तो नहीं परन्तु अपने मित्र विदुर के घर आतिथ्य स्वीकार करते हैं। विदुर की पत्नी भगवान कृष्ण के आगमन से इतनी उत्साहित होती है कि, वह भोजन कराते

समय जब भगवान को केले खिलाती है तो गूदा तो फेंकती जाती है तथा छिलके भगवान को देती जाती है। भगवान भी आनंद पूर्वक छिलकों को खाते जाते हैं। इसे ही आत्म सुख कहा गया है।

इस प्रकार जब व्यक्ति के सुख का विचार किया जाता है, तो हम शरीर सुख, मन सुख, बुद्धि एवं आत्म सुख सभी का अध्ययन करते हैं। क्योंकि व्यक्ति, शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा का संकलित स्वरूप है। किसी भी एक का अभाव, अपूर्णता अथवा दुख का कारक माना जायेगा।

भारतीय संस्कृति केवल शरीर एवं आत्मा की ओर ही ध्यान केन्द्रित नहीं करती बल्कि मन की चंचलता नष्ट करने के लिये, मन एकाग्र हो। इस हेतु न्यूनतम आवश्यकतायें हों, इच्छायें कम से कम हों ऐसा संस्कार आश्रमों में, गुरुकुलों में दिया जाता था। इसके लिये कठोरता से प्राणायाम, ध्यान एवं धारणा इत्यादि का अभ्यास विधिवत होता था। इसी प्रकार शरीर की अंतः शुद्धि ठीक से हो, बुद्धि का समुचित विकास हो। इस हेतु भारतीय संस्कृति में वेद, उपनिषद, पुराणादि स्मृतियों के अध्ययन अध्यापन द्वारा आध्यात्मिक विद्या का विधिपूर्वक (नियम से) उपदेश दिया जाता था। इसके अलावा भूगोल, इतिहास, खगोल, वनस्पति शास्त्रों का अध्ययन भी कराया जाता था। स्वामी समर्थ रामदास जी ने तो इन शास्त्रों के ज्ञान को नवविद्या भक्ति का अंग माना है तथा इसमें तीर्थाटन को भी सम्मिलित किया है। अर्थात हमारी व्यवस्था भौतिकज्ञान की भी उपेक्षा नही करती है। भगवान श्री कृष्ण ने तो भगवत गीता में ज्ञान में आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों ज्ञानों को सम्मिलित करते हुए, स्पष्ट किया है कि -

।। 'क्षेत्रज्ञेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्रजज्ञानं मतं मम ।।' गीता १३२

अर्थात जिस ज्ञान में क्षेत्र एवं ज्ञेत्रज्ञ दोनों को प्रत्यक्ष किया जाता है। वही यर्थाथ ज्ञान है। यही मेरा मत है।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति का श्रेष्ठता का आधार यही है कि वह मात्र किसी एक तत्व के सोच पर सीमित नही रही है। बल्कि शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा चारों का चिंतन बराबरी एवं प्रमुखता से किया गया है। इसलिये हमारे यहाँ शरीर सुख, मन सुख, बुद्धि सुख एवं आत्मा के सुख का साथ-साथ विचार किया गया है। किसी भी तत्व (सुख) की उपेक्षा का भाव हमारे हिन्दू दर्शन में नहीं रहा है। यदि व्यक्ति के आदर्श जीवन को सुखमय बनाना है तो शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा को एकात्म दृष्टि से देखना एवं समझना होगा।

❑ ❑ ❑

खण्ड - ६

एकात्म मानववाद दर्शन

(पुरुषार्थ एवं पुरुषार्थ प्राप्ति के साधन)

खण्ड - ६

एकात्म मानववाद दर्शन

(पुरुषार्थ एवं पुरुषार्थ प्राप्ति के साधन)

व्यक्ति एवं पुरुषार्थ - व्यक्ति का अध्ययन-शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा इन चारों रूपों में किया जाता है तथा इसकी प्राप्ति के लिये हमारे यहां चार-पुरुषार्थो की व्याख्या की गई है -

१. काम (कामना) पुरुषार्थ

२. अर्थ - पुरुषार्थ

३. धर्म पुरुषार्थ एवं

४. मोक्ष पुरुषार्थ।

उपरोक्त पुरुषार्थों के द्वारा व्यक्ति सुखी एवं संतुष्ट जीवन लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। इन चारों पुरुषार्थों में काम-पुरुषार्थ एवं अर्थ पुरुषार्थ तो धर्म द्वारा नियंत्रित होता है। इन तीनों पुरुषार्थों (काम/अर्थ/धर्म) को प्रमुख पुरुषार्थ तथा मोक्ष को परम पुरुषार्थ माना गया है।

१. व्यक्ति एवं काम पुरुषार्थ :- एकात्म-मानववाद में पं. दीनदयाल उपाध्याय ने काम (कामना) को प्रथम पुरुषार्थ की श्रेणी अथवा वर्ग में रखा है तथा स्पष्ट किया है कि हमारी इच्छाऐं या आवश्यकताऐं ही हमारी कामनाऐं है। कामनाऐं, शरीर के अंदर से उत्पन्न होती है। अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से ये व्यक्ति की कामनाऐं या इच्छाऐं अनंत या असीमित होती है तथा इनकी प्राप्ति के साधन सीमित होते है। कामनाओं या इच्छाओं की एक विशेषता कि एक आवश्यकता या कामना के पूर्ण होते ही दूसरी नयी कामना उत्पन्न होती है, दूसरी कामना की पूर्ति होते ही कोई तीसरी कामना उत्पन्न होती है तथा तीसरे कामना की पूर्ति होते ही कोई नई कामना उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार कामनाओं का यह क्रम निरंतर एवं अबाध गति से चलता रहता है। उदाहरण के लिये यदि किसी छात्र/व्यक्ति की साइकिल प्राप्त करने की इच्छा है। मान लो यह इच्छा पूर्ण होती है तो यही पर इच्छा का अंत नही हो जाता। वह छात्र अब स्कूटर प्राप्ति की

इच्छा करेगा। मान लो परिवार द्वारा इस इच्छा की पूर्ति भी कर दी जाती है तो कल पुनः कोई नयी इच्छा कार (मारुति या फियेट) की पैदा हो जायेगी। तात्पर्य यह कि कामनाओं का यह क्रम निरंतर एवं अबाध गति से चलता रहता है। इस प्रकार शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा की भूख के पूर्ण होने पर व्यक्ति (मनुष्य) को जो सुख मिलता है। इस भूख या क्षुधाओं को पं. दीनदयाल जी ने काम (कामनाऐं) कहा है। यदि व्यक्ति शरीर से स्वस्थ्य, मन से प्रसन्न एवं बुद्धि से श्रेष्ठ हो तो कामनाओं का ठीक से सुख प्राप्त कर लेता है। इसके विपरित यदि व्यक्ति शरीर से अस्वस्थ्य (बीमार), मन से अशांत एवं बुद्धि से विकृत हो तो काभनाओं का सुख वह प्राप्त नही कर पाता है। इस प्रकार इन कामनाओं की प्राप्ति हेतु जो साधन है। उसे हमारे यहां काम पुरुषार्थ कहा जाता है। 'काम' को दूसरे रूप में 'सेक्स' या शारीरिक सुख के रूप में भी कुछ लोगों द्वारा पारिभाषित किया जाता है। इसके तहत् स्त्री एवं पुरुष के मिलन को 'काम' नाम दिया जाता है। इस प्रकार काम का एक अर्थ कामनाऐं या इच्छाऐं है। तो दूसरा अर्थ रति सुख (सेक्स) माना गया है। परन्तु 'सेक्स' काम का संकुचित या विकृत अर्थ है तो इच्छायें या आवश्यकतायें विस्तृत या व्यापक दृष्टि कोण है।

काम, मन का विशेष गुण माना जाता है। हमारे यहां मन की तुलना चंचल पक्षी से की गई है जो न जाने कहां-कहां फिरता रहता है तथा जाने क्या-क्या सोचता रहता है। जो उसे कदापि नहीं सोचना चाहियें ? मन इन किये जाने एवं न किये जाने वाले कार्यों हेतु इन्द्रियों को प्रेरित करता रहता है। यदि व्यक्ति इन कामनाओं से पीड़ित होकर विषय वासनाओं या गलत मार्गों की ओर उन्मुख होता है तो उसका पतन होता है। यदि वह कामनाओं को नियंत्रित कर निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ता है तो वह ईश्वरीय सत्ता को प्राप्त कर परम सुख (मोक्ष) प्राप्त करता है।

हमारे हिन्दू दर्शन एवं पश्चिम के दर्शन में कामनाओं के संदर्भ में मौलिक अंतर है। पश्चिम में कामनाओं (इच्छाओं) की निरंतर पूर्ति का उद्देश्य निर्धारित किया गया है तथा उसे ही सुख एवं विकास का आधार माना गया है तथा इसी आधार पर उनका सामाजिक ढांचा खड़ा है। जिसकी अंतिम परिणति कि व्यक्ति भौतिक वाद के जाल में इतना उलझ गया है कि वहां व्यापक भुखमरी, व्यापक बेरोजगारी, आत्महत्याओं की बढ़ती संख्या, मनोरोगियों की बढ़ती संख्या, बिखरती परिवार व्यवस्था, बढ़ती यौन उच्छखंलता (एड्स जैसे भयानक रोगों की उत्पत्ति एवं विस्तार) आदि स्थितियों ने इस अर्थ-व्यवस्थाओं को अधोपतन की स्थिति में ला दिया है। जबकि हमारा दर्शन 'प्रारम्भ'

से ही इन कामनाओं के नियंत्रण या उन्हें सीमित करने का पक्षधर रहा है। इस सीमितता को हमारे ऋषियों ने बड़े सरल वाक्यों में स्पष्ट करते हुये कहां कि आवश्यकताओं का विस्तार नही बल्कि उनका संकुचन ही सुख का आधार है। तभी तो हम कहते है -

साँई इतना दीजिये, जामे कुटुंब समाय।

मैं भी भूखा न रहूं, साधू न भूखा जाय।।

इस सीमितता को हमने केवल कामनाओं तक ही नहीं रखा बल्कि सेक्स (काम) परिभाषा के तहत् भी हमने स्त्री पुरुष प्रसंग को 'पितृ ऋण' से जोड़ा एवं परिवार की श्रृंखला विखंडित न हो इस हेतु विवाह तथा पुत्र उत्पत्ति को सामाजिक मान्य स्वरूप दिया। विवाह के तहत् भी एक विवाह या भगवान राम के मर्यादा स्वरूप को अपना आधार स्वीकार किया। जिसने इन नियमों से हटकर कोई कार्य किया उसे लम्पट, कामी जैसे उद्‌बोधन देकर समाज से बहिष्कृत करने की व्यवस्था भी की। इस प्रकार कामनाओं की सीमितता या उन पर नियंत्रण के कारण हिन्दू दर्शन एवं हिन्दू राज्य आज भी सुदृढ़ एवं श्रेष्ठतम है।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति के तहत् काम पुरुषार्थ को प्रथम पुरुषार्थ के तहत् स्वीकार किया गया है।

२. **व्यक्ति एवं अर्थ-पुरुषार्थ** - काम पुरुषार्थ अथवा कामनाओं, इच्छाओं या आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जिस द्वितीय पुरुषार्थ को सम्मिलित किया गया है। उसे अर्थ पुरुषार्थ कहा जाता है। शरीर सुख एवं विभिन्न भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अर्थ (धन) की आवश्यकता अत्यधिक महत्वपूर्ण मानी गई है। फिर वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था तो पूर्णतः अर्थ पर आधारित है। तभी तो कहा गया है कि 'पूंजीवाद में अर्थव्यवस्था पूंजी की धुरी के चारों ओर चक्कर लगाती है।' इस प्रकार अर्थ अत्यधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है जो दैनिक कार्यों से लेकर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व सभी के लिये अपरिहार्य है। अर्थ पुरुषार्थ के अन्तर्गत एक विशेष बात की ओर ध्यान देना आवश्यक है कि, व्यक्ति के सुख की प्राप्ति हेतु जिन-जिन बातों की आवश्यकता होती है, उन सभी का इसमें समावेश हो ऐसा आवश्यक नहीं है। जिसको प्राप्त करने हेतु व्यक्ति को कुछ न कुछ उद्यम करना पड़े, कुछ कार्य करना पड़े। उसे अर्थ की श्रेणी में सम्मिलित किया जाता है। उदाहरण के लिये सूर्य प्रकाश, वायु, पानी, पहाड़, नदी-घाटी, खनिज, झील, इत्यादि इनसे व्यक्ति को पर्याप्त सुख एवं संतोष प्राप्त होता

है। परन्तु इनकी प्राप्ति हेतु व्यक्ति कोई प्रयास नही करता क्योंकि इन तत्वों को प्रकृति सभी व्यक्तियों को निःशुल्क (Free on cost) उपलब्ध कराती है। अर्थात प्रकृति इनका कोई मूल्य व्यक्ति से नही लेती है। इसलिये इन्हें अर्थ पुरुषार्थ की श्रेणी में सम्मिलित नही किया जाता है। परन्तु इसके विपरीत व्यक्ति अपने जीवन को बनाये रखने के लिये अनाज, वस्त्र, भवन-भूमि आदि की आवश्यकता महसूस करता है। अतः इनकी प्राप्ति हेतु वह प्रयास करता है। इसे अर्थोपार्जन कहा जाता है। इसे अर्थ पुरुषार्थ कहा जाता है। अर्थात गरीब व्यक्ति द्वारा मजदूरी करना, किसी व्यक्ति द्वारा नौकरी करना, व्यापारी द्वारा व्यापार करना इत्यादि कार्यों को इस श्रेणी में सम्मिलित किया जाता है। अर्थोपार्जन व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। उदाहरण के लिये ईमानदार व्यक्ति पूर्णतः लगन एवं मेहनत से परिवार का भरण पोषण करें तो वह इसी श्रेणी में आयेगा तो यदि चोर-डाकू यदि अपने एवं परिवार के लिये अनाचार अत्याचार करते है तो वह भी इसी श्रेणी में सम्मिलित होगा। हमारे हिन्दू धर्म में 'धर्म' इन दोनों का स्पष्टता से वर्गीकरण करता है तथा ईमानदार व्यक्ति के अर्थोपार्जन को अच्छा माना गया है तो चोर-डाकू की क्रियाओं को अधर्म कहा गया है।

इसके अतिरिक्त एक बात और दृष्टिगत रखने की है कि व्यक्ति की जीविका का साधन उसकी पूर्णतः रुचि के, मन के अनुकूल होना चाहिये। अन्यथा उक्त कार्य से उसे अर्थ की प्राप्ति तो सम्भव होगी, परिवार का भरण पोषण भी होगा परन्तु उस व्यक्ति को आत्म-संतोष या आत्मसुख कदापि प्राप्त नही होगा। इस संदर्भ में ऋषि वाल्मीकि के प्रारम्भ का उदाहरण दिया जा सकता है। डाकू वाल्मीकि जंगलों में निकलने वाले यात्रियों, कारवॉ, व्यापारियों को लूटकर परिवार का भरण पोषण करते थे। एक बार नारद ऋषि वहां से गुजरे। डाकू वाल्मीकि ने उन्हें रोका। ऋषि नारद के पास तो तानपूरा छोड़ कुछ नहीं था। लेकिन डाकू वाल्मीकि उनसे अर्थ चाहता था। जब डाकू-वाल्मीकि ने उनकी हत्या का विचार किया तो ऋषि नारद ने कहा कि ठीक है। तू हत्या करना चाहता है तो कर, परन्तु यह बता कि तू यह पाप किस के लिये कर रहा है ? डाकू वाल्मीक ने कहा कि मैं यह परिवार के भरण पोषण के लिये कर रहा हूं। तो ऋषि ने पुनः सवाल किया क्या तेरी पत्नी, बच्चे, माता-पिता इस पाप में भागीदार है तो डाकू वाल्मीक ने कहा शंका का प्रश्न ही नहीं। तो ऋषि ने कहां कि तू भ्रम में है ? भरण-पोषण करना तो तेरा दायित्व है। परन्तु तेरा परिवार इसमें भागीदार नही है। वाल्मीक ने इस बात को स्वीकार नहीं किया तो ऋषि नारद ने कहां

ठीक है तू जा एवं परिवार में सभी से पूछकर आ। डाकू वाल्मीक ने ऋषि नारद को पेड से बांधा एवं जाकर जब पत्नी, पिता-माता, पुत्र-पुत्रियों से ऋषि का बताया प्रश्न किया तो सभी ने कहा कि मुखिया के नाते परिवार का भरण पोषण करना तो उसका दायित्व बनता है। परन्तु वे उसके किसी 'पाप' में भागीदार नहीं हैं ? उस ग्लानि ने डाकू वाल्मीक को ऋषि वाल्मीक बना दिया। इस कहानी का यहां उद्देश्य यह है कि किया जाने वाला अर्थोपार्जन का उद्देश्य यदि आत्म-सुख प्रदान न करें या आत्म सुख में व्यवधान पैदा करने वाला है तो तात्कालिक रूप से रोजी रोटी की समस्या के हल होने के बाद भी मन अतृप्त एवं उत्साह हीन रहेगा।

पं. दीन दयाल उपाध्याय जी ने **राष्ट्र चिंतन के पृष्ठ ८९** में इसे स्पष्ट करते हुये कहा कि - 'कमाई करने के साधनों का स्वरूप ऐसा निश्चित करना चाहिये कि, व्यक्ति के काम एवं प्रत्यक्ष जीवन के मध्य कोई दीवार नही खड़ी होनी चाहिए। यह स्वरूप निश्चित करते समय हमें अपने सम्मुख हृदय, बुद्धि, शरीर तीनों क्षुधाओं को रखने वाला हाड़मांस का मनुष्य होना चाहिये। अन्यथा काम के आठ घंटों के मानवीय सदगुणों के लिये हानिकारक होने वाले दुष्प्रभाव को दूर करने के लिये ही उसके शेष सोलह घंटे बीत जायेगे और वह पुनः आठ घंटों के चक्कर में फंस जायेगा।'

अर्थ-प्राप्ति केवल जीविका प्राप्ति या भरण-पोषण का मात्र साधन नहीं होता बल्कि मनुष्य के जीवन की अभिव्यक्ति भी होती है। उदाहरण के लिये किसी गायक की गायन कला, सितार वादक का सितार वादन, किसी कवि की कवितायें, चित्रकार की चित्रकला, मूर्तिकार की मूर्तिकला या शिल्प, किसान का खेती करना, आदि आदि ऐसी अनेकानेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। जिसमें जीविका तो एक पक्ष है। परन्तु दीर्घकाल में ये गुण व्यक्ति की अभिव्यक्ति बन जाते हैं। फिर इस गुण का आभाव उसके जीवन में शून्यता भर देता है। इस प्रकार अर्थ पुरुषार्थ व्यक्ति के जीवन का महत्वपूर्ण पहलू होता है। इसके दो रूप होते हैं -

(अ) अर्थ - का अभाव या कमी एवं

(ब) अर्थ - का प्रभाव या आधिक्य।

अर्थ के अभाव एवं अर्थ के प्रभाव का एकात्मकतावाद के विश्लेषण को जानने हेतु विस्तृत अध्ययन आवश्यक है।

(अ) **अर्थ का अभाव - अथवा अर्थ की कमी** - अर्थ का अभाव अथवा अर्थ की कमी, अर्थ-पुरुषार्थ की एक स्थिति मानी जाती है जो व्यक्तिगत रूप से तथा सामाजिक या राष्ट्र के समग्र दृष्टिकोण से हानिकारक माना जाता है। अर्थ का अभाव व्यक्ति के जीवन में व्यापक तकलीफें उत्पन्न करता है। इससे व्यक्ति को अपनी दैनिक दिनचर्या के अन्तर्गत भोजन, आवास एवं वस्त्र इत्यादि की प्राप्ति में व्यापक कष्टों का सामना करना पड़ता है। तो बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य आदि पूर्तियों में भी कठिनाई होती है। अर्थ का यदि समाज एवं राष्ट्र में अभाव हो तो देश को दूसरे देशों की मदद लेनी पड़ती है। यदि अभाव की स्थिति निरंतर बढ़ती जाती है तो देश की आर्थिक नीतियां, विदेशों से प्रभावित होती है तथा कभी-कभी तो यह अभाव की स्थिति देश की अखंडता एवं एकता के लिये भी खतरा उत्पन्न कर देती है। (चिली एवं फिलीपींस ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर निर्भरता बढ़ाई, परिणाम स्वरूप देश को आर्थिक गुलामी का सामना करना पड़ा)। कमोवेश आज भारत सहित विश्व के ११७ देशों ने गैट प्रस्ताव को स्वीकार कर इस स्थिति को प्राप्त कर लिया है। डंकल प्रस्ताव अंततः आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक गुलामी का कारण बन सकता है।

इस प्रकार अर्थ का अभाव व्यक्ति को अनाचार, अत्याचार, शराबी, चोर, डाकू बनने को बाध्य करता है। तो अर्थाभाव नैतिक पतन (महिलायें वैश्यावृत्ति को बाध्य होती है) को बढ़ाता है। अर्थाभाव के कारण बेरोजगारी, बेकारी जैसी स्थितियां जहां नशाखोरी, तनाव, आत्महत्या जैसी स्थितियों को उत्पन्न करती है तो यही पीड़ा जब ज्यादा घनीभूत हो जाती है तो नौजवान आतंकवादी या उग्रवादी बनकर देश की सम्प्रभुता को खतरा पैदा कर देता है। पंजाब, काश्मीर, मिजोरम, गोरखलैंड, तमिलनाडू आदि में उग्रवादी स्थितियां कमोवेश अर्थाभाव का एक महत्वपूर्ण कारण कही जा सकती है।

धर्म को अर्थ एवं काम दोनों का निर्धारक माना गया है। अर्थात कामनायें एवं अर्थ, धर्म से नियंत्रित होता है। परन्तु अर्थ का अभाव कभी कभी धर्म को भी नष्ट कर देता है। अर्थ का अभाव, व्यक्ति की वैचारिक सोच को नष्ट सा कर देता है। बंगाल में जब सूखा पड़ा तो माताओं ने अपने पुत्रों को, पुत्रियों को मात्र कुछ रुपये, मात्र कुछ खाने की साम्रगी के ऐवज में बेच दिया। जबकि मां के पुत्र प्रेम का कोई दूसरा उदाहरण मिलना असम्भव है। अर्थ के अभाव के तथा उससे उत्पन्न विषम परिस्थितियों के अनेक उदाहरण हमारे यहां वेदों में, कहानियों में दिये गये हैं अर्थात अर्थ के अभाव के कारण धर्म भी विचलित हो जाता है। इस संदर्भ में कहा गया है -

बुभुक्षितः किं न करोति पापम् ।

क्षीणाः नरा निष्करूणाः भवन्ति।।

अर्थात भूखा व्यक्ति कुछ भी पाप कर सकता है इस संदर्भ में हमारे हिन्दू धर्म ग्रन्थ में कथा है कि ऋषि विश्वामित्र जब भूख से अत्यधिक व्याकुल हो गये तो उन्होंने कुत्ते का जूठा मांस चांडाल के घर से घुसकर चोरी से प्राप्त किया तथा खाया। ताकि शरीर सुरक्षित रहे अर्थात शरीर बना रहे। अर्थ के अभाव ने एक ऋषि की बुद्धि एवं विवेक को पूर्णतः नष्ट कर दिया। अर्थ के अभाव के कारण व्यक्ति पतन की किन हदों तक पहुंच सकता है। इसका उदाहरण प्रेमचंद की कहानी कफन से स्पष्ट होता है। घीसू एवं माधो बाप-बेटे हैं। बुधिया माधो की पत्नि प्रसव पीड़ा के दौरान उसकी मृत्यु होना। अर्थाभाव के कारण उसकी अन्त्येष्टि करना भी सम्भव न हो तो गांव के जमींदार सहित सभी लोग क्रियाकर्म के लिये पैसा (चंदा) इकट्ठा करके घीसू एवं माधो को देते हैं दोनों बाहर लकड़ी कफन एवं अन्य सामग्री लेने जाते हैं। परन्तु मार्ग में शराब की दुकान देख, वह रुपया शराब पर खर्च कर देते हैं तथा प्रसन्नता से नृत्य करते हुए बाप-बेटे एक दूसरे से कहते हैं कि देखो स्वर्ग से बुधिया हमारी प्रसन्नता को देखकर उसे भी प्रसन्नता हो रही है तथा निश्चित बुधिया पुण्यात्मा थी। कहानी यहीं समाप्त होती है। मुंशी प्रेमचंद की यह कहानी अर्थ के अभाव से उत्पन्न व्यक्ति के पतन की उस स्थिति को स्पष्ट करती है कि व्यक्ति अर्थ के अभाव से इतना विवेक शून्य हो जाता है कि मृतक की अन्त्येष्टि से ज्यादा भूख महत्वपूर्ण हो जाती है। इस प्रकार अर्थ का अभाव समाज में व्यापक हानिप्रद स्थितियों को जन्म देता है। इसलिये हमारे दर्शन में कहा गया है कि अर्थ का अभाव धर्म को नष्ट करता है। अतः उससे व्यक्ति या समाज को बचाने का प्रयास करना चाहिये।

(९) अर्थ का प्रभाव या आधिक्य - पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अर्थ के अभाव को व्यक्ति एवं समाज राष्ट्र एवं अर्न्तराष्ट्रीय दृष्टिकोण से हानिप्रद माना है। तो इसके दूसरे पक्ष अर्थ के प्रभाव को भी दोषपूर्ण माना जाता है। अर्थ का प्रभाव भी व्यक्ति एवं समाज धर्म को हानि पहुंचाता है। अर्थ के प्रभाव से अभिप्राय धन, संपत्ति की अधिकता से है। परन्तु इसके साथ-साथ अर्थ (सम्पत्ति धन) के प्रति अत्यधिक मोह भी होना अर्थ का प्रभाव स्पष्ट करता है। इससे मात्र धनोपार्जन व्यक्ति के जीवन का मूल लक्ष्य बन जाता है। इस अर्थ प्राप्ति के लिये वह सभी कुछ करने को तत्पर हो जाता है। सामाजिक कल्याण (Social Welfare) की फिर निरंतर उपेक्षा होने लगती है जो अंततः समाज

के पतन का कारण बनती है। इस संदर्भ में इंग्लैंड का उदाहरण दिया जा सकता है। जब एडम स्मिथ ने 'अर्थशास्त्र' को परिभाषित किया कि 'अर्थशास्त्र धन सम्बन्धी विज्ञान है जो धन सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन करता है।' अतः समाज को अधिक धनोपार्जन करना चाहिये। एडम स्मिथ के इस आव्हान को इंग्लैंड के व्यापारियों ने स्वीकार किया एवं अधिक धन प्राप्ति के प्रयास प्रारम्भ कर दिये। प्रारम्भ में ये प्रयास तो ठीक थे परन्तु बाद में धन प्राप्ति की लिप्सा (लालच) इतनी ज्यादा हो गई कि कारखानों में पुरुष, महिला एवं बाल श्रमिकों से १०-१०, १२-१२ घंटे काम लेना प्रारम्भ कर दिया गया, वस्तुओं की किस्मों (Quality) में गिरावट आने लगी, कम मजदूरी का भुगतान किया जाने लगा। फलस्वरूप सामाजिक कल्याण की उपेक्षा से समाज में विद्रोह की स्थितियाँ पैदा होने लगीं। इस प्रकार अर्थ का प्रभाव अंततः सामाजिक पतन का कारण बन जाता है।

अर्थ के प्रभाव से कैसी-कैसी विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। इस संदर्भ में विभिन्न दृष्टांत दिये जाते हैं। इस संदर्भ में ग्रीक के राजा मिडास की कहानी लालच की पराकाष्ठा को स्पष्ट करती है। ग्रीक का राजा मिडास दो बातों से अत्याधिक प्रेम करता था। एक सोने से दूसरे अपनी इकलौती पुत्री से। एक बार एक देव पुरुष ने प्रसन्न होकर उससे कहा क्या चाहता है तो मिडास ने कहां कि मुझे ऐसा 'वर' दो कि मैं जिस वस्तु को स्पर्श करूं वह सोने की हो जाये। देवता का वर प्राप्त होते ही राजा अति प्रसन्न हुआ। उसने महल की वस्तुओं को, पेड़ पौधों को, खंभों, रथ-घोड़े, सभी को स्पर्श किया वह अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था। क्योंकि स्पर्श की जाने वाली सभी वस्तुयें सोने की हो गईं। राजा को प्यास लगी। उसने पानी हाथ में लिया तो गिलास और पानी सभी सोने में परिवतर्तित हो गया। भूख लगने पर खाना भी स्पर्श से सोने का हो गया। जब राजा उदास बैठा था तभी उसकी 'बेटी' जिसे वह अत्यधिक चाहता था। वह आयी और अपने पिता की गोद में बैठ गयी। फलस्वरूप वह भी सोने की हो गई। कहानी का सार यह कि 'लालच' करना अत्यधिक खतरनाक होता है। जो अंततः व्यक्ति का सुख-चैन भी छीन लेता है। टालस्टाय ने अपनी कहानी 'मनुष्य को कितनी भूमि चाहिये' के अंतर्गत स्पष्ट किया कि एक व्यक्ति को देवता वर देता है कि वह सूर्योदय से सूर्यास्त तक जितनी भूमि पर दौड़ता चला जायेगा एवं प्रारम्भिक स्थान पर आ जायेगा। तो उतनी भूमि सोने की हो जायेगी ओर उसे भूमि का स्वामित्व प्राप्त हो जायेगा। व्यक्ति दौड़ना प्रारम्भ करता है तथा दौड़ता ही चला जाता है। भूमि

सोने की होते चली जाती है। वह प्रसन्नता में इतना मग्न रहता है कि उसके पास इतना समय ही नहीं बचता कि वह सूर्यास्त तक उस स्थान तक आ पाये। अंततः थककर गिर जाता है और उसके प्राणांत हो जाते है। इस कहानी का संदेश यह है कि आखिर व्यक्ति क्यों लालच करता है। आखिर उसे मृत्यु के पश्चात तो २-३ गज ही जमीन लगती है। अर्थात अर्थ का प्रभाव उसके सोचने- समझने की शक्ति का अंत कर देता है। लालच कभी अच्छे परिणाम नहीं देती है।

प्रायः सामान्य व्यक्ति की अर्थ के प्रति आसक्ति, भौतिक सुखों की प्राप्ति की लालसा से उत्पन्न होती है। कि उसके पास अच्छा खाना खाने को हो, अच्छा आवास हो, अच्छे वाहन हो, अच्छे वस्त्र हो, विलासिता की सभी वस्तुयें फ्रिज, टीवी, रेफ्रिजिरेटर आदि- आदि उपलब्ध हो। धीरे-धीरे भौतिक सुखों के प्रति लालच का भाव उसे अर्थ प्राप्ति के लिये प्रेरित करता है। धन प्राप्ति के लिये वह प्रारम्भ में अच्छा मार्ग चुनता है। तो बाद में बुरे मार्ग को पकड़ लेता है। उद्देश्य मात्र सुखों की प्राप्ति। साधनों की अच्छाई बुराई से कोई सरोकार नहीं होता। अंततः यह लालसा इतनी तीव्रगामी हो जाती है कि, वह विवेक शून्य हो जाता है। गीता में तो भगवान श्री कृष्ण ने स्पष्ट किया है कि काम कामीव्यक्ति को हमेशा लालच घेरे रहती है। उसे शांति तो कभी मिलती ही नहीं तथा अशांत व्यक्ति कभी भी सुखी नहीं रह पाता है। इस प्रकार अर्थ का प्रभाव व्यक्ति, समाज राष्ट्र के लिये घातक होता है। पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने अर्थ के प्रभाव को स्पष्ट करते हुये कहा कि-

'संपत्ति एवं उसके द्वारा प्राप्त होने वाले भोग-विलासों में आसक्ति पैदा हो जाये तब कहना चाहिये कि, संपत्ति का प्रभाव पैदा हो गया है। ऐसा व्यक्ति जिस पर केवल पैसे कि धुन सवार हो गई है। देश, धर्म, और जीवन के सुख सब भुला देता है। उसी प्रकार विषयासक्त व्यक्ति पौरुष हीन होकर अपने एवं दूसरों के विनाश का कारण बनता है। संपत्ति के प्रभाव के पहले प्रकार में संपत्ति साधन न रहकर साध्य बन जाती है। दूसरे प्रकार में संपत्ति धर्माचरण का साधन न रहकर साध्य का साधन बन जाती है। विषय तृष्णा की कोई सीमा न होने के कारण विषयासक्त व्यक्ति को सदैव अर्थ का अभाव ही घेरे रहता है। पौरुषहीनता के कारण अर्थोपादन की उसकी क्षमता भी निरंतर कम होती जाती है। (भारतीय अर्थ-नीति से)।

अर्थ की लालसा या लिप्सा केवल व्यक्ति या परिवार समाज तक सीमित नहीं है। बल्कि अर्थ के प्रभाव ने राष्ट्रों को भी जकड़ लिया है। इससे व्यक्ति, समाज एवं

राष्ट्र विवेक शून्य हो गये हैं। उदाहरण के लिये विदेशी मुद्रा की प्राप्ति के लिये जानवरों की खालों, गाय की आंतों, मेढ़क की टांगों से लेकर वह सभी कुछ निर्यात कर रहे हैं। जिससे हमारा निर्यात बढ़े, हमें मुद्रा प्राप्त हो। इस संदर्भ में कानून से हटकर तमाम बातें- व्यक्ति करता जा रहा है। राज्य अथवा केन्द्र सरकारों की आयों (Incomes) का ५०% से ज्यादा भाग आबकारी (Exciseduty) से प्राप्त होता है। गांधी के इस देश में हम शराबबंदी इसलिये नहीं कर पा रहे हैं। क्योंकि हमारी आय का महत्वपूर्ण भाग हमसे छूट जायेगा। शराब के कारखानों को लायसेंस हम दिये जा रहे हैं, आय प्राप्त होती रहे, लाखों परिवार बर्वाद हो। हमें कोई चिंता नहीं है। दूसरी ओर इस प्राप्त आय से हम सामाजिक कल्याण की योजनायें बना रहे हैं। कर्म द्वारा व्यक्ति धन अर्जित करें ऐसा वातावरण निर्मित न करते हुय हम दैनिक, साप्ताहिक लाटरियां निकाल रहे है। एक रात में लखपति, करोड़पति व्यक्ति बने। ऐसा दिवस्वपन हम उसे दिखाकर उसे बर्वाद किये जा रहे हैं। इस प्रकार यह समाज, इसमें रहने वाला व्यक्ति एवं राष्ट्र अर्थ प्रभाव से बंधते जा रहे हैं। देश का आर्थिक विकास (Economics Growth) हमारा एकमेव लक्ष्य बन गया है। जीवन के उच्च आदर्श, सिद्धांत, राष्ट्रवाद आदि बातें गौण हो गयी हैं। पं. दीनदयाल जी उपाध्याय ने अपनी पुस्तक भारतीय अर्थशास्त्र में इसे बहुत अच्छे तरीके से प्रस्तुत किया है- 'स्वराज के पूर्व हम प्रत्येक प्रश्न को राजनैतिक दृष्टि से सोचते थे, अब स्वतंत्रता के बाद यह सोच बदल गया है' तथा सोच का तरीका आर्थिक हो गया है। अर्थ एवं आर्थिक विकास प्राप्त करना हमारा एकमेव उद्देश्य रह गया है। आदर्श, मूल्य एवं सिद्धांत जैसी महत्वपूर्ण बातें औचित्यहीन हो गईं। अर्थ एवं अर्थोपार्जन जीवन का लक्ष्य हो गया है। जो महत्व मंदिर में स्थापित मूर्ति एवं उसकी प्राण प्रतिष्ठा का होता है वह मंदिर का नहीं। यह सत्य यदि हम जान सके तो ठीक अन्यथा सब कुछ व्यर्थ होगा तथा हम अर्थ के पीछे भागते रहेंगे।'

इस प्रकार अर्थ-का अभाव एवं अर्थ का प्रभाव दोनों ही घातक कहें जायेंगे। अर्थात चाहे व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र या विश्व व्यवस्था का प्रश्न हो। अर्थ का अभाव एवं प्रभाव दोनों प्रतिकूल परिणाम उत्पन्न करते हैं। अतः दोनों से हटकर संतुलित आर्थिक नीति होनी चाहिये। एकात्म-मानव-दर्शन में पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने स्पष्टः करते हुये कहा कि चाहे व्यक्ति हो, चाहे समाज हो, चाहे राष्ट्र हो, चाहे विश्व व्यवस्था, संतुलित नीति लाभप्रद होती है। व्यक्ति का प्रश्न है तो उसे अपनी आवश्यकता को सीमित (न्यूनतम) रखना चाहिये। आय एवं व्यय में संतुलन होने से व्यक्ति सुखी संपन्न होता है। इसलिये तो हमारे धर्म दर्शन में कहा गया है, कि 'सांई इतना दीजिये जामे कुटंब समाय' अर्थात न तो आभाव की स्थिति हो न प्रभाव की। ऐसी संतुलित

नीति निश्चित सुखकर होती है। चाणक्य ने किसी भी राष्ट्र की अर्थनीति के तहत 'कर' जो महत्वपूर्ण तत्व होता है। पर संतुलित व्याख्या करते हुये 'अर्थ नीति' को स्पष्ट किया है कि 'शासन को प्रजा से कर (धन) इस प्रकार से प्राप्त करना चाहिये (व्यक्तियों, व्यापारियों) से, जैसे भौरें फूल से रस प्राप्त करता है। अर्थात फूल की सुंदरता भी समाप्त नहीं होती तथा भौरें का कार्य भी संपन्न हो जाता है।

इस प्रकार अर्थ पुरुषार्थ के विश्लेषण के तहत यही महत्वपूर्ण माना जाता है कि अर्थ अत्यंत महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। परन्तु इसका प्रभाव ठीक नहीं कहे जा सकते हैं। अतः समष्टि-गत (समग्र) भाव यह है कि अर्थ-नीति संतुलित होनी चाहिये।

दंड नीति एवं राजनीति भी संतुलित हो- अर्थ नीति के अंतर्गत 'दण्ड नीति' एवं 'राज्य नीति' दोनों समाहित होती है। अभाव एवं प्रभाव का इन दोनों पर भी प्रभाव पड़ता है। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने इसका भी तार्किक विश्लेषण करते हुये, स्पष्टतम व्याख्या की है।

दंडनीति विश्लेषण- दंडीनीति के तहत पं. दीनदयाल उपाध्याय ने स्पष्ट करते हुये कहा कि व्यक्ति, समाज, राष्ट्र में व्यवस्था बनी रहे, अनुशासन कायम रहे। इसलिये पुलिस एवं प्रशासन जैसे विभाग बनाये गये तथा इसके तहत, 'दंड' व्यवस्था कायम की गई। इस 'दंड' के कारण समाज में चोर, डाकू, बदमाश भय खाते हैं तथा सज्जन, सद्पुरुष लोगों का जीवन भयमुक्त रहता है। 'दंड' के तहत स्पष्ट रूप से कहां गया है कि न तो 'दंड' का अभाव होना चाहिये न ही प्रभाव। यदि दंड का अभाव होगा तो समाज में भय, डर नाम की कोई बात न रहने से लूट-खसोट, आतंक, चोरी इत्यादि कुप्रवृत्तियों का जन्म होगा एवं समाज में रहना मुश्किल हो जायेगा। इसी प्रकार यदि 'दंड' का प्रभाव बढ़ जायेगा तो अनाचार, अत्याचार, बढ़ने लगेगा एवं सामान्य जनता हमेशा भयभीत बनी रहेगी। इस स्थिति में भी समाज में अव्यवस्था उत्पन्न हो जायगी। यदि इसे नियंत्रित नहीं किया गया तो क्रांति जैसी स्थितियां उत्पन्न हो जायेंगी। रूस में जब जारशाही का 'दंड प्रभाव' बढ़ा एवं निरंतर बढ़ता गया हो अंततः उसकी परिणति हिसांत्मक क्रांति के रूप में हुई। भारत में १९७५ का 'आपात काल' कमोवेश इसी नीति को स्पष्ट करता था। इसलिये किसी भी दशा में दंड का न तो अभाव होना चाहिये न प्रभाव। बल्कि 'दंड नीति' संतुलित होनी चाहिये।

राज्यनीति विश्लेषण- राज्यनीति कैसी हो एकात्म मानववाद में इसका भी विश्लेषण किया गया है। राज्य को न तो पूर्णतः स्वच्छंद होना चाहिये न ही निरंकुश। यदि राजा स्वच्छंद हो जाता है। प्रजा के कल्याण, हितों की उपेक्षा कर अपने आप में मस्त रहता है। तो ऐसे राज्य ज्यादा दिनों तक स्वतंत्र नहीं रह पाते। उन्हें गुलामी के दौर देखने पड़ते हैं। मुंशी प्रेमचंद ने 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी शीर्षक में अवध के नवाबों की इस स्वच्छंदता का बड़ा ही गंभीर विश्लेषण किया है कि अवध के नवाव शतरंज खेलने में व्यस्त रहते हैं। सेनापति, महामंत्री, गुप्तचर बार-बार जानकारी देते हैं कि शत्रुओं की सेना निरंतर नजदीक आती जा रही है। राज्य पर कब्जा हो जायेगा। प्रजा को असीमित कष्टों का सामना करना होगा। परन्तु इन तमाम बातों से बेखबर वे शतरंज के खेल में व्यस्त रहते हैं। अंततः परिणाम शत्रुओं का राज्य पर कब्जा हो जाता है। अर्थात जब राज्य का राजा कर्तव्यच्युत हो जाता है तो यही परिणाम प्राप्त होते हैं।

इसी प्रकार जब राजा निरंकुश हो जाता है। भोग विलास, लिप्सा, चाटुकारिता, बढ़ जाती है। अपने निहित स्वार्थों के लिये नये-नये कानून बनाये जाते हैं। अच्छे लोगों एवं अच्छी बातों से जब परहेज होने लगता है। तो भी भयानक परिणाम प्राप्त होते हैं। चाणक्य ने 'नंदवंश' का नाश इन्ही सब कारणों से किया था, क्योंकि राजा निरंकुश एवं अत्याचारी हो गया था। वह राज्य एवं राष्ट्रधर्म को भूल गया था। इसलिये चाणक्य ने क्रांति के बीज बोकर चंद्रगुप्त को राजा बनाया। इस प्रकार राज्य को भी स्वच्छंदता एवं निरंकुशता से बचते हुये, संतुलित मार्ग- अपनाते हुये, राज्यधर्म का पालन करना चाहिये।

इस प्रकार अर्थ-पुरुषार्थ, दंडनीति, राज्यनीति इन सभी के प्रभाव एवं इनके परिणामों से समाज में अव्यवस्था या प्रतिकूल स्थितियों का निर्माण न हो। इसलिये इन्हें 'धर्म' द्वारा नियंत्रित किया गया है। अर्थात अर्थ-प्रभाव को धर्म प्रभाव नियंत्रित करता है।

व्यक्ति एवं धर्म पुरुषार्थ- 'धर्म' को हमारे दर्शन में एक महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है तथा काम एवं अर्थ की तुलना में इसे ज्यादा श्रेष्ठ कहा गया है। दोनों पुरुषार्थ 'धर्म' द्वारा नियंत्रित होते हैं। यदि 'धर्म' का नियंत्रण काम एवं अर्थ से हट जाता है। तो ऐसी कामनायें, इच्छायें, ऐसा व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की दृष्टि से अहितकर माना जाता है। इसी प्रकार ऐसा अर्थ- एवं अर्थ नीति समाज दृष्टि से कष्टप्रद हो जाती है। इसलिये हमारे यहां 'धर्म' को श्रेष्ठतम पुरुषार्थ माना जाता है। वैसे तो 'धर्म' भारत

वर्ष एवं हिन्दू समाज का पर्याय माना जाता है। हमेशा हमने धर्म को महत्व दिया है। परन्तु आज के संदर्भ में तो 'धर्म' का और भी ज्यादा महत्व हो गया है तथा इस पर व्यापक बहस चल रही है। इस दृष्टिकोण से यह आवश्यक हो जाता है कि 'धर्म' का विस्तृत एवं स्पष्टता से विश्लेषण किया जाय। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानव दर्शन में धर्म को न केवल स्पष्टता से पारिभाषित किया बल्कि अंग्रेजों द्वारा उसके उत्पन्न किये गये संकुचित अनुवाद पर टिप्पणी की तथा स्पष्ट किया कि जो धर्म है वह एक सीमा में बंधा नहीं है। बल्कि उसका सम्बन्ध तो सम्पूर्ण विश्व समेत, संपूर्ण सृष्टि से है। इसलिये धर्म की स्पष्ट एवं विस्तृत विवेचना आवश्यक हो जाती है।

धर्म का अभिप्राय- धर्म क्या है, धर्म का क्षेत्र क्या है, धर्म के सिद्धांत क्या है, क्या वे परिवर्तनीय है या अपरिवर्तनीय आदि-आदि अनेकानेक विचार उत्पन्न होते हैं। इन बातों को जानने के पूर्व धर्म को स्पष्टता से पारिभाषित करना आवश्यक है। 'धर्म' के संदर्भ में अंग्रेजों द्वारा दिया गया अनुवाद ही भ्रम का प्रमुख कारण है। इस अनुवाद ने धर्म के वास्तविक स्वरूप को संकीर्ण कर दिया है। अंग्रेजी में धर्म का अनुवाद रिलीजन (Religion) के रूप में किया गया। जबकि रिलीजन, सही अनुवाद नहीं कहा जायेगा। रिलीजन का मतलब 'पंथ', 'मजहब' या 'उपासना पद्धति' माना जाता है।

अर्थात किसी समुदाय द्वारा अपने रीति रिवाजों के तहत किसी उपासना पद्धति को अपनाना तथा उसके अनुरूप कार्य करना ही रिलीजन कहा जाता है। Religion शब्द का अर्थ अंग्रेजी शब्द कोष में स्पष्ट रूप से दिया गया है कि 'Religion means a system of faith and worship' (अर्थात एक विशिष्ट प्रकार की श्रद्धा और उपासना की पद्धति को रिलीजन कहा जाता है)। उपासना पद्धति श्रद्धा का विषय होगी। परन्तु इसमें कोई विचार नहीं होगा, कोई तत्व ज्ञान नहीं होगा। इसमें मात्र अंधी श्रृद्धा होती है। इस प्रकार की उपासना पद्धतियां किसी व्यक्ति विशेष, किसी साधु महात्मा द्वारा बनायी जाती हैं। इनका पालन करते हुये इस समुदाय, वर्ग का व्यक्ति ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। ऐसे विभिन्न कालों में विभिन्न महत्वपूर्ण व्यक्ति हुये जिन्होंने विभिन्न उपासना पद्धतियों को प्रतिपादित किया। जैसे हिन्दुओं में भगवान राम, श्रीकृष्ण, महावीर, नानक, बुद्ध हुये। मुसलमानों में मोहम्मद साहब, ईसाईयों में ईसा मसीह आदि। इस प्रकार हिन्दू की अपनी अलग उपासना पद्धति है, मुसलमानों की अलग तो ईसाइयों की अलग। परन्तु शायद तीनों या सभी का उद्देश्य एक है। वह है? परम-परमेश्वर को प्राप्त करना। इसे धर्म नहीं कहा जा सकता है क्योंकि धर्म-मात्र

उपासना पद्धति तक सीमित नहीं है। इस प्रकार रिलीजन, धर्म का समानार्थी शब्द तो स्वीकार किया जा सकता है। परन्तु यह 'धर्म' के विस्तृत्त अर्थ को स्पष्ट नहीं करता। रिलीजन धर्म का संकुचित (संकीर्ण) अर्थ कहा जायेगा। रिलीजन शब्द से केवल एक ही उपासना पद्धति का बोध होता है। जबकि हमारे धर्म में अनेक उपासना पद्धतियां है। यहां यह भी स्पष्ट करना जरूरी है कि श्रद्धा या उपासना पद्धति तक ही धर्म सीमित नहीं है, बल्कि इसका दायरा तो और भी ज्यादा विस्तृत है। उपासना पद्धति तो धर्म का एक अंगमात्र है। 'धर्म' शब्द के संस्कृत शब्द कोष में अनेक अर्थ है। यह 'धृ' धातु से बना है। इसका मूल अर्थ 'धारणात् धर्म इत्याहू:' धर्मो धारते प्रजा:। अर्थात धर्म का सम्बन्ध धारणाओं से होता है। जो समाज द्वारा धारण किया जाये वही धर्म है। इस प्रकार धर्म अत्याधिक व्यापक या विस्तृत है। जो व्यक्ति धर्म, परिवार-धर्म, समाज-धर्म राष्ट्र-धर्म, सृष्टि-धर्म के रूप में स्पष्ट किया जाता है। इस प्रकार रिलीजन धर्म को अत्यधिक संकुचित या सीमित कर देता है।

धर्म, मंदिर, मस्जिद, चर्च-तक सीमित नहीं- पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने एकात्म मानव दर्शन में बहुत स्पष्टता से कहा कि, धर्म को किसी हिन्दू के मंदिर, किसी मुसलमान की मस्जिद, किसी ईसाई के चर्च तक, सीमित रखना उचित नहीं होगा। मंदिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारे उपासना पद्धति के स्थान है। इसलिये इन्हें धर्म का अंग तो कहा जा सकता है। परन्तु इन्हें धर्म कहना पूर्णत: गलत है। उन्होंने कहा कि मंदिर-मस्जिद-चर्च गुरुद्वारे लोगों में धार्मिक शिक्षा देने के माध्यम हो सकते हैं। परन्तु जिस प्रकार विद्यालय को विद्या नहीं कहा जाता, उसी प्रकार मंदिर- मस्जिद को 'धर्म' भी नहीं कहा जा सकता है। हो सकता है कि कोई बालक प्रतिदिन स्कूल या कालेज तो जाता है या ऐसे हजारों लाखों बालक-बालिकायें स्कूल कालेज जाती हैं। परन्तु इसके बाद भी वे अपढ़ (निरक्षर) रह जाती हैं। इसी प्रकार कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह प्रतिदिन मंदिर या मस्जिद या चर्च तो जाता है फिर भी कोई जरूरी नहीं है कि वह भगवान को माने ही, वह नास्तिक भी हो सकता है। इस प्रकार मंदिर-मस्जिद चर्च या गुरुद्वारे में जाना रिलीजन तो है परन्तु इसी रिलीजन को भ्रमवश या अज्ञानता से लोगों ने धर्म मान लिया। इस प्रकार पाश्चात्य अनुवाद ने धर्म का स्वरूप ही बिगाड़ दिया।

इस प्रकार रिलीजन शब्द ने वो सब दोष हमारे धर्म में उत्पन्न कर दिये जो पश्चिम में उनके रिलीजन शब्द में व्याप्त थे। उदाहरण के लिये चूंकि पाश्चात्य (पश्चिम) संस्कृति का आधार ही संघर्ष है। इसलिये रिलीजन के नाम पर भी वहाँ अत्याचार, अनाचार, संघर्ष होते रहते हैं। चूंकि हमने रिलीजन को धर्म मान लिया। इसलिये हमने यह भी मान लिया कि धर्म के नाम पर भी अत्याचार, संघर्ष, अन्याय हो सकता है। परन्तु रिलीजन की लड़ाई दूसरी है, तो धर्म की लड़ाई दूसरी। रिलीजन मत, पंथ, मजहब को स्पष्ट करता है जो काफी संकुचित क्षेत्र है। जबकि धर्म का स्वरूप व्यापक है। जो व्यक्ति से जब हटता है तो समाज धर्म कहलाता है, समाज से बढ़कर राष्ट्र धर्म कहलाता है, राष्ट्र से बढ़ने पर विश्व धर्म, उससे आगे बढ़ने पर सृष्टि धर्म तथा उससे भी आगे बढ़ने पर जब आत्मा (जीव) का परमात्मा से मिलन हो जाता है तो इसे मोक्ष या परम-मोक्ष कहा जाता है। अर्थात जीव या आत्मा, जन्म मरण से मुक्त होकर उस परमेश्वर रूपी सागर में विलीन हो जाता है।

धर्म ईश्वर से भी श्रेष्ठ है ? रिलीजन (Religion) को पंथ या मजहब कहा गया है तथा किसी भी मजहब का मुख्य उद्देश्य अपनी उपासना पद्धति, श्रद्धा एवं विश्वास के आधार पर उस परमेश्वर को प्राप्त करना है। इस प्रकार रिलीजन में उस परमेश्वर की प्राप्ति श्रेष्टतम मानी गई है तथा परमेश्वर, अल्लाह या ईसा ही सर्वेश्रेष्ट है। परन्तु धर्म इस बात को स्वीकार नहीं करता है। धर्म का सोच तो और ज्यादा श्रेष्टतम है। धर्म, ईश्वर, अल्लाह या ईसा की श्रेष्ठता को चुनौती तो नहीं देता, उसे स्वीकार करता है। परन्तु जो विचार की भिन्नता धर्म उत्पन्न करता है, वह ज्यादा महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिये धर्म में कहा गया है कि, आप ईश्वर के अस्तित्व को मानें या न मानें ? स्वीकार करें या न करें ? परन्तु अपने जीवन को चलाने के लिये आपको धर्म के अधिकांश भाग को तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। धर्म ईश्वर को मानने न मानने की स्वतंत्रता तो व्यक्ति को देता है। परन्तु चोरी, डकैती, लूट, हत्या, द्वेश, क्रोध, ईर्ष्या, लालच, मोह, कपट, किसी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के हनन, अनाचार, अत्याचार आदि की स्वीकृति धर्म कभी नहीं देता। आप पूजा, पाठ, जप, अनुष्ठान, उपासना, व्रत, करें या न करें, पाप-पुण्य को मानें न मानें, परन्तु सामाजिक जीवन के नियमों, कानूनों, को आवश्यक रूप से मानना ही पड़ेगा। इस प्रकार हमारे यहाँ (हिन्दु धर्म) में परमेश्वर से ऊपर 'धर्म' को माना गया है। इसलिये ईश्वर के रूप में भगवान राम, श्रीकृष्ण आदि को भी धर्म की मर्यादाओं का पालन करना पड़ा और उन्होंने किया। धर्म, ईश्वर

की रक्षा के लिये नही, परन्तु ईश्वर ने धर्म की रक्षा के लिये अवतार लिया एवं धर्म को स्थापित किया तभी तो श्रीमद भगवत् गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुये कहा कि -

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लार्निभवति भारत।

अभ्युत्थानम् धर्मस्य, तदात्मानम् सुजान्यहम्।।

परित्राणाम् च साधु नाम्, विनाशाय च दुष्कृताम।

धर्म संस्थापनार्थ शंभवामि युगे-युगे।।

अर्थात हे, अर्जुन जब-जब इस भारत भूमि पर धर्म की क्षति होगी। अनाचार, अत्याचार, पापाचार बढ़ेगा। जब-जब अधर्म का आधार बढ़ेगा। तब-तब मैं इस भारत भूमि पर जन्म लूँगा एवं पापियों का विनाश कर, 'धर्म' की स्थापना करुंगा। इस प्रकार हमारे दर्शन में धर्म को ईश्वर से भी ज्यादा श्रेष्ट माना गया है अर्थात ईश्वर की प्रतिष्ठा के लिये धर्म नहीं बल्कि धर्म की प्रतिष्ठा के लिये ईश्वर जन्म लेते हैं।

धर्म का क्षेत्र अत्याधिक विस्तृत है - धर्म का हमारे यहाँ काफी विस्तृत आधार माना गया है तथा हमने व्यक्ति से लेकर सृष्टि तक का धर्म निर्धारित किया है। इसके अलावा इन धर्मों के पालन की अनिवार्यता भी कही गई है। जैसे व्यक्ति धर्म के तहत् माता का धर्म, पिता का धर्म, पुत्र का धर्म, भाई का धर्म, बहन का धर्म, पत्नी का धर्म, चाचा का धर्म, चाची का धर्म, नाना का धर्म, नानी का धर्म आदि आदि। इसी प्रकार अग्नि का धर्म, पानी का धर्म, वायु का धर्म। सड़क का धर्म, यातायात धर्म, काम धर्म, अर्थधर्म, व्यापार धर्म। व्यक्ति धर्म, परिवार धर्म, समाज धर्म, राज्य धर्म, राष्ट्र धर्म, विश्व धर्म, पर्यावरण धर्म, जीवजन्तु धर्म, सृष्टि धर्म एवं परमेश्वर धर्म। इस प्रकार हमने प्रत्येक क्षेत्र में धर्म के पालन की अनिवार्यता की तथा स्पष्ट रूप से कहाँ कि यदि धर्म का पालन विधिवत् होगा तो सभी का कल्याण होगा तथा जिस दिन हम धर्म मार्ग से अलग हो जायेंगे। इस धर्म हानि से सब की हानि होगी। इस धर्म के नियमों का पालन प्रत्येक के लिये आवश्यक एवं अनिवार्य कहा गया है। उदाहरण के लिये शरीर का स्वस्थ्य एवं प्रसन्न रहना तथा गतिमान रहना प्रत्येक व्यक्ति के लिये अनिवार्य माना गया है। परन्तु शरीर के ठीक रहने के लिये भोजन को अनिवार्य कहा गया है। यदि आपको जीवित रहना है तो प्रत्येक व्यक्ति एवं जीव-जन्तु के लिये पर्याप्त मात्रा में भोजन आवश्यक है। अर्थात भोजन, शरीर को जीवित रखने के लिये अनिवार्य है। इसे हमने

धर्म कहा। परन्तु यहाँ यह भी कहा कि यह बात हमेशा सही नहीं कही जायेगी। यदि शरीर अस्वस्थ्य हो जाये, हम बीमार पड़ जायें तो नियमानुसार तो हमे शरीर को जीवित रखने के लिये भोजन करना चाहिये। परन्तु नही, बीमार होने पर भोजन न करना या टाइफाइड होने पर उपवास करना ही शरीर धर्म कहा जायेगा। इस प्रकार धर्म का पालन शरीर को बनाये रखता है। अब हम परिवार का उदाहरण ही ले, धर्म का अनुपालन परिवार को चलाने में कितना सहायक होता है। परिवार में मानलो दस सदस्य है तो कोई आवश्यक नही है कि सभी की आदतों, रुचियां, प्रकृति, समान ही हो। परिवारों में प्राय: कोई लिखित कानून भी नही होता कि पिता ऐसा करेगा, पुत्र ऐसा करेगा, बहिन ऐसा करेगी? परन्तु प्राय: सभी मेल जोल से चलते है। इसे परिवार धर्म कहा जाता है। इसे मानने वाले परिवार स्वस्थ्य एवं प्रसन्न रहते हैं, न मानने वाले परेशान। बाबा तुलसीदास ने रामायण में इसे अन्य शब्दों में व्यक्त किया है कि -

जहाँ सुमति तहाँ संपत्ति नाना।

जहाँ कुमति तहाँ विपत्ति विधाना।।

व्यक्ति एवं समाज धर्म - इसी प्रकार समाज का भी अपना धर्म होता है। जिसे समाज धर्म कहा जाता है। अर्थात यह समाज, जिसमें व्यक्ति समूह में रहते है। जिनकी अपनी स्वयं की आवश्यकतायें है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति किसी एक व्यक्ति द्वारा सम्भव नही है। व्यक्ति अपनी योग्यता अनुसार या कर्म के अनुसार कार्य सम्पादित करते है। एक दूसरे की मांगों की पूर्ति करते है। इससे समाज संचालित होता है। इसे समाज धर्म कहा जाता है। उदाहरण के लिये किसान अपने कृषि कर्म के द्वारा अनाज उत्पन्न करता है, तो इससे अन्य लोगों की खाद्यान सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति होती है। तो इस किसान के अनाज का क्रय-विक्रय व्यापारी द्वारा किया जाता है। कपड़ों (वस्त्रों) की आवश्यकता की पूर्ति जुलाहा करता है तो घरों में लगने वाली खिड़की, दरवाजे, हल, बैलगाड़ी जैसे कार्य बढ़ई द्वारा किये जाते हैं। कुल्हाड़ी, घन, हलों में लगने वाली लोहे की फाल लुहार तैयार करता है, तो बच्चों को शिक्षकीय कार्य शिक्षक द्वारा दिया जाता है। चौधरी, चर्म कार्य के द्वारा जूते चप्पल इत्यादि प्रदान करता है, तो लोगों को स्वास्थ्य सम्बन्धी लाभ चिकित्सक, अथवा वैद्य उपलब्ध कराते है। घड़े, मटके, सुराही, ईंट, खप्पर कुम्हार द्वारा उपलब्ध कराये जाते हैं, तो कुछ व्यक्ति सैनिक सम्बन्धी कार्य कर सुरक्षा प्रदान करते हैं। इस प्रकार समाज एक दूसरे के सहयोग एवं समन्वय से संचालित होता है। इसे पं. दीनदयाल उपाध्याय ने समाज धर्म का नाम दिया है।

इस प्रकार इस समाज व्यवस्था के कुछ अपने नियम है, अपने कायदे कानून है। जिनका पालन अनिवार्य होता है ताकि समाज सामान्य गति से आगे बढ़ता रहे। उसमें कोई विकृति उत्पन्न न होगी। जो इन नियमों को मानता है, तो समाज के अन्दर उसे सहयोग एवं पुरस्कार मिलता है। जो नियमों की अवहेलना करता है। उसे सजा देने के प्रावधान भी रहते हैं। इस प्रकार समाज के इन नियम कायदो या धारणाओं को समाज धर्म कहा जाता है।

व्यक्ति एवं राष्ट्र धर्म - पं. दीनदयाल उपाध्याय ने कहा कि राष्ट्र का भी अपना धर्म होता है। जिसे राष्ट्र धर्म कहा जाता है। 'राष्ट्र' वास्तव में उसे कहा जाता है जहाँ विभिन्न मजहबों, पंथो, के व्यक्ति निवास करते हैं। उसकी प्रवृत्तियाँ, सोच, दर्शन एक दूसरे से भिन्न होता है। परन्तु इसके बाद भी वे उस राष्ट्र की मिट्टी को, उस देश की भूमि को मातृ भाव से देखते हैं तथा उसे आदर्श मानते हो तो उसे मातृभूमि या राष्ट्र कहा जाता है। ऐसी राष्ट्र भूमि का भी अपना स्वधर्म होता है। जिसे राष्ट्र धर्म या देश प्रेम कहा जाता है। इस राष्ट्र धर्म के तहत् यदि उस राष्ट्र (मातृ भूमि) का अपना स्वयं का धर्म होता है कि वह भूमि अपने ऊपर निवास करने वाले अपने पुत्र-पुत्रियों को जीवन दे, अन्न दे, जल दे, उपज दे। तो इसी प्रकार उस भूमि के निवासियों का धर्म होता है कि, वे उस मातृभूमि की सुरक्षा का संकल्प लें। यदि ऐसा होता है तो दोनों का धर्म सुरक्षित रहता हे। भारत वर्ष के संदर्भ में कहा जा सकता है कि यह शस्य श्यामला भूमि मानवीय एवं प्राकृतिक साधनों से परिपूर्ण है। यहाँ नदियों, पेड-पौधे, पहाड़, खनिज सम्पदायें, वन, उर्वरा भूमि है। जो देश वासियों का पुत्रवत् पालन करती है। तो दूसरी ओर देश की आजादी से आज तक जब-जब इस भारत भूमि पर संकट उत्पन्न हुये है, इस धरा पर रहने वालों ने भी इसके लिये प्राणों का उत्कर्ष कर अपनी उत्कृष्ट मातृ भक्ति का उदाहरण प्रस्तुत किया है। स्वतंत्रता के पूर्व वंदेमातरम् कहते हुये अमर शहीदों द्वारा फांसी के फंदो को स्वीकार करना, करो या मरो का नारा, स्वतंत्रता हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार हैं, तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा आदि बाते राष्ट्र धर्म की बात स्पष्ट करती है। तो स्वतंत्रता के पश्चात 'एक देश में दो निशान, दो विधान, दो प्रधान, कच्छ आंदोलन, धारा ३७० की समाप्ति एवं काश्मीर को विशेष रियायत का विरोध, दादर नगर हवेली का मुक्ति संग्राम आंदोलन, भाव नगर सत्याग्रह, असम बचाओं आंदोलन, कन्या कुमारी से काश्मीर के लाल चौक तक एकता यात्रा, अयोध्या का राम मंदिर निर्माण आंदोलन तथा कार सेवको का बलिदान, ६

दिसम्बर को बावरी ढांचे का धवस्त करना ऐसे प्रसंग थे जो प्रबल राष्ट्र धर्म के उदाहरण हैं। इन आंदोलनों का ध्येय इस देश की अखंडता को अक्षुण्ण रखना रहा है इसे राष्ट्र धर्म या समिष्ट धर्म भी कहा जा सकता है। जितना प्रबल भाव, जिस देश में ऐसा रहता है। वह देश उतना मजबूत, उतना ताकतवर माना जाता है।

व्यक्ति एवं विश्वधर्म -इसी प्रकार हमने विश्व धर्म को भी परिभाषित किया है और स्पष्ट किया है कि यह सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है। अतः एक दूसरे की सीमाओं को स्पर्श किये बिना, आपसी प्रेम एवं सद्भाव बनाये रखना, परस्पर एक दूसरे को सहयोग देना ताकि विश्व में शांति एवं सौहार्द बना रहे, यही विश्व धर्म है। यदि इस धर्म की उपेक्षा की जायेंगी तो आपसी वैमनस्यता, बैर, ईर्ष्या का भाव बढ़ने से जहाँ व्यापक कटुता बढ़ेगी, वहीं युद्ध के खतरे बढने से जन जीवन को खतरा उत्पन्न हो जायेगा। (वर्तमान समय में तो मानव ने इतने अस्त्र शस्त्र विकसित कर लिये है कि यदि युद्ध की संभावनाये उत्पन्न होती है तो मानव जाति की समाप्ति ही सम्भव है)। अतः विश्व धर्म यह कहता है कि प्रत्येक राष्ट्र **'वसुदेव कुटुम्बकम्'** के श्लोक के अनुरूप कार्य करे।

इसी प्रकार पं. दीन दयाल उपाध्याय ने प्रकृति धर्म, पर्यावरण धर्म समेत सृष्टि धर्म की व्याख्या की है। इस प्रकार 'धर्म' का स्वरूप, उसका क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है। निम्नांकित श्लोक 'धर्म' के व्यापार स्वरूप को बड़े सरल शब्दों में स्पष्ट करता है-

'यतोऽभ्युदयनिः श्रेयस् सिद्धिः स धर्मः।

अर्थात जिसके पालन मात्र से समाज का उत्कर्ष होता है, जिसके पालन से व्यक्ति उन्नति करता है, जिसके पालन से व्यक्ति चरम उत्कर्ष याने मोक्ष को प्राप्त करता है वही 'धर्म' है।

नियमों का आधार धर्म सम्मत होना चाहिए - 'धर्म' अत्यधिक व्यापक होता है तथा उन नियमों के पालन के पश्चात, नियमों के क्रियान्वयन का स्वरूप बदल जाता है। अतः उसके अनुरूप हमें स्वयं को परिवर्तित कर देना चाहिये। यदि हम ऐसा नही कर पाते तो व्यापक-व्यावहारिक समस्याये उत्पन्न होती है। इसके कारण व्यक्ति स्वयं भी परेशान होता है। तो साथ-साथ परिवार के व्यक्ति एवं मित्र भी परेशान होते हैं। पं.दीन दयाल उपाध्याय जी ने बड़े ही सरल शब्दों में स्पष्ट करते हुये कहा कि कुछ

नियम अल्प कालीन (थोड़े समय) होते है। तो कुछ नियम दीर्घकालीन (लंबे समय) होते है। समय की समाप्ति नियम को भी समाप्त कर देती है। अतः हमें अपना व्यवहार भी उसके अनुरूप समाप्त कर देना चाहिये। उदाहरण के लिये किसी मंच पर भाषण हो रहा है। तो वक्ता एंव श्रोता दोनों के अपने-अपने धर्म होते हैं। इसे सभा का धर्म कहा जा सकता है। अब वक्ता का धर्म है कि वह सम्बन्धित विषय पर बोले एवं श्रोताओं का धर्म है कि वे उसे शांतिपूर्वक सुने। यदि ऐसा होता है, तो माना जायेगा कि सभा धर्म का पालन विधिवत् हुआ। इससे वक्ता एवं श्रोता दोनों को आनंद प्राप्त होगा। परन्तु यहाँ विशेष उल्लेखनीय बात यह रहेगी कि सभा की समाप्ति के बाद दोनों का व्यवहार सामान्य हो जाना चाहिये। यदि ऐसा नही होता तो क्या होगा ? इससे व्यापक समस्या उत्पन्न हो जायेगी। मान लो वक्ता महोदय अपने घर जाकर भी भाषण जारी रखते हैं या श्रोता महोदय घर पर भी मौन रहते हैं तो घर वाले सोचेंगे कि कुछ गड़बड़ हो गई है। कहीं भूत प्रेत तो नही लग गये या तबियत तो खराब नही हो गई। फलस्वरूप ओझा-डाक्टर को बुलाना पड़ेगा। कहने का मतलब सभा धर्म की समाप्ति, सभा विसर्जन के साथ हो जाती है। इसी प्रकार किसी कवि द्वारा मंच में कविता का गायन, शिक्षक का विद्यालय में शिक्षकीय कार्य, वकील द्वारा अदालत में बहस आदि ऐसे अनेकानेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जो उस स्थान विशेष के पश्चात समाप्त हो जाते हैं। अतः व्यक्ति का व्यवहार भी उसी के अनुसार बदल जाना चाहिये। इस प्रकार इन नियमों को धर्म कहा जाता है जो मनमाने नहीं होते बल्कि उनमें सत्ता की धारणा होती है।

मानलो हम किसी सहकारी समिति या कंपनी का निर्माण करते हैं तो हमे इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिये कि सहकारी समिति अथवा कंपनी में जो नियम उपनियम बने थे संविधान के अनुकूल होना चाहिये। इस प्रकार देश में बनने वाले या बनाये जाने वाले नियम उपनियम अधिनियम, संविधान को दृष्टिगत रखते हुये बनाये जाने चाहिये। प्रायः इस दशा में यह भी प्रश्न उत्पन्न होता है कि, क्या संविधान भी किन्हीं नियमों पर आधारित होता है? अथवा संविधान क्या मनमानी का प्रतीक होता है? आदि-आदि अनेकानेक प्रश्न उत्पन्न होते है। यदि इस प्रश्न पर स्पष्टता से, गंभीरता से विचार विनिमय किया जाय तो स्पष्ट होता है कि, संविधान को भी कुछ आधारभूत प्राकृतिक नियमों का अनुपालन करना पड़ता है। संविधान, राष्ट्र की धारणा के लिये होतां है। यदि संविधान, राष्ट्र की धारणाओं की अनुकूलता के स्थान पर प्रतिकूल हुआ तो वह ठीक नही होगा। उसमें परिवर्तन करना होगा। उदाहरण के लिये देश की

आजादी के बाद जब देश की विभिन्न रियासतो का प्रश्न उत्पन्न हुआ तो देश के प्रथम गृहमंत्री श्री वल्लभ भाई पटेल ने सभी रियासतों का विलीनीकरण कर देश की अखंडता को मजबूती दी। इस बात का देश के लोगों ने स्वागत किया एवं अपना समर्थन व्यक्त किया। परन्तु देश के प्रधान मंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने काश्मीर को 'विशेष राज्य' का दर्जा दिया एवं इस मसले को राष्ट्र संघ में ले गये। इस प्रकार काश्मीर में धारा ३७० का प्रावधान लागू किया गया। धारा ३७० को संविधान में परिवर्तन करते हुये, लगाने के बाद भी चूंकि देश की धारणाओं, राष्ट्र की अवधारणों, राष्ट्रवासियों की इच्छाओं के विपरीत था। इसलिये इसे देश ने स्वीकार नही किया। इसलिये आज भी इस मसले में परिवर्तन की बात की जाती है। क्योंकि यह देश की धारणाओं, इच्छाओं के प्रतिकूल है।

प्रायः एक प्रश्न और भी संविधान के संदर्भ में उठाया जाता है कि संविधान में संशोधन अथवा परिवर्तन दो तिहाई बहुमत के आधार पर हो जाता है। तो क्या बहुमत सब कुछ कर सकता है? क्या देश की जनता सब कुछ कर सकती है ? हमारे देश में संसद के संदर्भ में, जनता के संदर्भ में कहा जाता है कि वह सब कुछ नही कर सकती है। परन्तु इग्लैंड की संसद के संदर्भ में कहा जाता है कि वह 'स्त्री को पुरुष एवं पुरुष को स्त्री' बनाने के अतिरिक्त सब कुछ कर सकती है। परन्तु यहां यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या इंग्लैंड की संसद देश के प्रत्येक व्यक्ति को शीर्षासन करने का आदेश दे सकती है? क्या इंग्लैंड की संसद देश के व्यक्तियों को लूट खसोट का आदेश दे सकती है? क्या इंग्लैंड की संसद बॉये चलने के स्थान पर दॉये चलने का आदेश दे सकती है? क्या इंग्लैंड की संसद देश के नौजवानों को आदेश दे सकती है कि वे अपने माता-पिता का सम्मान करना बंद कर दें आदि-आदि प्रश्न उत्पन्न होते है ? तो इनका उत्तर है कि संसद सर्व प्रभुता सम्पन्न होने के बाद भी ऐसा नही कर सकती है। सर्वसम्पन्न होने के बाद भी ऐसा कोई आदेश नही दें सकती है। इंग्लैंड में परम्पराओं को व्यापक महत्व दिया जाता है। फिर प्रश्न उठता है कि क्या वहाँ नियम नहीं बदले, परम्परायें नहीं बदली? तो इसका उत्तर है कि नियम भी परिवर्तित किये गये एवं परम्परायें भी बदली गईं। जो देश की परम्पराओं के अनुकूल रहा, उसे स्वीकार किया गया। जो देश की परम्पराओं के प्रतिकूल रहा, उसे छोड़ दिया गया। जो देश की प्रगति में सहायक थी, उसे स्वीकार किया गया। उसे आत्मसात किया गया। जो देश की प्रगति में बाधक बना। उसे खत्म कर दिया गया। इस प्रकार परम्परायें देश के

धर्म के विपरीत नही हो सकती है ? संविधान धर्मानुसार होता है या धर्म सम्मत होता है। क्योंकि धर्म धारणाओं से बनता है। इसलिये हमारे देश में धर्म को प्रमुखता अथवा प्रधानता दी जाती है।

'धर्म' अल्पमत के बाद भी श्रेष्ठतम होता है - 'धर्म' की प्रमुखता अथवा श्रेष्ठता के कारण, हमने आदर्श (Ideal) राज्य को 'धर्म राज्य' ही कहकर संबोधित किया। प्राचीन काल में राजा जो राज्य का प्रमुख होता था धर्म की रक्षा करने हेतु संकल्पित होता था। राजा धर्म के ऊपर नही माना जाता था। इस संदर्भ में उस समय के अभिषेक (राज्यारोहण) के समय का दृष्टांत दिया जाता था कि जब किसी राज्य में किसी राजा का अभिषेक होता था तो राजा खड़ा होकर कहता था कि, 'अदण्ड्योऽस्मि' ! 'अदण्ड्योऽस्मि'!! 'अदण्ड्योऽस्मि'!!! अर्थात मुझे कोई भी दंड (सजा) नही दे सकता। मुझे कोई भी दंड नहीं दे सकता। मुझे कोई भी दंड नही दे सकता है। इस प्रकार राजा कहता था कि मैं, सर्वशक्तिमान हूं, सर्व प्रभुता सम्पन्न हूं, सर्वोपरी हूं। मैं जो चाहूंगा करुंगा। मुझे कोई कुछ नही कह सकता। न मुझे कोई कुछ कर सकता है। राजा के विचार को सुनकर, राजपुरोहित अथवा पंडित हाथ में एक पलाश की लकड़ी लेकर राजा की पीठ पर मारता जाता था तथा उच्चारण करता जाता था कि, 'धर्मदण्डोऽस्ति्' ! 'धर्मदण्डोऽस्ति्' !! 'धर्मदण्डोऽस्ति्' !!!

इस प्रकार राजपुरोहित कहता था कि नही राजा तुम्हारा यह विचार गलत है कि, राजा को कोई दंड नहीं दे सकता। तुम्हारे ऊपर भी व्यवस्था है। वह है धर्म की व्यवस्था अर्थात धर्म के दंड द्वारा तुझे दंडित किया जा सकता है। इस प्रकार राजा बेदी की परिक्रमा करते जाते थे तथा पुरोहित उसे पलास से मारते जाते थे। इस प्रकार तीन परिक्रमाओं के बाद यह विधान समाप्त होता था तथा राजा को पता चल जाता था कि धर्म से उसे दंडित किया जा सकता था। अर्थात धर्म ही श्रेष्ठतम एवं सर्वोपरि है।

इसी प्रकार पं. दीनदयाल जी उपाध्याय ने यह भी स्पष्ट किया कि, धर्म भले ही अल्पमत में हो, परन्तु वह हमेशा बहुमत से ज्यादा श्रेष्ठतम होता है। इस संदर्भ में हिटलर का उदाहरण दिया जाता है कि जब मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी पर हमला किया एवं उस पर पूर्ण अधिकार कर लिया। इसके बाद जब मित्र राष्ट्र अपनी शर्तों को सुना रहा थे तो जर्मनी का प्रत्येक व्यक्ति सिर झुका कर, उन शर्तों को सुन रहा था तथा स्वीकार कर रहा था। तब एक व्यक्ति 'हर हिटलर' इन शर्तों को सुन तो रहा था।

परन्तु वह इसे स्वीकार नही कर रहा था। तब उस अकेले व्यक्ति ने संकल्प लिया कि वह अपने राष्ट्र को गुलामी से मुक्त करायेगा। इस प्रकार हर हिटलर ने आखिर जर्मनी को स्वतंत्र करा ही दिया। अब सोचा जाऐ कि, मानलों चूंकि जर्मनी का प्रत्येक व्यक्ति जो मित्र राष्ट्रों की शर्तों को स्वीकार कर चुका था। अतः बहुमत के कारण हिटलर की बात का कोई औचित्य नहीं था। परन्तु नही ? हिटलर ने राष्ट्र धर्म की शपथ ली थी कि वह राष्ट्र को गुलामी से मुक्त करायेगा। इस प्रकार राष्ट्र धर्म का सोच, अन्य सोच से ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। राष्ट्र धर्म का अधिकार, अन्य अधिकारों से ज्यादा होता है तथा अल्पमत, धर्म भी बहुमत से हमेशा ही श्रेष्ठतम होता है। हमारे देश में जब मुसलमानों का राज्य था तो वैसे तो अधिकांश लोगों ने उनकी सत्ता को स्वीकार कर लिया था। परन्तु महाराणा प्रताप, शिवाजी, आदि राजाओं ने अल्पमत में होते हुये भी स्वतंत्रता के लिये संघर्ष का निर्णय लिया। परन्तु मुगलों की सत्ता को स्वीकार नहीं किया। अंग्रेजो ने भारत पर अधिकार किया तो उनके इस अधिकार के लिये 'कुछ' व्यक्तियों ने उन्हें चुनौती दी तथा स्वतंत्रता के लिये लड़े भी तथा बलिदान भी दिया। चाहे वह लड़ाई 'स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' के रूप में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने लडी हो। चाहें 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा के रूप' में नेता जी सुभाष चंद बोस ने लड़ी हो। चाहे 'करो या मरो' के रूप में गांधी जी ने लड़ी थी। चाहे 'वंदेमातरम्' कहते हुये शहीदे आजम भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव, राम प्रसाद विस्मिल, अशफाक उल्ला खान ने अपने आपको बलिदान कर दिया हो। यदि देखा जाये तो मुगलों या अंग्रेजों से लड़ी गई लड़ाईयाँ बहुमत के आधार पर नहीं लड़ी गई बल्कि वे अल्पमत के आधार पर लड़ी गई। इन लड़ाईयों, बलिदानियों ने इतिहास में इस लिये अपने आप को जीवित रखा क्योंकि उसका आधार धर्म (राष्ट्र धर्म) था। आज के संदर्भ में आजाद भारत में प्रायः गोवा, काश्मीर, मिजोरम, गोरखालैंड, अयोध्या का राम जन्म भूमि आंदोलन आदि मुददों पर यह कहा जाता है कि इन मसलों के समाधान के लिये बहुमत या जनमत संग्रह होना चाहिये। प्रायः ऐसे मामलों पर राष्ट्रसंघ में ले जाने के प्रश्न भी उठाये जाते हैं। परन्तु पं. दीनदयाल जी उपाध्याय ने कहा कि, राष्ट्र धर्म के आगे बाकी बातें महत्वहीन हो जाती हैं। अतः राष्ट्रीय एकता हमारा राष्ट्रीय धर्म है। इसके लिये बहुमत संग्रह अथवा जनमत संग्रह बेमानी बाते हैं। हमारी राष्ट्रीयता, हमारे स्वाभिमान, हमारी सांस्कृतिक पहचान के मामले बहुमत या जनमत संग्रह द्वारा तय नहीं होंगे। मुझे तो हमारे देश के गृहमंत्री श्री वल्लभ भाई पटेल का देशी रियासतों के विलीनीकरण के पश्चात कलकत्ता में दिये गये 'भाषण' की याद आती है। जब

देशी रियासतों का विलीनीकरण हुआ एवं कश्मीर को राष्ट्रसंघ में उठाने की बात आयी तो सरदार पटेल ने कहा कि यह मामला हमारा आंतरिक मामला है तथा इसे हम स्वयं हल करेंगे। जो राष्ट्रसंघ की बात करते हैं तो हम कहना चाहते हैं कि 'राष्ट्रसंघ' क्या बला है। मैं नही जानता हूं। मैं तो देश की एकता अखंडता का पक्षधर हूं तथा इस कीमत पर किसी से कोई न तो बात होगी न समझौता। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता, अखंडता हमारा राष्ट्रीय धर्म है। जो प्रकृति ने हमें प्रदान किया है। शासन कौन चलाये, राजा कौन बने यह तो एकबार बहुमत या जनमत से तय हो सकता है। परन्तु राजा क्या करेगा? शासक क्या करेगा? यह तो धर्म ही तय एवं सुनिश्चित करेगा।

इस प्रकार 'धर्म' के बिना मानव जीवन की सार्थकता असम्भव है। इसलिये धर्म को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। काम एवं अर्थ पुरुषार्थ की श्रेष्ठता भी धर्म के बिना अधूरी है। धर्म को शाश्वत माना जाता है। इसलिये प्रजातंत्र (लोकतंत्र) में जनता के शासन को पूर्ण नही माना जाता बल्कि इस बात को प्रमुखता दी जाती है कि शासन जनता के हित में है अथवा नहीं ? यदि शासन जनता के हित में है तो ऐसा राज्य धर्म-राज्य माना जायेगा। इसलिये हमारे यहाँ धर्म राज्य को महत्वपूर्ण माना गया है। इसलिये श्रेष्ठ राज्य वही होता है जहाँ धर्म हो। इस प्रकार धर्म पुरुषार्थ की प्राप्ति अत्यधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है।

(४) व्यक्ति एवं मोक्ष पुरुषार्थ - काम पुरुषार्थ, अर्थ-पुरुषार्थ, धर्म पुरुषार्थ को आधार पुरुषार्थ कहा जाता है तथा अंतिम मोक्ष पुरुषार्थ को हमारी संस्कृति के अनुसार परम पुरुषार्थ माना जाता है। काम, अर्थ एवं धर्म का सम्बन्ध व्यक्ति के जीवन से प्रत्यक्ष रूप से होता है। परन्तु मोक्ष पुरुषार्थ अर्थात जीव आत्मा, जब उस परम-परमेश्वर, ईश्वर, उस सर्व शक्तिमान में विलीन हो जाती है तो माना जाता है कि व्यक्ति को जीवन से मुक्ति प्राप्ति (मोक्ष प्राप्त) हो गई है। हमारे हिन्दु धर्म में ८४ लाख जीव योनियों की कल्पना की गई है। व्यक्ति या जीव जन्तुओं को कर्म के अनुसार इन योनियों में जन्म लेना पड़ता है तथा उनका मरण भी होता है। यह क्रम चलता रहता है तथा उसे इन ८४ लाख योनियों से गुजरना पड़ता है। व्यक्ति जब श्रेष्ठतम् कार्य करता है। तो वह जीवन मरण के इस प्रसंग से मुक्त होता है तथा आत्मा उस परमात्मा में विलीन हो जाती है। इस प्रकार मोक्ष प्राप्त होने पर जनम-मरण के प्रसंगों से मुक्त हो जाता है। इसे ही मोक्ष पुरुषार्थ कहा जाता है। जो अन्य पुरुषार्थों से श्रेष्ठतम होता है।

मोक्ष शब्द संस्कृत के 'मुच्' शब्द से बना है। 'मुच्' का अभिप्राय छोड़ना अथवा मुक्त करना माना जाता है। इस प्रकार मोक्ष का सरल शब्दों में अभिप्राय जीव का सभी प्रकार के बंधनो से मुक्त होना। व्यक्ति, अर्थ एवं काम के मोह में जकड़ा न रहे, उससे मुक्त हो जाये अथवा इनके प्रति आसक्ति कम हो जाये। इसे मोक्ष कहा जाता है। इससें भी आगे चले तो व्यक्ति में काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, लालच आदि विचार होते हैं तथा व्यक्ति को इस शरीर से व्यापक लगाव होता है। ये विचार खत्म हो जाये। शरीर नश्वर है, आत्मा अमर है। यह भाव जागृत हो, तो अंततः व्यक्ति चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष का अधिकारी हो जाता है।

व्यक्ति प्रारम्भ में 'मैं' तक सीमित होता है, फिर वह मैं से बढ़कर इस समाज, राष्ट्र, विश्व को पहचानता है। इसके बाद यह सम्पूर्ण चराचर जगत उसका हो जाता है तथा अंत में 'मैं' यह जीवात्मा, इस सृष्टि के नियंता (निर्माता) को पहचानती है तथा उसमें विलीन होकर शांत हो जाती है। जिस प्रकार छोटे-छोटे नाले, नदियाँ, विभिन्न स्थानों से गुजरते हुये अंततः सागर में विलीन हो जाते हैं यही परम-पुरुषार्थ मोक्ष है।

पं.दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानव दर्शन में कहा है कि मोक्ष के विषय में एक धारणा यह मानी जाती है कि यह केवल व्यक्तिगत विषय है। अर्थात व्यक्ति का सांसारिकता से मुख मोड़कर किसी निर्जन स्थान पर जाना। किसी साधु सन्यासी के समान ध्यान लगाना एवं सिद्धि प्राप्ति का प्रयास करना ही मोक्ष प्राप्त करना है। यह विचार पूर्णतः गलत है। मोक्ष, जीवन से मुख नही मोड़ता, मोक्ष व्यक्तिगत लाभ हेतु सिद्धि प्राप्त नही करता। बल्कि मोक्ष व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा सम्पूर्ण विश्व को, सम्पूर्ण मानव जाति को प्रेम में बांध कर उसे परम सुख की ओर ले जाता है। इसे ही परम पुरुषार्थ मोक्ष कहा जाता है। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने इसकी व्याख्या करते हुये कहा है कि -

'मुक्ति कभी व्यक्तिगत नही होती है, वह समष्टिगत होती है। समाज पीड़ित हो, कष्ट में हो, तब भी मैं उसे इस हाल में छोड़कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। ऐसी गलत विचार धारणा लिये लोग चलते हैं। परन्तु यह गलत या विकृत धारणा मानी जायेगी। समाज जब मुक्त होगा, जब समाज का स्तर ऊंचा उठेगा, जब समाज उन्नति करेगा तभी व्यक्ति भी उन्नति करेगा तथा उसे शांति तभी प्राप्ति होगी। इसलिये परमात्मा बार-बार अवतार धारण करता है। हमारे किसी भी पुराण में यह नहीं कहा गया कि ईश्वर ने जन्म लिया हो एवं मुक्ति प्राप्ति हेतु किसी एकांत में तप किया हो।'

हमारा इतिहास साक्षी है कि हमारे यहाँ जितने भी महापुरुष हुये है चाहे वे राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, नानक, दयानंद, राम कृष्ण परमहंस, विवेकानंद, गांधी, हेडगेवार जी, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी, पं. दीनदयाल उपाध्याय, भगत सिंह, तिलक, आजाद सभी के जीवन का महत्वपूर्ण लक्ष्य था और वह लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कष्ट उठाते हुये भी समाज का, राष्ट्र का, विश्व का कल्याण करो। उन्होंने हमें संघर्ष की प्रेरणा दी। इसलिये उन्होंने परम पुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्त किया एवं आज भी वे एवं उनके सिद्धांत जीवित हैं।

परमपुरुषार्थ मोक्ष एवं उसके प्राप्ति के मार्ग - पं. दीनदयाल उपाध्याय ने काम, अर्थ, धर्म एवं मोक्ष को पुरुषार्थ माना है तदापि मोक्ष को परम पुरुषार्थ की श्रेणी में सम्मिलित किया है। 'मोक्ष' जो जीव का परमात्मा से मिलन, कंकर-कंकर का शंकर हो जाना, जीवात्मा का मोह-माया व बंधनों से मुक्त हो, परम सत्ता में विलीन होना माना गया है। इस मोक्ष की प्राप्ति के निम्नांकित ३ मार्ग बतलाये गये है :-

(१) कर्म मार्ग

(२) भक्ति मार्ग

(३) ज्ञान मार्ग

उपरोक्त मार्गों से परमपुरुषार्थ मोक्ष तो प्राप्त किया जा सकता है। कर्म मार्ग का सम्बन्ध शरीर से, भक्ति-मार्ग का सम्बन्ध मन से तथा ज्ञान-मार्ग का सम्बन्ध बुद्धि से माना जाता है।

(१) कर्म मार्ग - कर्म मार्ग को 'मोक्ष' प्राप्ति का प्रथम साधन (सीढ़ी) कहा गया है। कर्म मार्ग का सम्बन्ध शरीर से माना गया है। कर्म को आधार मानते हुये व्यक्ति जीवन के निर्धारित महत्वपूर्ण लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। यह लक्ष्य सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय अथवा अन्य कुछ भी हो सकता है। इतिहास साक्षी है कि जिन-जिन महापुरुषों ने जीवन लक्ष्यों को प्राप्त किया वे इतिहास पुरुष हो गये। परमपूज्य हेडगेवार जी ने देश की अखंडता एकता का महान लक्ष्य तथा हिन्दु राष्ट्र के महान संकल्प की परिकल्पना को कर्म मार्ग से प्राप्त किया। उनके द्वारा बनाया गया राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ इसी कर्मयोग का परिणाम है। महात्मागांधी ने देश की स्वतंत्रता को अहिंसा के आधार पर इसी कर्म मार्ग से प्राप्त किया। मेवाड़ नरेश महाराणा प्रताप, शिवाजी महाराज ने देश को अनेकानेक बार मुगलों के चुंगल से मुक्त कराया एवं जीवन पर्यन्त

संघर्ष करते रहे परन्तु स्वाभिमान से कोई समझौता नहीं किया। बाल गंगाधर तिलक, शहीदे आजम भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद, अशफाक उल्ला खाँ, राम प्रसाद बिस्मिल, राजगुरु, सुखदेव, झांसी की रानी लक्ष्मी बाई, तात्या टोपे, नेताजी सुभाष चंद बोस, सरदार वल्लभ भाई पटेल, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी, जैसे अनेक नेता हुये जिन्होंने निर्धारित राष्ट्रीय लक्ष्यों को कर्म मार्ग (कर्म योग) से प्राप्त किया।

(२) **भक्ति मार्ग** - भक्ति मार्ग, मोक्ष प्राप्ति का एक अन्य मार्ग माना गया है। इस मार्ग के द्वारा भी निर्धारित मोक्ष पुरुषार्थ को प्राप्त किया जा सकता है। शर्त भक्त में भगवान के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना हो। यह समर्पण या भक्ति अंततः उस परम-सत्ता के नजदीक सरलता से पहुंचा देती है। चूंकि इसका सम्बन्ध मन से होता है अतः समर्पण पूरी आस्था एवं विश्वास के साथ होना चाहिये। भक्ति योग (मार्ग) से भगवान को प्राप्त करने के अनेकानेक उदाहरण हिन्दू दर्शन में दिये गये है। 'मीरा' की कृष्ण भक्ति या कृष्ण प्रेम इसका प्रमाण है। ' मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरों न कोई', मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दर्द न जाने कोय' जैसे भाव-गीतों से कृष्ण को पति मानते हुये अपने आप को कृष्ण के प्रति पूर्ण समर्पित कर दिया एवं समाज के लांछनो की परवाह भी नहीं की। गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीराम के प्रतिपूर्ण समर्पण के भाव के साथ अपने आप को जोड़ा। इस भक्ति मार्ग का परिणाम समाज रामायण जैसी महान कृति से लाभान्वित हुआ। जितना राम ने तुलसी को नहीं, उतना तुलसी ने राम को व्यापक कर दिया। सूरदास, रसखान, नानक, कबीर, रविदास, तुकाराम, जैसे अनेकानेक महान व्यक्ति हुये जिन्होंने मात्र अपनी भक्ति से जीव आत्मा को परमात्मा में विलीन कर परम मोक्ष की स्थिति को प्राप्त कर महान पुरुष हो इतिहास में अमर हो गये।

(३) **ज्ञान-मार्ग** - ज्ञान मार्ग को मोक्ष प्राप्ति का एक मार्ग माना गया है। ज्ञान का सम्बन्ध बुद्धि से माना गया है, जो व्यक्ति को परम मोक्ष की स्थिति पर पहुंचाती है। महात्मा बुद्ध ने अपने बचपन में जब वे सारथी के साथ नगर भ्रमण में थे। अनेकानेक दृश्य देखे - एक वृद्ध व्यक्ति को झुकी अवस्था में लाठी टेकते हुये जाना, व्यक्तियों द्वारा मुर्दा व्यक्ति की अर्थी लेकर जाना आदि। इन बातों को देखने एवं पूछने पर सारथी द्वारा प्रति उत्तर कि 'कुमार' आप, मैं सभी इस अवस्था को प्राप्त होंगे। इन बातों से उनकी बुद्धि का जागृत होना एवं मृत्यु पर विजय का भाव पैदा होना। फलस्वरूप अंततः

सिद्धार्थ से महात्मा बुद्ध होना। ज्ञान मार्ग का उदाहरण है। महावीर स्वामी, वाल्मीकि जैसे अनेकानेक ज्ञान मार्ग के उदाहरण है जो स्पष्ट करते हैं कि, बुद्धि योग के जागृत होने पर ही परम पुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार पं. दीनदयाल जी उपाध्याय ने अपने एकात्म मानववाद के दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के उपरोक्त साधनों की व्याख्या करते हुये कहा कि व्यक्ति किसी भी साधन से इसे प्राप्त कर सकता है। जब व्यक्ति इस स्थिति को प्राप्त करता है तो वह न केवल जीवन-मरण के बंधनों से मुक्त होता है बल्कि स्वयं इतिहास बन जाता है।

❑ ❑ ❑

खण्ड - सात

एकात्म मानववाद दर्शन

(व्यक्ति एवं समाज विश्लेषण)

खण्ड - सात

एकात्म मानववाद दर्शन

(व्यक्ति एवं समाज विश्लेषण)

पिछले अध्याय में व्यक्ति अध्ययन के अर्न्तगत शरीर, मन बुद्धि एवं आत्मा का विश्लेषण किया। पुरुषार्थों के तहत् काम, अर्थ, धर्म एवं मोक्ष पुरुषार्थों का विश्लेषण एवं इन पुरुषार्थों की प्राप्ति हेतु प्राप्ति के साधनों का विस्तृत विश्लेषण किया गया। यह सम्पूर्ण विश्लेषण व्यक्ति के 'मैं' एकवचन तक सीमित था। परन्तु व्यक्ति केवल 'मैं' तक सीमित नहीं होता बल्कि वह 'हम' भी होता है। जिसे दूसरे अर्थों में या विस्तृत अर्थों में समाज भी कहा जाता है। इस प्रकार व्यक्ति एकवचन के अतिरिक्त बहुवचन भी होता है। अतः सामाजिक दृष्टिकोण से इसका अध्ययन या विश्लेषण भी आवश्यक होता है। अतः इस खण्ड में व्यक्ति के बहुवचन के स्वरूप, समाज का, व्यापक विश्लेषण किया जायेगा। क्योंकि व्यक्ति एवं समाज दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इनका आपस में अटूट एवं घनिष्ट सम्बन्ध है। अतः इस दृष्टिकोण से भी इसका अध्ययन जरूरी होता है।

समाज क्या है ?

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानव दर्शन में 'समाज' का विस्तृत अध्ययन किया है। सर्वप्रथम प्रश्न यह उठता है कि आखिर 'समाज' क्या है। इसे किस रूप में परिभाषित किया जाये ? इसमें क्या-क्या सम्मिलित किया जाये? 'समाज' क्या है ? इस संदर्भ में विचारकों के मध्य व्यापक मतभेद हैं। विशेष रूप से पश्चिम के विचारकों का इस संदर्भ में दृष्टिकोण अलग है। विभिन्न व्यक्तियों का समूह वे समाज मानते हैं। अथवा व्यक्ति समूह के रूप में एकत्रित हो जाये या मिल जाये तो पश्चिम के विचारकों के अनुसार समाज उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार पश्चिम का दर्शन व्यक्ति के समूह को समाज मानता है जो व्यक्ति मिलकर बनाते हैं। यदि इस बात को स्वीकार कर लिये जाये तो प्रश्न उठता है कि क्या किसी स्थान पर १५-२० आदमी एकत्रित हो जायें तो इसे समाज मान लिया जाये? किसी स्थान पर एकत्रित भीड़ को समाज की संज्ञा दी जाये? व्यक्ति मिले तो समाज बंन गया? ऐसा सोच लिया जाये? तो इस दशा

में स्कूल, कालेज में छात्रों का समूह समाज माना जायेगा। रेल्वे या बस स्टेंड पर एकत्रित भीड़ को समाज माना जायेगा। किसी आंदोलन या प्रदर्शन के लिये एकत्रित व्यक्तियों के समूह को समाज माना जायेगा। किसी धार्मिक या सामाजिक कार्य हेतु एकत्रित व्यक्तियों के समूह को समाज माना जायेगा। ये प्रश्न उठना स्वाभाविक है ? पश्चिम के दृष्टकोण से इसे समाज मान भी लिया जायेगा। परन्तु पं. दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म दर्शन पश्चिम के इस समाज के अर्थ को स्वीकार नही करता कि व्यक्ति मिले और समाज बन गया। व्यक्तियों का समूह एकत्रित हुआ और समाज का निर्माण हो गया। समाज निर्माण के लिये इतना पर्याप्त नहीं होता है ? व्यक्तियों के समूह एकत्रित हुये और समाज बन गया जो ऐसा मानते अथवा सोचते हैं यह बात एवं सोच एंकपक्षीय है। इसे अपूर्ण सोच कहा जायेगा।

समाज तो स्वयं पैदा होता है ?

हमारे हिन्दू दर्शन में विभिन्न देवी-देवताओं की कल्पना की गई है तथा प्रत्येक की उत्पत्ति के सम्बन्ध में स्पष्ट किया गया है कि वह सामान्य व्यक्ति की भांति पैदा हुआ है। इससे स्पष्ट है कि जिस प्रकार 'व्यक्ति' पैदा होता है उसी प्रकार 'समाज' पैदा होता है। जिस प्रकार 'व्यक्ति' जन्म लेता है उसी प्रकार 'समाज' भी ज़न्म लेता है। व्यक्ति मिलें एवं समाज बना, पश्चिम का यह सोच ही गलत है। जिस प्रकार व्यक्ति जीवमान सत्ता है। उसी प्रकार से समाज भी जीवमान सत्ता है। जिस प्रकार व्यक्ति का शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा होती है। उसी प्रकार समाज की भी शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा होती है। जिस प्रकार व्यक्ति का सोच होता है, उसी प्रकार समाज का भी सोच होता है। इसलिये कहा जाता है कि समाज भी स्वयं पैदा होता है अथवा समाज भी स्वयंभू होता है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय समाज को कृत्रिम (बनावटी) संगठन नहीं मानते हैं न ही यह स्वीकार करते है कि व्यक्ति मिलकर समाज का निर्माण करते हैं ? समाज कोई 'दो या दो से अधिक व्यक्तियों का समूह नहीं है' जिसे हम सहकारी समिति, या साख समिति कहते हैं। समाज को ज्वाइंट स्टाक कंपनी भी नहीं कहा जाता जो कम से कम ११ व्यक्तियों के रूप में बनती है तथा जिसका दायित्व सीमित अथवा असीमित होता है। समाज कोई मनोरंजन क्लब या ऐसी संस्था नहीं होती जिसके लिये पंजीयक (Registrar) को आवेदन पत्र देना पड़ता है कि आप समाज का पंजीयन (Registration) करें एवं पंजीयक महोदय, समाज का पंजीयन करें। ऐसी सोच अथवा

धारणा को दीनदयाल जी पूर्णतः गलत मानते हैं। उनके अनुसार समाज व्यक्ति की भांति एक जीवित संस्था होती है। व्यक्ति की भांति समाज का अपना शरीर, अपना मन, अपना दिमाग (मस्तिष्क), अपनी आत्मा, अपना सुख, अपना दुख, अपनी चेतना सभी कुछ होती है। किसी व्यक्ति को पीड़ा देने पर जो दुख व्यक्ति अनुभव करता है ऐसी पीड़ा का अनुभव दुख होने पर यह समाज भी अनुभव करता है। पूर्व के (हिन्दुस्तान) इस विचार दर्शन का पहले पश्चिम के दार्शनिक या विचारक स्वीकार नहीं करते थे। परन्तु अब पश्चिम के विचारक, चिंतक इसे स्वीकार करते हैं तथा वे स्पष्टतः यह कहते हैं कि जैसे व्यक्ति का मस्तिष्क होता है, व्यक्ति का दिमाग होता है। वैसा मस्तिष्क समाज का भी होता है। वैसा ही दिमाग समाज का होता है। इसे समूह मन (Group mind) कहा जाता है।

समाज के निर्माण के संदर्भ में परस्पर विरोधी विचारधाराओं को जन्म देने वाले विचार उत्पन्न होते हैं। पहला प्रश्न है कि समाज एवं व्यक्ति इन दोनों में श्रेष्ठ कौन है? इस प्रश्न के उत्तर में कुछ लोगों का मत है कि चूंकि व्यक्ति एकत्रित हुये इसलिए समाज बना अतः समाज के निर्माता के नाते व्यक्ति श्रेष्ठ है। इसके विपरीत विचारधारा वालों का कहना है कि व्यक्ति के लिये समाज का निर्माण करना अत्यन्त आवश्यक हो गया इसलिये समाज हर हालत में व्यक्ति से श्रेष्ठ है। अतः व्यक्ति एवं समाज में प्रतियोगिता है।

व्यक्ति एवं समाज की श्रेष्ठता के प्रश्न पर समाज में २ विचारधारायें या २ गुट पैदा हो गये। जिसमें एक व्यक्ति की श्रेष्ठता की समर्थक हैं तो दूसरी समाज की। पहली विचारधारा के समर्थकों ने व्यक्ति को श्रेष्ठ माना एवं व्यक्ति की सत्ता को स्वीकार करते हुये, समाज को व्यक्ति की इच्छा पूर्ति का साधन माना। यदि समाज में २ व्यक्तियों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाये तो कैसे मार्ग निकाला जाये। तो इस प्रश्न का उत्तर इस वर्ग (गुट) द्वारा यह दिया गया कि संघर्ष की यह परम्परा तो अनादि अनंत काल से चली आ रही है। यह कोई नई बात नहीं है। इस संघर्ष में वही व्यक्ति टिका रहेगा जो शक्तिवान होगा, जो कमजोर होगा उसे बलवान की सत्ता को स्वीकार करना पड़ेगा (Survival of fittest) अर्थात 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' होगी। बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है। इस विचारधारा के समर्थकों को 'व्यक्ति सत्तावाद' या 'व्यक्तिगत प्रणाली' कहा जा सकता है।

इसके विपरीत द्वितीय पक्ष द्वारा समाज की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुये कहा कि व्यक्ति की तुलना में समाज ज्यादा महत्वपूर्ण होता है। व्यक्ति, समाज का ही एक अंग (A Part of Society) होता है। अतः व्यक्ति के समस्त कार्य, व्यवहार, आदतें समाज को सुदृढ़ बनाने में होनी चाहिये। समाज की श्रेष्ठता या सुदृढ़ता ही व्यक्ति का एकमेव लक्ष्य होना चाहिये। यदि समाज हित के लिए व्यक्ति हित का बलिदान करना पड़े तो भी संकोच नहीं होना चाहिये। यदि समाज स्वस्थ्य, प्रसन्न एवं गतिशील होगा तो व्यक्ति को स्वमेव इसका लाभ मिलेगा। इस प्रकार समाज की श्रेष्ठता के समर्थकों को 'समाज सत्तावाद' या 'समाजगत प्रणाली' कहा गया।

आज पश्चिम के देशों में उक्त दोनों विचारधाराएं प्रचलित हैं। व्यक्ति सत्तावाद के समर्थक, व्यक्तिगत स्वतंत्रता के नाम पर समाज की उपेक्षा करते हैं तो दूसरे समाज सत्तावाद के समर्थक समाज के एकमेव सत्ताधीश बनने की धुन में व्यक्ति के व्यक्तित्व को ही समाप्त कर डालते हैं। इस प्रकार व्यक्तिवादी सत्ता ही पूंजीवादी विचारधारा की पहली संतान है तो समाजवादी सत्ता समाजवाद के रूप में दूसरी संतान हम कह सकते हैं।

व्यक्ति श्रेष्ठ या समाज श्रेष्ठ ?

यह विवाद इसलिये प्रारम्भ हुआ क्योंकि पश्चिम के दर्शन ने यह गलत मान्यता स्वीकार की कि व्यक्ति मिले एवं समाज का निर्माण हुआ। एक विचारधारा में समाज के आधार पर व्यक्ति स्वयं सर्वशक्तिमान बनना चाहता है तो दूसरी विचारधारा में जिस समाज को व्यक्ति के कारण महत्व मिला उसके व्यक्तित्व को दबा दिया जाता है। वैसे गहनता से विश्लेषण किया जाये तो दोनों ही विचार अपूर्ण या एकांगी हैं। व्यक्ति से पैदा हुआ पूंजीवाद एवं समाज से पैदा हुआ समाजवाद, इन दोनों के इतिहास इस बात के साक्षी हैं कि दोनों व्यवस्थायें एकपक्षीय हैं तथा दोनों अंततः नष्ट होंगी (समाजवादी व्यवस्था की पक्षधर रूसी व्यवस्था नष्ट हो चुकी है तो पूंजीवादी व्यवस्था का नेतृत्वकर्ता अमेरिका अपने देश में बढ़ते भौतिकवाद से नष्ट होने की दिशा में बढ़ रहा है)।

पश्चिमी देशों में बढ़ती हुई घातक प्रतिस्पर्धा, व्यापक तनाव, रक्तपात, संघर्ष, नैतिक पतन, जो बढ़ते जा रहे हैं। इसका मूल कारण उनके द्वारा स्वीकार गैलत धारणा 'सामाजिक समझौता सिद्धांत' (Social Contract Theory) को स्वीकार

करना है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सरसंघचालक परमपूज्य श्री गुरूजी ने इसे अत्यन्त सरल शब्दों में स्पष्ट करते हुये कहा कि -

'व्यक्ति यदि यह कहने लगे कि व्यक्तियों के बीच केवल एक समझौता है, कोई पवित्र उद्देश्य नहीं है तो यदि किसी व्यक्ति की स्वार्थ पूर्ति नहीं होती तो वह इस समझौते को अस्वीकार कर सकता है इससे समाज में व्यापक अव्यवस्था उत्पन्न होने लगेगी। क्योंकि जिन व्यक्तियों ने समझौता किया। यदि वे इसे तोड़ेंगे तो सारा समाज, इसका पवित्र उद्देश्य, इसकी व्यवस्था नष्ट हो जायगी। इससे समाज में ऐसी भयानक स्थितियाँ पैदा होंगी। सामान्य व्यक्ति स्वयं सोच सकता है।' (विचारधन पुस्तक के द्वितीय संस्करण के पृष्ठ १२-१३ से उद्धत)

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद में स्पष्ट करते हुये कहा है कि, समाज अपनी सामाजिक व्यवस्थाओं के निर्माण हेतु, उसे चलाने के लिये, उसके विकास के लिये विभिन्न प्रकार की व्यवस्थायें तथा संस्थायें सथापित करता है। उदाहरण के लिये समाज में शिक्षा के लिये गुरुकुल शिक्षा, देश की आंतरिक एवं बाह्य सुरक्षा हेतु सैनिक संस्था, व्यक्ति एवं समाज के विकास के लिये वर्णाश्रम व्यवस्था आदि विभिन्न संस्थाओं का भारतीय संस्थाओं के संदर्भ में उल्लेख किया जा सकता है। ग्राम एवं नगर स्तर पर पंचायतें, जनपदें, जिला जनपदें, नगर निगम एवं नगर पालिकायें, विधान परिषदें एवं विधान सभाये लोकसभा एवं राज्य सभाये, संयुक्त राष्ट्र संघ इत्यादि ऐसी अनेक संस्थायें इसके अर्न्तगत शामिल मानी जाती हैं। समाज एक जीवमान सत्ता मानी जाती है उसे कृत्रिम संगठन नहीं कहा जा सकता है। कृत्रिम एवं जीवमान सत्ता में मौलिक अंतर होता है। ऊपर से देखने पर यह अंतर स्पष्ट नहीं होता परन्तु गहनता से विश्लेषण किया जाये तो यह अंतर समझ में आता है। उदाहरण के लिये एक मोटर कार दौड़ती है तो घोड़ा भी दौड़ता है। दोनों में दौड़ने की व्यवस्था में कोई अंतर नहीं है। अंतर कहां पैदा होता है कि मोटर कार का निर्माण कारखाने में कलपुर्जों को जोड़ने से हुआ है तो घोड़ा कारखाने में नहीं बना बल्कि उसने जन्म लिया है। मोटर को गतिशील या नियंत्रित करना हो तो बाहरी ओर से ऐसा होगा। तो घोड़ा अपनी आन्तरिक शक्ति से स्वमेव नियंत्रित होगा। इस प्रकार जीवमान एवं कृत्रिम वस्तुओं में यही अंतर होता है। वृक्ष धरती से ऊगते हैं, किंतु इनका विकास अंदर से होता है। बाहर से टहनियाँ पत्ते, फूल, चिपकाने से पेड़ का निर्माण नहीं होता है। इस प्रकार

स्पष्ट है कि समाज अनेक व्यक्तियों द्वारा निर्मित संस्था नहीं है। किसी व्यक्ति के पैदा होने के समान, समाज भी पैदा होता है। इसलिये शरीर एवं शरीर के तत्वों का आपस में जो सम्बन्ध होता है, वृक्ष एवं टहनियों, फल एवं फूल का आपस में जो सम्बन्ध होता है। वही सम्बन्ध व्यक्ति एवं समाज का होता है। इसलिये इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि समाज या व्यक्ति में श्रेष्ठ कौन यह प्रश्न ही गलत है ?

व्यक्ति एवं समाज में अभिन्नता - व्यक्ति एवं समाज दोनों की श्रेष्ठता समान है तथा दोनों एक दूसरे से अभिन्न भी हैं। दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति एवं समाज के विभिन्न सम्बन्धों को व्यक्ति अपने जीवन में अनुभव करता है। जैसे - व्यक्ति के जन्म के साथ कुछ बातें आवश्यक रूप से उससे जुड़ जाती हैं। जिन्हें वह अलग नहीं कर सकता है। माता एवं पिता का सम्बन्ध बच्चे के पैदा होते ही उनसे जुड़ जाता है। पैदा होने वाला बच्चा अपने जन्म के साथ ही माता पिता का अधिकार प्राप्त कर लेता है। उसकी माता एवं पिता की प्राप्ति की स्वतंत्रता जन्म के साथ समाप्त हो जाती है।। क्योंकि जन्म के पूर्व ही उसके माता पिता निश्चित हो जाते हैं। यह अधिकार व्यक्ति को समाज प्रदान करता है। इसके बाद जन्म लेने वाले व्यक्ति के नाम संस्कार की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। जिस समाज में व्यक्ति या बच्चा जन्म लेता है। उस समाज की मान्य परंपराओं, उस समाज के अनुसार उस बच्चे का नाम प्रस्तावित किया जाता है। जैसे - मान लो कोई बच्चा हिन्दू समाज में पैदा होगा तो उसका नाम राम प्रसाद, विश्वनाथ, कृष्ण कुमार आदि-आदि रखा जायेगा। उसका नाम मोहम्मद खान, एंथोनी, एलायसिस आदि नहीं रखे जायेंगे। प्रश्न उठता है क्यों ? तो सीधा जवाब है कि जिस समाज का वह अंग है, उस समाज की रीति-रिवाज के तहत् ही उसका नामकरण किया जाता है। उससे हटकर नहीं। इसके पश्चात जब बच्चा बड़ा होकर बोलने लगता है तो जो भाषा वह बोलता है। वह भाषा उसे उससे सम्बंधित वह समाज देता है। अर्थात राम प्रसाद की भाषा हिन्दी, मोहम्मद खान की भाषा उर्दू, एंथोनी की भाषा अंग्रेजी, किसी की मलयाली, किसी की कन्नड़, आदि भाषा हो संकती है जो वह समाज उसे देता है। इस प्रकार समाज ने व्यक्ति को माता पिता दिये, नाम दिया, मातृभाषा दी। इसी प्रकार आगे बढ़ने पर इसी समाज ने उसे शिक्षा दी, अच्छे संस्कार दिये। समाज ही व्यक्ति के परिवार के भरण पोषण के लिये उसे उसकी योग्यतानुसार आजीविका प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति के लिये आमोद-प्रमोद के लिऐ मनोरंजन के साधन, उसके विकास के लिए विभिन्न प्रकार के

क्षेत्र उपलब्ध कराता है ताकि व्यक्ति का समुचित सर्वांगीण विकास हो सके। इसी प्रकार सुख एवं दुख के अवसरों के लिये भी समाज में व्यवस्थायें की गई हैं। विवाह, उपनयन संस्कार, जन्म आदि के अवसरों पर आयोजित कार्यक्रम, मृत्यु, कष्ट (दुख) की दशा में रिश्तेदारों, मित्रों, स्नेहियों द्वारा दी गई सांत्वना आदि ऐसे प्रसंग हैं जो पीड़ित व्यक्ति को अत्यन्त धैर्य एवं साहस का अनुभव कराते हैं। इसी प्रकार किसी परीक्षा में सफल होने पर, खिलाड़ी के द्वारा श्रेष्ठ प्रदर्शन करने पर, किसी ख्यातिलब्ध साहित्य के प्रकाशन पर यही समाज व्यक्ति को प्रोत्साहित कर उसे आगे बढ़ने को प्रेरित करता है। यदि कोई व्यक्ति कोई अपराध करता है या कोई गलत कार्य मे संलग्न होता है तो समाज उसकी निंदा कर, उसे बहिष्कृत भी करता है। इस प्रकार समाज व्यक्ति का सम्बन्ध पग पग पर होता है।

व्यक्ति के अंदर के गुणों को बाहर लाने एवं उन्हें समाज में फैलाने का कार्य भी समाज ही करता है। विविध कलाओं, विद्याओं, शास्त्रों, उपनिषदों का ज्ञान विद्यार्थी को उसके गुरू कराते हैं। अच्छा कार्य करने पर प्रोत्साहन एवं गलत कार्य करने पर उसे दंड यही समाज देता है। इस प्रकार समाज बिना व्यक्ति की कल्पना करना बहुत ही आश्चर्य जनक लगता है। ऐसा सोचें तो कैसा लगेगा कि यदि गुरू हो शिष्य न हो, वक्ता हो श्रोता न हों, कलाकार हो उसे देखने वाले दर्शक न हों, गायक हो उसे सुनने वाले न हों तो निश्चित विचित्रता होगी। इस प्रकार समाज व्यक्ति की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। व्यक्ति तो अपने व्यक्तित्व, कर्त्तत्व से, अपनी योग्यता से समाज की कुछ पूर्ति करता है। परन्तु समाज तो व्यक्ति का पग पग पर मार्ग दर्शन एवं पूर्ति करता है। समाज व्यक्ति की हजारों गुणा ज्यादा मदद करता है। इसलिये समाज एवं व्यक्ति में अंतर नहीं किया जा सकता है। पश्चिम में जो आज विसंगतियाँ अथवा विकृतियाँ पैदा हुईं तथा जो अधोपतन की स्थिति पैदा हो रही है। उसका मूल कारण व्यक्ति एवं समाज में अंतर करना, व्यक्ति एवं समाज में किसके पास अधिकार हों, अवशेष शक्ति (Residuary Power) किसके पास हो यह संघर्ष का प्रमुख कारण है।

आदर्शों को सुरक्षित कर सौंपने का कार्य समाज करता है - व्यक्ति एवं समाज के मध्य अभिन्नता तो एक पक्ष हुआ। इसके दूसरे पक्ष को देखना भी आवश्यक होता है जो ज्यादा महत्वपूर्ण होता है। समाज न केवल श्रेष्ठतम आदर्शों, विचारों, आदर्शवादियों, महापुरुषों के जीवन के इन भावों को संकलित करता है बल्कि आने वाली पीढ़ी को उस धरोहर को सौंपता भी है ताकि पीढ़ी अपने विगत इतिहास को जान

सके एवं श्रेष्ठतम आदर्शों को आत्मसात करते हुये आगे बढ़ सके। यदि हम अपने देश की सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, राष्ट्रीय आदर्शों को ले तो श्रीराम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, गुरुनानक, गुरु गोविन्द सिंह, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, सीता, सावित्री, गांधी, तिलक, गोखले, शहीदे आजम भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल, राजगुरु, सुखदेव, तात्याटोपे, लक्ष्मीबाई, रानी दुर्गावती, परमपूज्य हेडगेवार, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, आदि अनेकानेक ऐसे महापुरुषों ने इस वसुंधरा में जन्म लिया जिनके आदर्श आज भी हमें प्रेरणा देते हैं। यही कारण है कि आज भी उनके द्वारा स्थापित मानदंड जैसे - रामलक्ष्मण का बंधु प्रेम, भरत का त्याग, भीष्म पितामह की प्रतिज्ञा, कर्ण की उदारता, श्रवण कुमार की माता-पिता भक्ति, एकलव्य की गुरु भक्ति, गुरु गोविन्द सिंह का बलिदान, सीता एवं सावित्री का पतिव्रत धर्म, पन्ना धाई की स्वामी भक्ति, भगतसिंह का देश प्रेम, नेता जी का अदम्य शौर्य, तुलसी, सूरदास एवं मीरा का अपने आराध्य से प्रेम, दधीचि का समाज हित में बलिदान आदि आदर्श हमें प्रेरित एवं मार्ग पथ पर बढ़ने की प्रेरणा देते रहते हैं। आज हजारों वर्षों के अंतराल के बाद भी स्थापित ये आदर्श समाज ने सुरक्षित रखे एवं हमें सौंपा ताकि ऐसे उच्च आदर्शों, उच्च मानदंडों, से यह समाज संस्कारित होता रहे, गौरवान्वित होता रहे, यह गंगा की धारा अविरल बहती रहे एवं इन समस्त संस्कारों को समाज के माध्यम से व्यक्ति एकात्म करते हुये, प्रगति के सोपान पर बढ़ता रहे। व्यक्ति एवं समाज इन दोनों के बीच जो परस्पर आदर्श सम्बन्ध हैं। इसे पं. दीनदयाल उपाध्याय ने बड़े ही सरल शब्दों में स्पष्ट करते हुये कहा कि,

'हम अपने व्यक्तिगत हित एवं अहित का विचार करते हुये ही समाज के हित एवं अहित का विचार करें। यही उचित आदर्श व्यवस्था होगी। व्यक्ति के हित एवं समाज के हित दोनों में न तो कोई विरोध है और न कोई संघर्ष ही है।''

किसी व्यक्ति ने पंडित दीनदयाल जी से प्रश्न किया कि आप व्यक्तिवादी है कि समाजवादी ? तो पंडित जी ने उत्तर दिया कि हम व्यक्तिवादी भी है और समाजवादी भी। भारतीय विचारधारा के अनुसार हम व्यक्ति की उपेक्षा नहीं करते और समाज के हितों की अनदेखी भी नहीं करते हैं। इस प्रकार व्यक्ति के हितों की उपेक्षा न करने के कारण हम व्यक्तिवादी हैं तो समाज के हितों के अनुरूप चलने के कारण हम समाजवादी भी हैं। उन्होंने पुनः बात को आगे बढ़ाते हुये कहा कि हम चूंकि व्यक्ति को

सर्वेसर्वा नहीं मानते हैं इसलिये हम व्यक्तिवादी भी नहीं हैं इसी के साथ साथ हम यह भी स्वीकार नहीं करते कि समाज व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन करे एवं उसे यंत्र चालित मशीन बना दें अतः हम समाजवादी भी नहीं हैं। उन्होंने अंतिम निष्कर्ष के रूप में अपनी बात को स्पष्ट करते हुये कहा कि, व्यक्ति के बिना समष्टि की कल्पना करना असम्भव है तो समष्टि के बिना व्यक्ति का मूल्य शून्य है। इस प्रकार भारतीय दर्शन, व्यक्ति एवं समाज के एकात्म स्वरूप को स्पष्ट करता है।

व्यक्ति एवं समाज की विचार पद्धति में अंतर - व्यक्ति एवं समाज दोनों में अभिन्नता है। यह इसका एक पक्ष है तो इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि दोनों के विचार करने के तरीकों में अंतर होता है। इस प्रकार व्यक्ति के विचार करने की पद्धति एवं समाज के विचार करने की पद्धति में अंतर भी होता है। एक व्यक्ति के सोच के तरीके एवं एक हजार व्यक्तियों के सोच के तरीकों में प्रायः समानता हो ऐसा सम्भव नहीं होता है। इस संदर्भ में पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने उदाहरण देते हुये स्पष्ट किया कि, यदि आज के विद्यार्थी (छात्र) को लिया जाय तो वह बहुत सहज एवं सरल दिखेगा। आज से २० वर्ष पूर्व के छात्र को देखा जाये तो वह ज्यादा उठा पटक करता था। उसकी तुलना में आज का छात्र कुछ भी नहीं है। जब एक छात्र को लो तो वह सहज, सरल, सौम्य, अनुशासित, शांत दिखता है किन्तु जब वैसे १०० या ५० छात्र इकट्ठे हो जाते हैं तो वे ज्यादा उच्छंखल एवं अनुशासन हीन हो जाते हैं। ऐसा क्यों ? ऐसी स्थिति का निर्माण क्यों होता है ? इसका विचार करना अत्यंत आवश्यक है। इसे पं. दीनदयाल जी उपाध्याय ने भीड़ की मानसिकता कहकर संबोधित किया है। जो व्यक्तिगत मानसिकता से पूर्णतः भिन्न होती है। उन्होंने भीड़ की मानसिकता का एक और उदाहरण परम पूज्य गुरुजी एवं आचार्य विनोबा भावे के मध्य विचार विनिमय के दौरान का व्यक्त किया है। परम पूज्य गुरू जी ने विनोबा भावे जी को हिन्दू के विचार करने के तरीके एवं मुसलमान के विचार करने के तरीके को बताते हुये, कहाँ उनमें अंतर होता है। यह स्पष्ट किया है। गुरूजी ने स्पष्ट करते हुये कहा कि जिस प्रकार हिन्दू समाज में अच्छे लोग होते हैं, उसी प्रकार बुरे लोग भी रहते हैं। इसी प्रकार मुस्लिम समाज में अच्छे एवं बुरे दोनों लोग होते हैं। इस प्रकार अच्छे लोग किसी समाज विशेष में रहते हैं ऐसा सोचना पूर्णतः गलत है। उनहोंने कहा कि इस विचार से हिन्दू एवं मुसलमान दोनों के सोचने के तरीकों में समानता होनी चाहिये। परन्तु ऐसा होता नहीं? उन्होंने कहा कि एक हिन्दू व्यक्तिगत नाते जिस बात को गलत कहता है, सामाजिक नाते से

भी वह उसके इस पक्ष को स्वीकार करता है तथा उसे गलत कहता है। इस प्रकार हिन्दू व्यक्ति, व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों रूपों में एक सा सोचता है। परन्तु इसके विपरीत वही बात मुसलमान व्यक्ति, व्यक्तिगत नाते से तो गलत कहता है, परन्तु जब वह समूह में बैठ कर इसे सोचता है तो इसे अच्छा कहता है। परम पूज्य गुरुजी ने कहा कि इस प्रकार हिन्दू एवं मुसलमान व्यक्ति के सोच में यही अंतर पैदा हो जाता है। इस अंतर का क्या कारण है? इस प्रश्न पर विनोबा जी मौन रहे। इस बात से एक बात स्पष्ट होती है कि व्यक्ति के विचार करने के तरीके एवं समाज के विचार करने के तरीके में अंतर होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि यदि हजार व्यक्ति एक साथ एकत्रित हो जायें तो जरूरी नहीं है वे अच्छा ही विचार करेंगे। यहाँ एक प्रश्न और उत्पन्न होता है कि क्या सौ या हजार व्यक्ति किसी स्थान पर इकट्ठे हुये तो समाज बन गया ? ऐसा कदापि नहीं ? साथ-साथ रहने से, उठने-बैठने से उनके सोचने, विचार करने की एक प्रणाली बन सकती है। वे अपनी पद्धति का निर्माण कर लेते हैं। एक बात तो एक साथ रहने से स्पष्ट है कि इससे कुछ बातों में समरूपता, एकता हो जाती है। किन्तु जिसे राष्ट्र या समाज कहते हैं। वह इससे नहीं बनता है। उसके लिऐ तो कुछ और की आवश्यकता पड़ती है ?

अनेकों राष्ट्रों के अस्तित्व की समाप्ति क्यों ? पं. दीनदयाल जी उपाध्याय ने कहा कि यदि विश्व के इतिहास का दीर्घकालीन विश्लेषण किया जाये। प्रारम्भ से अभी तक की विकास यात्रा को देखा जाये तो पूर्णतः स्पष्ट है कि, विश्व में कुछ ऐसे देश थे, जो अब नहीं हैं अथवा जो अभी हैं वे पूर्व में नहीं थे। विकासं एवं विनाश का यह क्रम बनता बिगड़ता रहा है। अर्थव्यवस्थाओं में उतार-चढ़ाव की स्थितियाँ आती जाती रहती हैं। एकात्म मानव दर्शन में दीनदयाल जी ने विभिन्न उदाहरण देते हुये कहा कि, अनेकों पुराने राष्ट्र/समाज खत्म हो गये। जिस यूनान में एलेक्जेंडर, हेरेडोटस्, यूलिसिस, अरस्तू, सुकरात एवं अफलातून जैसे ख्यातिलब्ध व्यक्ति पैदा हुये। उस यूनान और आज के यूनान में व्यक्ति की वंशावली में कोई फर्क नहीं पड़ा। ऐसा नहीं हुआ कि यूनान में सभी व्यक्ति खत्म हो गये हों। कुछ मरे तो कुछ जिंदा रहे और कुछ पैदा भी हुये। इस प्रकार पिता-पुत्र परम्परा कायम रही। वहाँ सभी मानव खत्म नहीं हुये। यदि गहनता से देखा जाये तो आज के यूनान के व्यक्ति का सम्बन्ध पिछली २००-४०० पीढ़ियों से मिल सकता है। किन्तु इतने के बाद भी जो पुराना यूनान था उसका आज के यूनान से अंतर तो है ? इसी प्रकार मिस्त्र, रोम का पुराना राष्ट्र खत्म हो गया।

वहाँ नया राष्ट्र पैदा हो गया है। यह कैसे सम्भव हुआ ? इसी प्रकार यहूदियों को लें तो वे अनेक सदी तक भिन्न-भिन्न देशों, व्यक्तियों, भिन्न-भिन्न समाजों, में रहे किन्तु इतना होने पर भी वे उन व्यक्तियों, उन समाजों से जुड़ नहीं पाये। वे दूसरे व्यक्तियों के गुणों को, जीवन पद्धतियों को आत्मसात नहीं कर पाये। ऐसा क्यों ? इन बातों से एक बात तो पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है राष्ट्र के अस्तित्व का कारण एक साथ रहना नहीं, लम्बे अंतराल तक साथ रहना नहीं बल्कि कुछ और ही है ? प्रश्न उठता है कि आखिर वह क्या है ?

राष्ट्र से अभिप्राय ? पं. दीनदयाल जी ने एकात्म मानववाद में 'राष्ट्र' को स्पष्ट रूप से पारिभाषित करते हुये कहा कि आखिर राष्ट्र से तात्पर्य क्या है ? किसे राष्ट्र कहा जाये? उन्होंने कहा जब कि मानव समाज के अर्न्तगत कोई स्पष्ट लक्ष्य, स्पष्ट विचार, स्पष्ट मिशन, स्पष्ट उद्देश्य या कोई आदर्श होता है तथा वह समाज विशेष, अपनी भूमि विशेष के प्रति मातृ भाव (माता के समान मानने का संकल्प रखता है) तो उस समाज या समुदाय का वह राष्ट्र या मातृ भूमि कहलाती है। इसे राष्ट्र (Nation) कहा जाता है। यदि इसमें से किसी भी एक तत्व का अभाव होता है तो उसे राष्ट्र तो कदापि नहीं कहा जायेगा। पं. दीनदयाल जी ने कहा कि शरीर के अन्दर आत्मा होती है यह 'आत्मा' अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। यदि आत्मा शरीर का साथ छोड़ देती है तो मान लिया जाता है कि 'शरीर' का कोई महत्व नहीं है। हम मान लेते हैं कि व्यक्ति समाप्त हो गया है या मर गया है। इसी प्रकार से विचारों को, सिद्धांतों को भी हमारे हिन्दू दर्शन में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। सिद्धांत या विचारों का राष्ट्र की पृष्ठभूमि में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। सिद्धांतो की दृढ़ता, सिद्धांतों की मजबूती या स्थिरता का राष्ट्र के दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्व होता है। यह स्थिरता (दृढ़ता) राष्ट्र के निवासियों, उनकी सोच, उनकी प्रवृति आदि की सोच स्पष्ट करती है। वैसे तो हमारे हिन्दू दर्शन में आत्मा के पुर्नजन्म की बात स्वीकार की गई है, अर्थात व्यक्ति जब मरता है तो आत्मा पुनः किसी अन्य शरीर को स्वीकार करती है।। अर्थात आत्मा तो वही रहती है परन्तु व्यक्ति दूसरा होने से, स्वरूप भी दूसरा हो जाता है। इस प्रकार शरीर से आत्मा का परिवर्तन का यह क्रम सतत् चलता रहता है। अर्थात परिवर्तन होता रहता है। शरीर शास्त्रियों का तो स्पष्ट कहना है कि जीवित व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन काल में (बचपन/युवा/वृद्धावस्था) तक शरीर में अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। शरीर कोशिकाओं में निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं अर्थात जो बचपन

का शरीर होता है, वह युवावस्था में परिवर्तित हो जाता है, जो युवावस्था में रहता है, वह वृद्धावस्था में नहीं रहता है। इस प्रकार कोशिकाओं का यह परिवर्तन, शरीर को भी निरंतर परिवर्तित स्वरूप तो प्रदान करता है परन्तु चूंकि शरीर में वही आत्मा बनी रहती है अतः शरीर सतत् गतिशील बना रहता है और निरंतर चलता रहता है। इस बात को पं. दीनदयाल उपाध्याय ने **'मान्यता'** कहा है। इसी प्रकार राष्ट्र में निरंतर उतार-चढ़ाव, परिवर्तन, बदलाव चलता रहता है। जो अंग्रेजों के शासन काल का भारत था, वह स्वतंत्रता प्राप्ति के दौरान नहीं रहा, जो आज १९९४ का भारत है वह उस समय नहीं था। परन्तु भारतवर्ष तो वही है। इसे ही मान्यता कहा जाता है जो निरंतर परिवर्तित होने के बाद भी मूल भाव या विचार को सुरक्षित रखती है। इस संदर्भ में पं. दीनदयाल जी ने अत्यन्त रोचक **उदाहरण प्रस्तुत किया** - एक बार एक व्यक्ति नाई की दुकान में दाढ़ी, कटिंग कराने गया। जब वह नाई उस व्यक्ति की दाढ़ी बना रहा था तो चर्चा के दौरान उस नाई ने जिक्र किया कि जिस उस्तरे से वह उसकी हजामत बना रहा है वह उसके दादा परदादा के समय का है अर्थात उस उस्तरे की उम्र १०० वर्षों से ज्यादा होगी। उस व्यक्ति को घोर आश्चर्य हुआ। उसने पूछा भइया इस उस्तरे का छुरा कैसे १०० वर्षों का है तो नाई पुत्र ने जवाब दिया कि हाँ इसे तो मैंने अभी कुछ समय पूर्व बदला है? पुनः व्यक्ति ने प्रति प्रश्न किया तुम्हारे उस्तरे की जो मूठ (पकड़ने वाला स्थान) है। इसकी चमक तो इतनी ज्यादा है कि इसे १०० वर्ष पूर्व की नहीं माना जा सकता है। उसने कहा यह भी आप की बात सत्य है। इसे मैंने अभी साल भर पूर्व बदला है। इस प्रकार कभी नाई ने छुरा बदला कभी उस्तरे की मूठ बदली। परन्तु मान्यता नहीं बदली। ऐसे एक नहीं अनेकानेक प्रसंग दिये जा सकते हैं।

मेरे घर में एक साइकिल है। जो हमारे दादा जी के समय की है। जिसे पिता जी भी चलाते थे, आज हम भाई भी चला रहे हैं। कल आने वाली पीढ़ी भी चलायेगी। इस प्रकार आज तक उस साइकिल में अनेक परिवर्तन हुये एवं आगे भी होंगे। कभी सीट बदली, कभी फ्रेम बदला, कभी टायर ट्यूब बदले, कभी कुछ बदला। परन्तु मान्यता वही कि साइकिल 'दादा' के समय की है। किसी का मकान हो सकता है, किसी का आभूषण हो सकता है, किसी की पूर्वजों की ग्रंथावलियाँ हो सकती हैं। जिनमें कुछ न कुछ परिवर्तन तो होते रहते हैं। परन्तु मान लिया जाता है कि 'मान्यता' वही है। इस संदर्भ में राजनैतिक पार्टी के रूप में जनसंघ का उदाहरण दिया जा सकता

है कि इसकी स्थापना के दौरान इसके प्रमुख उद्देश्यों में एकता एवं अखंडता को अक्षुण्ण बनाये रखना, काश्मीर से ३७० धारा को समाप्त करना आदि प्रमुख थे। भारतीय जनसंघ का स्वरूप बदला तथा भारतीय जनता पार्टी के रूप में इसने कार्यों को संचालित किया। इस दौरान १९६२ से १९९४ तक इसमें अनेकानेक परिवर्तन हुये। जहाँ डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी एवं पं. दीनदयाल उपाध्याय, बलराज मधोक, अटल बिहारी बाजपेयी जैसे नेताओं का नेतृत्व इसे प्राप्त था तो आज पं. अटल बिहारी बाजपेयी, लाल कृष्ण अडवानी, डॉ. मुरली मनोहर जोशी सहित अनेकानेक नेताओं का नेतृत्व प्राप्त है। जनसंघ का स्वरूप भारतीय जनता पार्टी में बदला परन्तु इस बदलाव में भी एकता अखंडता के प्रति वही भाव, काश्मीर के प्रति वही लगाव सिद्ध करता है कि मान्यता तो वही है। इस प्रकार व्यक्तियों के बदलाव के बाद भी राष्ट्र की मान्यता बनी रहती है। इस राष्ट्र की मान्यता या आत्मा को पं. दीनदयाल जी ने एक नाम दिया जिसे उन्होंने 'चिति' कहा है। यह आत्मा या 'चिति' जन्मजात है। 'चिति' समाज की वह मूल प्रवृति है जो प्रांरभ से पायी जाती है। ऐतिहासिक कारणों से इसका निर्माण नहीं माना जाता बल्कि इसे जन्मजात ही माना जाता है।

राष्ट्र की आत्मा (चिति) क्या है ? पं. दीनदयाल उपाध्याय ने राष्ट्र की आत्मा को 'चिति' नाम दिया तथा स्पष्ट किया कि जो शरीर में आत्मा का महत्व होता है। वही राष्ट्र के अर्न्तगत चिति का महत्व होता है। उन्होंने कहा कि मनुष्य के व्यक्तित्व एवं आत्मा, व्यक्तित्व एवं चरित्र तथा मनुष्य के चरित्र एवं आत्मा इन सभी में व्यापक अंतर होता है। कोई भी व्यक्ति अपने जीवन काल में जितने अच्छे-बुरे कार्य सम्पन्न करता है। उनका संकलित प्रभाव उसके जीवन पर आता है। यदि व्यक्ति अच्छे संस्कार करता है तो वैसा प्रभाव, बुरे कार्य करता है तो वैसा प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार किये जाने वाले अच्छे-बुरे कार्यों का परिणाम ही उसके व्यक्तित्व का निर्माण करता है। इन कार्यों से किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व पर जो प्रभाव पड़ सकता है, वे बातें उसके व्यक्तित्व से तो जुड़ सकती हैं परन्तु वे बातें उसकी आत्मा से नहीं जुड़ पाती हैं। उसी प्रकार राष्ट्र की संस्कृति में ऐतिहासिक कारणों एवं तात्कालिक वातावरण के परिणामों से उत्पन्न स्थितियों से बहुत सी बातें जुड़ जाती हैं। उदाहरण के लिये समाज के सामूहिक प्रयत्नों से, व्यक्तियों के सामाजिक जुड़ाव से, समाज के ऐतिहासिक परिणामों के फलस्वरूप अच्छी, लाभदायक, गौरवमय बातें राष्ट्र की संस्कृति से जुड़ जाती हैं परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वे 'चिति' से भी जुड़े। इस प्रकार राष्ट्र की संस्कृति

के अनुकूल होते हुये भी वे राष्ट्र की चिति के अनुकूल न हो। इस प्रकार 'चिति' मूलभूत या जन्मजात होती है। समाज की दिशा चिति निर्धारित करती है। इसलिये पं. दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद के दर्शन में स्पष्ट किया कि 'चिति' ही प्रमुख है जो संस्कृति को दिशा दर्शन देती है या इसे निर्धारित करती है। जो चीजें 'चिति' से जुड़ जाती हैं, वे स्वमेव ही संस्कृति का अंग बन जाती हैं।

इस संदर्भ में पं. दीनदयाल जी ने एकात्म मानववाद में अनेकानेक उदाहरण देते हुये इसे स्पष्ट किया है। उदाहरणार्थ जब अयोध्यापति भगवान राम एवं लंकापति रावण का युद्ध हो रहा था उस समय रावण के छोटे अनुज विभीषण ने रावण का साथ छोड़ दिया एवं भगवान राम की शरण में आ गया। यदि इसे देखा जाये तो यह सीधा-सीधा राज्य द्रोह था, सीधा-सीधा भ्रातृद्रोह था। परन्तु हमने ऐसा नहीं कहा? हमने इसे अच्छा माना और हमारी 'चिति' ने स्वीकार किया कि विभीषण का कार्य राजद्रोह या भ्रातृद्रोह नहीं बल्कि धर्मसम्मत श्रेष्ठ कार्य था। इसी प्रकार कुरुक्षेत्र में कौरवों एवं पाण्डवों का युद्ध देखा जाये तो सीधी-सीधी बात है कि यह राज्य प्राप्ति की लड़ाई थी। दोनों हस्तिनापुर का राज्य प्राप्त करना चाहते थे। अतः दोनों के गुण दोष खराब कहे जायेगा। परन्तु हमने ऐसा स्वीकार नहीं किया बल्कि हमने पाण्डवों के आचरण को श्रेष्ठतम एवं कौरवों की बात को अस्वीकार किया। प्रश्न उठता है क्यों ? तो सीधा सादा उत्तर हमारी 'चिति' (आत्मा) ने पाण्डवों के सम्पूर्ण आचरण, व्यवहार, आदतों, प्रवृति को श्रेष्ठतम माना एवं उसे स्वीकार किया। इसलिये अनुकूलता के कारण हमने इसे धर्म सम्मत मानकर संस्कृति से जोड़ दिया। इसी प्रकार कुरुक्षेत्र का एक अन्य उदाहरण भी दिया जा सकता है। जब युधिष्ठर ने जिनके बारे में कहा जाता था कि वे असत्य नहीं बोलते। उन्होंने द्रोणाचार्य जो उनके गुरु थे। पूछने पर कहा कि 'अश्वस्थामा हतो' (अर्थात अश्वस्थामा मारा गया) द्रोणाचार्य के पुत्र का नाम 'अश्वस्थामा' था तथा रणभूमि में 'अश्वस्थामा' हाथी मारा गया था जिसके संदर्भ में युधिष्ठर ने कहा था। इससे द्रोणाचार्य ने अपने अस्त्र-शस्त्रों को छोड़ दिया एवं वे धृष्टिधुम्न द्वारा मारे गये। प्रश्न उठता है कि इस मिथ्या कथन (झूठ बोलने) हेतु युधिष्ठर की निंदा की जानी चाहिये। परन्तु हमने इसे बुरा न मानते हुये अच्छा माना। इसे चिति ने स्वीकार किया तो इसे हमने संस्कृति में सम्मिलित कर लिया। एक और दृष्टांत कुरुक्षेत्र का दिया जा सकता है। जब अर्जुन एवं कर्ण का युद्ध चल रहा था तो एकाएक कर्ण के रथ का पहिया मिट्टी में धस गया। तब भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि रुको मत इसे मार दो। अर्जुन पहले तो असमंजस में पड़े। परन्तु बाद में उन्होंने निहत्थे कर्ण पर बाण चलाकर उसे खत्म कर दिया। अब यदि देखा जाये तो यह कायरतापूर्ण

कार्य था तथा निहत्थे पर वार करना युद्ध नीति के प्रतिकूल माना जाता था। परन्तु इसे हमने अच्छा माना। इसे हमारी 'चिति' ने स्वीकार किया इसलिये इसे हमने संस्कृति का अंग मान लिया।

इस प्रकार ऐसे अनेकानेक प्रसंग दिये जा सकते हैं। परन्तु मुख्य बात यह है कि जो-जो कुछ हमारी 'चिति' के अनुकूल घटता गया उसे हमने स्वीकार किया। जो-जो हमारी 'चिति' के प्रतिकूल था उसे हमने, हमारे समाज ने छोड़ दिया। इस प्रकार 'चिति' के अनुकूल घटने वाली बातों को संस्कृति एवं 'चिति' (आत्मा) ही वह मापदंड (Measurement) है। जिससे किसी वस्तु को मान्य किया जाता है अथवा किसी वस्तु को अमान्य किया जाता है। यही राष्ट्र की आत्मा कही जाती है। इसी के आधार पर राष्ट्र का निर्माण होता है तथा राष्ट्र या देश के प्रत्येक श्रेष्ठ व्यक्ति के आचरण द्वारा यह प्रगट होती है।

व्यक्ति एवं समाज एक दूसरे के पर्याय - पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अपने एकात्म मानववाद के दर्शन में स्पष्ट करते हुए कहा कि व्यक्ति की आत्मा एवं समाज की चिति (आत्मा) दोनों एक दूसरे के पूरक हैं जहाँ तक संघर्ष का प्रश्न है यह विचार ही गलत है। पं. दीनदयाल जी ने स्पष्ट किया कि 'संघर्ष' से विकास पश्चिम के चिंतकों का दर्शन था। चूंकि वहाँ गुलाम का मालिक से संघर्ष, जमींदार का मजदूर से संघर्ष, पूंजीपति का श्रमिक से संघर्ष होता रहा तथा इसी क्रम में विकास की स्थितियाँ भी निर्मित होती रहीं अतः उन्होंने संघर्ष को महत्वपूर्ण माना एवं कहा कि संघर्ष ही विकास है या संघर्ष ही जीवन है। वस्तुतः 'संघर्ष' का यह चिंतन तथा आधार ही गलत है। आखिर प्रश्न उठता है कि संघर्ष किससे ? क्या अपने लोगों से ? क्या व्यक्ति का समाज से संघर्ष या समाज का राष्ट्र अथवा प्रकृति से संघर्ष ? संघर्ष वास्तव में आंखों पर पड़ा पर्दा (अंधकार है) जो पर्दा हटते समाप्त हो जाता है। मानलो दो व्यक्ति अंधकार में एक-दूसरे से टकरा जायें एवं आपस में लड़ने लगें। परन्तु एकाएक बिजली आ जाय तथा पहचानने के बाद तो संघर्ष स्वतः ही समाप्त हो जाता है। इसलिये पश्चिम का 'संघर्ष' की बात कहना तथा इसे विकास का आधार मानना ही गलत है। अतः पश्चिम में जो समस्या उत्पन्न हो रही हैं उसका कारण यही है।

परन्तु हमारा हिन्दू दर्शन व्यक्ति एवं समाज के मध्य, समाज एवं राष्ट्र के मध्य एवं राष्ट्र तथा प्रकृति के बीच संघर्ष नहीं अपितु समन्वय की अवधारणा को स्वीकार करता है। व्यक्ति एवं समाज में संघर्ष नहीं अपितु सहयोग है तथा यही विकास या जीवन का आधार है। इसलिये हमने हिन्दू दर्शन के तहत् समाज में ४ वर्ग किये जिन्हें

क्रमशः ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, एवं शूद्र कहा। यह व्यक्तिगत विभाजन नहीं अपितु यह तो कार्यों का विभाजन है। एक जाति का दूसरी जाति से, एक वर्ण का दूसरे वर्ण से संघर्ष नहीं अपितु सभी एक-दूसरे के सहयोगी हैं। हमने वर्णों की विराट पुरुष (विष्णु भगवान) से तुलना की है। अर्थात सिर माने ब्राम्हण, हाथ कंधे माने क्षत्रिय, पेट माने वैश्य एवं पैर माने शूद्र है। इस प्रकार वर्णों को इस प्रकार विभाजित कर हमने व्यक्ति की कल्पना की। इस कल्पना के अर्न्तगत संघर्ष का भाव नहीं है अर्थात सिर, हाथ-पेट एवं पैरों का आपस में संघर्ष नहीं अपितु सभी एक दूसरे के सहयोगी हैं। बिना एक दूसरे से एकात्म हुये शरीर का चलना सम्भव नहीं है। इस संदर्भ में रोचक दृष्टांत प्रस्तुत किया जा सकता है। एक बार हाथ-पैर, पेट, सिर, आत्मा (प्राण) सभी ने एक दूसरे के प्रति विद्रोह प्रगट किया। मुख ने कहा मैं खाना नहीं खाऊंगा, हाथ पैरों ने कहा हम हिलना एवं चलना फिरना बंद कर देंगे। पेट ने कहा हम पाचन क्रिया संचालित नहीं होने देगें। अब इस संघर्ष से प्रतिकूल परिणाम आने लगे। हाथ पैरों ने मुख तक खाना ले जाना एवं चलना बंद किया तो प्राणों पर संकट आ गया। मुख ने खाना एवं पेट ने पाचन क्रिया को बंद किया तो शरीर कमजोर पड़ने लगा एवं शरीर जर्जर होने लगा। स्थिति अति गंभीर हुई परन्तु शरीर से प्राण नही निकले। अंत में प्राणों ने मुख, हाथ-पैर एवं पेट से कहा कि आप लोगों ने तो अपनी-अपनी कर ली। अब मैं प्राणों का उत्सर्ग कर रहा हूं। जब प्राण निकलने लगे तो शरीर छटपटाने लगा, हाथ-पैरों मुख की हालत जब गंभीर हुई तो प्राण ने समझाया कि आप जो सोचते हैं कि मात्र मैं कार्य कर रहा हूं। शेष सभी निष्क्रिय हैं तो यह बात ही मूलतः गलत है। सभी एक दूसरे के सहयोगी हैं। बिना एक दूसरे के, सभी की औचित्यता व्यर्थ है। अर्थात व्यक्ति एवं समाज में परस्पर पूरकता है संघर्ष नहीं। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, पर्यावरण एवं प्रकृति परस्पर सहयोग एवं समन्वय पर आधारित हैं। समाज के ये अंग एक दूसरे के पूरक ही नहीं, बल्कि एक दूसरे से अभिन्न एवं आत्मीय हैं। परस्पर पूरकता, परस्पर सहयोग तथा एकात्मता ही व्यवहार का मापदंड हो सकता है। कुटुम्ब, जाति, श्रेणी, पंचायत, जनपद, राज्य आदि समस्त संस्थायें राष्ट्र तथा मानव के अंगभूत हैं इनमें एकात्म भाव होना चाहिये। सभी अंग, सभी तत्व एक दूसरे के पूरक एवं एक दूसरे पर पूर्णतः आधारित हैं। इसलिये पं. दीनदयाल उपाध्याय ने कहा कि इन सभी में परस्पर अनुकूलता की शक्ति उत्पन्न होनी चाहिये, संघर्ष अथवा विरोध की नहीं।

❑ ❑ ❑

खण्ड - आठ

एकात्म मानववाद

(व्यक्ति से लेकर परमेश्वर तक)

खण्ड - आठ

एकात्म मानववाद

(व्यक्ति से लेकर परमेश्वर तक)

एकात्म मानववाद दर्शन चित्र नं. १

परमेश्वर

+

सृष्टि

+

पर्यावरण

+

विश्व

+

राष्ट्र

+

समाज

+

परिवार

+

व्यक्ति

विगत अध्यायों में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, पुरुषार्थ, अर्थ एवं धर्म की विस्तृत व्याख्या की। पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने अपने एकात्म मानववाद दर्शन में स्पष्ट किया कि व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, विश्व तक ही अध्ययन सीमित नही है बल्कि इससे आगे पर्यावरण, प्रकृति, सृष्टि एवं इस सम्पूर्ण जगत के संचालक परमेश्वर में एकात्म भाव है। इनमें आपस में सीधा सम्बन्ध है। यह प्रकृति नियमित रूप से चलायमान है। थोड़ा सा भी असंतुलन व्यापक परेशानियाँ पैदा कर देती है। पर्यावरण, जीव जन्तु,

सृष्टि में एकात्म भाव एवं हिन्दू दर्शन के व्यापक सोच को सरल रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है -

(अ) **पर्यावरण** - पं. दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद दर्शन में स्पष्ट किया कि, व्यक्ति एवं पर्यावरण इन दोनों में भी सहयोग का भाव विद्यमान है। थोड़ी सी चूक भयानक दुष्परिणामों को उत्पन्न करती है। उदाहरण के लिये व्यक्ति एवं पर्यावरण में सहयोग का परिणाम कि दोनों सुरक्षित है। व्यक्ति द्वारा छोड़ी गई कार्बन डाइ आक्साइड (CO_2) गैस से पेड़-पौधों का जीवन सुरक्षित होता है तो पेड़ पौधों से प्राप्त आक्सीजन गैस से व्यक्तियों का जीवन चलता है। जिस दिन इस सम्बन्ध में व्यवधान पैदा होगा तो न तो व्यक्ति का जीवन सुरक्षित रहेगा न पर्यावरण का। जंगलो की अंधाधुंध कटाई, पेड़-पौधों के प्रति उदासीनता के कारण सम्पूर्ण विश्व में मौसम अनियमित होने से वर्षा का ठीक से न होना, इससे उत्पादन में गिरावट आना तथा व्यापक भुखमरी से लाखों लोगों का काल कलवित होना सिद्ध कर रहा है कि, व्यक्ति एवं पर्यावरण में व्यापक असंतुलन पैदा हो गया है। वन विभाग के सांख्यिकीय विभाग ने जानकारी देते हुये स्पष्ट किया कि 'प्रतिवर्ष ४५ लाख हेक्टेयर भूमि से जंगलो का कटना, पर्यावरण विनाश का प्रमुख कारण है।' इस जंगल कटाई से वर्षा अनियमित हो गयी है (सोमालिया जैसे देशों में तो विगत १० वर्षों से वर्षा हुई ही नहीं)। भूमि की उपजाऊ मिट्टी का भारी मात्रा में क्षरण हो रहा है। जिससे देश में कृषि उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इस प्रकार ये दुष्परिणाम न केवल कृषि क्षेत्र में बल्कि अन्य क्षेत्रों में भी दिखाई देने लगे हैं। उदाहरण के लिये देश में बनाये गये बड़े-बड़े बांध जो आर्थिक विकास के लिये आवश्यक माने जा रहे हैं। इन बांधों की तलहटी में कीचड़ एकत्रित होने की गति पिछले ४ वर्षों में ४ गुनी हो गई है। इससे बांध के आस-पास के क्षेत्रों में भूकंप की संभावनायें ज्यादा बढ़ गई है। जंगलो की अबाध कटाई ने एक ओर भूमि के क्षरण को बढ़ाया है, तो दूसरी ओर बाढ़ की विभीषिका में वृद्धि की है तथा पानी के तल को भी काफी नीचे कर दिया है। देश सहित विश्व में भीषण जल संकट का प्रमुख कारण पर्यावरण के प्रति यही उदासीनता रही है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने कहाँ कि पर्यावरण के साथ जीव-जन्तुओं के संहार की बात तो और दुखदः है। विदेशी मुद्रा प्राप्ति की लालच में, अत्यधिक विकास की लिप्सा ने भीषण परिस्थितियों को जन्म दिया है। बाघ, सर्प, बंदर, मोर, आदि पशुओं

का निरकुंश तरीकों से संहार किया जा रहा है। जिससे इनकी प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा उत्पन्न हो गया है। मेंढ़क की टांगों के निर्यात हेतु टनों मेढ़क मारे जा रहे हैं। परिणाम स्वरूप मेढ़क खेतों को नुकसान पहुंचाने वाले जिन कीटों को खा जाते थे अब उनकी संख्या बढ़ रही है। इससे कृषि उत्पादों के नष्ट होने की मात्रा बढ़ रही है। इन प्रश्नों को अनेकानेक बार राज्य विधान सभाओं एवं लोक सभाओं में उठाया जा चुका है। बढ़ते हुये उपभोक्ता वाद ने व्यक्ति को इतना निर्मम कर दिया है कि, सौंदर्य प्रसाधनों यथा लिपिस्टिक, पावडर, पर्स, बेनिटी बैग आदि के निर्माण के लिये निरीह पशु-पक्षियों को निर्मम यातनायें दी जाती है। परिणाम स्वरूप पशुओं की १२० प्रजातियाँ नष्ट हो चुकी हैं तथा २४० अन्य नष्ट होने की स्थिति में है।

(ब) प्रकृति - पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने मानव द्वारा प्रकृति पर किये जा रहे निर्मम शोषण पर भी गंभीर चिंता व्यक्त करते हुये कहा है कि

'उद्देश्यपूर्ण, सुखी, जीवन के लिये व्यक्ति को जिन भौतिक साधनों की आवश्यकता होती है। वे उसे प्राप्त होने चाहिए। यदि सूक्ष्मता से विश्लेषण करें तो यह बात स्पष्ट है कि ईश्वर ने व्यक्ति के लिये इतनी मात्रा उपलब्ध कराई है। किन्तु व्यक्ति ने यह मानकर ही प्रकृति उसके उपभोग मात्र के लिये है, ऐसा सोचकर प्रकृति का निरंकुश दोहन प्रारम्भ कर दिया है। जो कदापि उचित नही है। इंजन चलाने के लिये कोयले की आवश्यकता होती है, कोयला खाने के लिये इंजन नही बनाया गया है। कम से कम ईंधन का प्रयोग कर अधिकतम ऊर्जा (शक्ति) कैसे प्राप्त करें। यही उद्देश्य होना चाहिये। प्रकृति का शोषण नही उसका पोषण करने वाली नीति सर्वोत्तम कही जायेगी।'

प्रकृति से हमें उतनी ही साम्रगी, उस ढंग से लेनी चाहिये जिसकी भरपाई (पूर्ति) प्रकृति सरलता से कर सके। एक संदर्भ रोचक प्रसंग याद आ रहा है। कांग्रेस के अधिवेशन में महात्मा गांधी इलाहाबाद गये। भोजन के पूर्व हाथ धोने के लिये बापू ने पानी मांगा एवं एक लोटे से हाथ-पैर-मुंह धोया तो पं. नेहरू ने कहाँ कि बापू आप पानी की चिंता मत कीजिए इलाहाबाद में तो गंगा जी बहती है। पानी की कोई कमी नहीं है। तो बाबू ने बड़ी सरलता से कहा कि इलाहाबाद की गंगा जी केवल बापू के लिये नही बहती है। सुनकर उनका चेहरा शर्म से झुक गया। कहने का मतलब कि प्रकृति में साधन किसी एक-व्यक्ति, एक जाति, एक राष्ट्र के लिये आरक्षित नहीं है बल्कि उन पर सभी का सामूहिक एवं समान अधिकार है। आज ज्यादा लेने की लालच

का भाव पैदा हो गया है। वृक्ष से बीज लेने पर उसकी हानि नहीं होती, वरन लाभ ही होता है। किन्तु भूमि से अधिक लेने के लालच में ऐसे-ऐसे प्रयोग होने लगे हैं कि भूमि की उर्वरा शक्ति ही नष्ट होने लगी है। हमारी प्रकृति तो सोने के अंडा देने वाली मुर्गी से एक अंडा लेने की नहीं बल्कि उसे मार कर पूरा खजाना प्राप्त करने की हो गयी है। पाश्चात्य सोच की इस अवधारणा ने विषम परिस्थितियों को पैदा किया है।

आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति मुख्यतः भौतिक वादी है। भोग प्रधान की इस धारणा में मानव मुख्य है तथा प्रकृति, पर्यावरण, जीव जन्तु सभी उसके सुख सुविधा के लिये हैं। प्रकृति पर विजय प्राप्त करके मानव उसे अपनी सेवा में जोत लेता है। यही पाश्चात्य संस्कृति की मुख्य विशेषता है। भारतीय संस्कृति इस बात को तो स्वीकार करती है कि व्यक्ति के विकास में प्रकृति का महत्वपूर्ण योगदान है। परन्तु प्रकृति से युद्ध करके, उसे नष्ट करके, उसका शोषण करके, मानव का विकास हो यह बात स्वीकार नहीं। प्राकृतिक संपदा का पोषण करें, उसका संवर्धन करें यही भारतीय नीति है।

भारतीय दर्शन की व्यापकता - पं. दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद में भारतीय दर्शन को स्पष्ट करते हुये कहाँ कि भारतीय दर्शन, ऐसा दर्शन है जिसने पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, ग्रहों, नदियों को भी महान ऋषियों, तपस्वियों की तरह महत्व दिया एवं समाज में प्रस्थापित किया। इन्हें इस प्रकार उल्लेखित किया कि ये समाज के महत्वपूर्ण अंग बन गये। उदाहरण के लिये हमने परमात्मा (ईश्वर) के दस प्रमुख अवतार माने है। इनमें से ३ प्रमुख अवतार पशुओं से सम्बन्धित है। इनमें मत्स्य अवतार, कूर्म अवतार एवं वाराह अवतार प्राणियों से सम्बन्धित है। इतना ही नही इन देवताओं के वाहनों पर दृष्टिपात किया जाये तो वे भी महत्वपूर्ण है। विघ्न विनायक गणेश जी का वाहन चूहा है। भगवान शंकर का वाहन नंदी (बैल) है। महादुर्गा महिषासुर मर्दिनी सिंह पर सवार है तो माँ सरस्वती जो विद्या दायनी है, वे हंस वाहिनी कहलाती है। देव, ऋषियों, असुरों सभी के प्रिय भगवान विष्णु गरुड़ पर सवार हैं। तो माँ लक्ष्मी इस जगत की कल्याणी उल्लू पर सवारी करती हैं। तो कुमारसम्भव मोर के वाहक हैं। मोर को राष्ट्रीय पक्षी भी माना गया है। केवल गरुड़ को ही हमने मानव परिवार में सम्मिलित नहीं किया अपितु छोटे-छोटे पक्षियों चिड़ियां, कौआ इत्यादि को भी हमने माना एवं महत्व दिया है। बच्चों को जब दादा-दादी, नाना-नानी कथा सुनाते हैं तो उनका कथा संसार - 'एक था कौआ', 'एक थी चिड़िया' से प्रारम्भ होता है। कौआ

जो कुटिल माना जाता है। जिसका रंग एवं कार्य उसे निम्नता प्रदान करते हैं। उसे भी भारतीय दर्शन ने श्रेष्ठता प्रदान की है। तभी तो बाल समुदाय में नानी कहानी कहते हुये कहती है कि -

कौआ आ, चिड़िया आ, दाना खा पानी पी।

मुन्ने के सिर पर कर पी.पी.।।

इस प्रकार चिड़िया एवं कौआ बच्चों के मित्र हैं। तो दूसरी ओर मनुष्य की मृत्यु के पश्चात, सम्बन्धित व्यक्ति को सद्गति मिली अथवा नहीं। यह भी तब स्पष्ट होता है जब कौआ व्यक्ति के पिंड को स्पर्श करता है। पितृ-पक्ष में १५ दिन सम्पूर्ण हिन्दू समुदाय अपने पुरखों को पिंड दान करते हैं और कौआ को आव्हान किया जाता है। इस प्रकार रंग से काला, आवाज से कर्कश, गंदी चीजे खाने वाला कौआ भी हिन्दू समाज में पूर्वजों को तारने वाला माना जाता है। यह हिन्दू दर्शन ही है जो चीटियों को शक्कर, आटा, मछलियों को दाना देकर उसे अपने आप में एकात्म कर लेता है।

पशु-पक्षियों के पश्चात वनस्पति को लिया जायें तो वह भी हिन्दू संस्कृति में उल्लेखनीय स्थान रखती है। भारतीय संस्कृति में परम पिता परमेश्वर भक्ति-भाव से समर्पित 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं' से प्रसन्न हो जाता है। भगवान शंकर जी इस सृष्टि के संधारक है, वे बेलपत्री से ही मात्र प्रसन्न हो जाते हैं। विघ्न विनायक श्री गणेश जी को दूर्वा (घास) चढ़ाई जाती है तो भगवान विष्णु के अवतार भगवान श्री कृष्ण जिन्हें सम्पूर्ण द्वारका के रतन, हीरे-जवाहरात, माणिक-पन्ना इत्यादि से भी नहीं तौला जा सका वे मात्र रुकमणि के एक तुलसी पत्र से तुल गये। हमारे यहा पीपल एवं बरगद का व्रत बंध होता है तथा भारतीय नारियां इनका पूजन एवं उपवास करती हैं। हमारी हिन्दू संस्कृति में शमी के पूजन एवं तुलसी का विवाह भी होता है। पूजा के लिये सुपारी अत्यधिक आवश्यक है। बिना सुपारी के कोई भी कथा, पुराण व्यर्थ हैं। नारियल हर शुभ कार्य में अनिवार्य है। तो आरती के लिये कपास की बाती न हो तो सब कुछ व्यर्थ है। इसी प्रकार शुभ विवाह कार्यों में अशोक की पत्तियां एवं आम की पत्तिया आवश्यक हैं। इन्हीं के तोरण एवं वंदनवार बनाये जाते हैं। इस प्रकार वनस्पति को भी हमने इस समाज में सम्मानीय माना है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म दर्शन में हिन्दू संस्कृति की व्यापकता को स्पष्ट करते हुये कहॉ कि भारत भूमि को भी विशेष महत्व दिया गया है। भारत की

भूमि, भोग-भूमि न होकर परम पवित्र, धर्म भूमि, पुण्य भूमि, वात्सल्य भूमि है। भूमि को हमने माता माना है। जिस प्रकार माँ बच्चे का लालन-पालन करती है तथा उसका ध्यान रखती है। उसी प्रकार भारत भूमि भी माता सदृश्य है जो लाखों-करोड़ों पुत्रों की पालन कर्ता है। इसी प्रकार नदियाँ केवल पानी पीने के लिये अथवा खेती के लिये पानी देने वाली जलवाहनियाँ न होकर लोक-मातायें है। जो अपने तट पर बसे लाखों लोगों में जीवन प्रदान करती है। इनके मात्र दर्शन से व्यक्ति पुण्य लाभ प्राप्त करता है। इसी प्रकार गाय को हमने जानवर नहीं अपितु गो-माता कहा है जो बच्चे का लालन-पालन उसके माँ के न रहने पर भी कर सकती है। इस प्रकार यदि हम प्रकृति की ओर दृष्टिपात करें तो हमारी दृष्टि भोग वासना से लिप्त न होकर अगाध भक्ति-भाव एवं आत्मीयता से ओत प्रोत है।

इसी प्रकार आकाश, गृह, तारें, नक्षत्र आदि को भी हमने विशेष स्थान दिया है। इन गृह नक्षत्रों का व्यक्ति के जीवन-मरण, उन्नति-अवनति, भाग्य-दुर्भाग्य से व्यापक सम्बन्ध है। यही कारण है कि गृहों को हमने अलग शास्त्र के रूप में रखा। हमारे भारत वर्ष में इसमें विशेष प्रगति हुई। इसे हमने ज्योतिष दर्शन विज्ञान कहा। इस संदर्भ में अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। सूर्य एक गृह-मात्र नहीं है जो हमें रोशनी देता है। बल्कि हमने इसे स्पष्ट करते हुये कहा कि 'सूर्य आत्मा जगतस्त स्थुषः।' अर्थात सूर्य सारे विश्व की आत्मा है। इसीलिये हमारे यहाँ प्रातः स्नान के बाद सूर्य को अर्द्ध देने का नियम है। रथ सप्तमी के दिन दोपहर में सूर्य को शक्कर मिश्रित दूध का भोग चढ़ाने का रिवाज है। इसी प्रकार चंद्रमा को हमने मात्र गृह न मानते हुये, उससे इतनी नजदीकी कर ली कि उसे 'मामा' का उद्‌बोधन दिया। बालक जब रोने लगता है तो नाना-नानी उससे कहते हैं कि 'चंदा मामा आयेंगे, दही पकोड़े लायेंगे' इसी प्रकार -'चंदा मामा दूर के, खीर पकाये पूर के, आप खाये प्याली में मुन्ना को दे थाली में। इतनी नजदीकी, इतनी आत्मीयता किसी अन्य दर्शन में नहीं। जिन बहनों के भाई नहीं होते वे चंदा को भाई मान कर भाई दूज के त्यौहार में भाई की कमी की पूर्ति करती हैं। शरद पूर्णिमा को दूध को छतों, आंगनों में रखा जाता है ताकि अमृत की वर्षा हो एवं व्यक्ति अजर-अमर हो।

इस प्रकार पं. दीनदयाल उपाध्याय ने स्पष्ट करते हुये कहाँ कि ऐसे अनेकानेक प्रसंग (उदाहरण) दिये जा सकते हैं। यह हिन्दू संस्कृति की विशेषता है जो व्यक्ति, समाज, जाति, धर्म, राष्ट्र, पर्यावरण, जीव-जन्तु, प्रकृति, अखिल ब्रह्माण्ड को अपने आप में समावेशित कर लेता है। ऐसा कोई विश्व में दर्शन नहीं जिसकी इतनी व्यापक एवं स्पष्ट सोच हो। इसी व्याख्या, इसी सोच, इसी विशालता एवं उदारता के गुण ने हिन्दू दर्शन को इतनी शक्ति दी कि हजारों-हजारों वर्ष के बाद भी वह स्थायी एवं अक्षुण है।

❑ ❑ ❑

खण्ड - नवम्

एकात्म मानववाद दर्शन विश्लेषण

(हिन्दू दर्शन की श्रेष्ठता)

खण्ड - नवम्

एकात्म मानववाद दर्शन विश्लेषण

(हिन्दू दर्शन की श्रेष्ठता)

पं. दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद दर्शन के अन्तर्गत पिछले अध्यायों में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, प्रकृति, वनस्पति एवं परमेश्वर का अध्ययन तथा एक दूसरे से उनके सम्बन्धों की स्पष्ट विवेचना की। इस अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि आज पूंजीवाद, साम्यवाद जैसी भौतिक विचारधारायें जो बीसवीं सदी के अधिकांश भाग में रही, आज पतन की ओर उन्मुख होती जा रही है। इसके विखंडन ने जहाँ साम्यवाद के खोखले-पन को पूर्णतः स्पष्ट किया है। वही दूसरी ओर पूंजीवाद भी अपने बोझ तले चरमराने लगा है। इन विचार धाराओं की सफलता का प्रभाव यदि वृहद रहा है तो असफलताओं का प्रभाव भी व्यापक रहा है। इस स्थिति में पं. दीनदयाल उपाध्याय के शब्दों में जब दोनों विचारधाराऐं असफल रही है तो हमें निश्चित तौर पर अपने भविष्य के मार्ग को निर्धारित करना होगा।

पश्चिमी अवधारणाएँ क्या ?

सारी आधुनिक सामाजिक-राजनैतिक-आर्थिक विचारधारायें पश्चिमी जीवन दृष्टि की उपज है। इनका उद्‌गम मुख्यतः २ अवधारणों से हुआ है। **पहली अवधारणा** है कि - मनुष्य इस सृष्टि से पूर्णतः अलग है और अपनी इच्छानुसार उसे परिवर्तित करने, उसका उपयोग करने का अधिकार उसे प्राप्त है। बाइबिल की यह अवधारणा तो पहले से ही विद्यमान थी कि, पृथ्वी, वनस्पति, जंगल, नदी, पहाड़, खनिज सम्पदा पर ईश्वर ने, मनुष्य को एकाधिकार दे रखा है। इसलिये व्यक्ति इन तमाम वस्तुओं का व्यक्तिगत हितों के लिये पूर्णतः शोषण कर सकता है। परन्तु प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. अर्नाल्ड टायन्वी पश्चिम की इस अवधारणा को आज के पर्यावरण के विनाश के लिये सर्वाधिक दोषी मानते हैं। वैसे तो विज्ञान की प्रगति ने बाइबिल की अनेक मान्यताओं को चुनौती दी है। किन्तु जब तक न्यूटन के यांत्रिक विश्व की अवधारणा प्रभावी रही, तब तक मनुष्य की सर्वोपरिता को कोई आंच नही आयी। परिणाम यह हुआ कि, विज्ञान के अविष्कारों एवं तकनीकी की सहायता से प्रकृति का अधिक व्यापक एवं निर्मम शोषण

होने लगा। इस सन्दर्भ में एक उदाहरण यहां स्पष्ट किया जा सकता है। जो वास्तविकता को स्पष्ट करता है।

बिट्रेन की संसद में पशुओं के प्रति बरती जाने वाली क्रूरता के विरोध में एक विधेयक लाया गया, जिसे निचले सदन ने तो पारित कर दिया। किन्तु उच्च सदन ने इस विधेयक को निरस्त कर दिया। उस दशा में इस विधेयक को बिट्रेन के सबसे बड़े पादरी 'आर्क विशप ऑफ कैंटरवरी' के पास सम्मति के लिये भेजा गया। उन्होंने इस सन्दर्भ में अपना निर्णय देते हुये कहा कि, 'चूंकि बाइबिल के अनुसार मनुष्य को छोड़कर और सभी वस्तुयें जड़ है। इसलिये पशुओं को मारने में कोई पाप नहीं लगता है।' अतः इस धारणा का परिणाम यह हुआ कि पशु-पक्षियों को मारने के कार्य में व्यापकता आ गई। आज हम जिन बैनिटी बैग, लिपिस्टिक, पाउडर, पर्स तथा सौंदर्य प्रसाधनों का प्रयोग करते हैं। उनके निर्माण के लिये पशु-पक्षियों को क्रूरतम यातनाऐं दी जाती हैं। एक पक्षी 'बिजूका' की आंख को निकालकर उसे पीसा जाता है तथा उससे बनने वाले चूर्ण से स्त्रियों के ओठों में लगने वाले लिपिस्टिक का निर्माण होता है। इस स्थिति का परिणाम यह हुआ है कि, आज इन पशु पक्षियों की १२० प्रजातियां नष्ट हो चुकी है और २४० विनाश के कगार पर है।

इसी प्रकार प्राकृतिक शोषण की गंभीर स्थिति को स्पष्ट करते हुये मैसाच्युसेट्स इन्स्ट्रीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी ने कहा कि अमरीका की जनसंख्या विश्व की जनसंख्या की मात्र ५.६ प्रतिशत है। परन्तु आज के आर्थिक विकास की अंधी दौड़ में, प्रतिस्पर्धा के चलते अमरीका -

- ४२ प्रतिशत अल्यूमिनियम
- ४४ प्रतिशत कोयला
- ३३ प्रतिशत तॉबा
- २८ प्रतिशत लोहा
- ६३ प्रतिशत प्राकृतिक गैस
- ३३ प्रतिशत पेट्रोल ज़न्य पदार्थ
- २४ प्रतिशत टिन

- ३८ प्रतिशत निकल जैसे साधनों को नष्ट कर रहा है। इस सन्दर्भ में विशेष बात यह है कि इनका निर्माण पुनः सम्भव नहीं है।

द्वितीय अवधारणा यह रही है कि व्यक्ति अपने आप से, अपने आसपास के वातावरण से निरंतर जूझ रहा है। फ्रांसीसी तत्वज्ञ रेने देकार्ले ने कहा कि हर व्यक्ति का 'मैं' यानी उस व्यक्ति का 'मन' होता है। उस व्यक्ति के मन का इच्छाओं से सहज संघर्ष चलता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति स्वयं से संघर्ष कर रहा है। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की इच्छायें, आवश्यकतायें भिन्न-भिन्न हैं।

व्यक्ति इस कारण दूसरों से भी संघर्ष कर रहा है। इस प्रकार व्यक्ति, व्यक्ति में, - समाज, समाज में, - राष्ट्र, राष्ट्र में आपस में संघर्ष है। पश्चिम के अर्थशास्त्रियों ने इस संघर्ष की अवधारणा को स्वीकार किया तथा प्रो. कार्ल मार्क्स ने इसी विचार को आगे बढ़ाते हुये अपनी अवधारणा प्रस्तुत की तथा कहा कि बिना हिसांत्मक संघर्ष (क्रांति) के विकास सम्भव नही है। इस पहली एवं दूसरी अवधारणा ने कुछ सिद्धांत प्रतिपादित किये। जो पश्चिम दर्शन के आधारभूत स्तम्भ बने। वे स्तम्भ निम्नांकित ४ वर्गों में वर्गीकृत किये जा सकते हैं -

(अ) अस्तित्व के लिये संघर्ष

(ब) सर्व शक्तिमान का अस्तित्व

(स) प्रकृति का शोषण

(द) वैयक्तिक अधिकार।

(अ) अस्तित्व के लिये संघर्ष -आज के समय की भौतिकवादी अवधारणाऐं इसी जीवन दृष्टि की उपज है। प्रो. एडम् स्मिथ एवं प्रो. लार्ड कींस को पूंजीवाद का मसीहा माना जाता है। इस सन्दर्भ में उनका क्या कहना है। इसे पूंजीवादी व्यवस्था के सन्दर्भ में तथा वर्तमान परिपेक्ष्य में देखना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

प्रो. एडम् स्मिथ का कहना है कि, 'कोई भी भला काम तब तक मत करो, जब तक उससे अपने किसी महत्वपूर्ण कार्य की सिद्धि नही होती है।' इसी प्रकार प्रो. लार्ड जे.एम. कींस ने कहा कि 'आने वाले सौ सालों के लिऐ हम मान लें, इसके अलावा औरो से भी मनवा ले कि बुरा ही अच्छा एवं अच्छा ही बुरा है। क्योंकि बुरे से हमेशा परिणाम प्राप्त होते हैं जबकि अच्छा कभी परिणाम नही देता है। उन्होंने कहाँ

कि लोभ, द्वेष, क्रोध, लालच, सूदखोरी को अभी कुछ समय तक अपना भगवान बनाये रखो। क्योंकि इसी के सहारे तुम गरीबी के लोगदे को पार कर प्रकाश में आ सकोगे।'

इन विचारों को देखने के बाद, सामाजिक परिदृश्य में इनके प्रभाव को देखते हुये नैतिकता, चरित्र, मूल्यों का ह्रास हो रहा हो, व्यक्ति, समाज का पतन हो रहा हो तो क्या कोई आश्चर्यजनक बात है ? इसी प्रकार वैयक्तिकता आज इस सीमा तक पहुंच गई है कि हत्यारे और समलैंगिक भी उसकी आड़ में अपने कार्यों का समर्थन करने लगे हैं तथा सजा से मुक्ति की बात भी करने लगे हैं (काश्मीर में हजारों निर्दोषों के खून से हाथ रंगने वाले सरकार के सामने आत्म समर्पण कर मुक्त हो रहे है, फूलन देवी को उत्तर प्रदेश सरकार ने दोष मुक्त कर दिया है तथा अमेरिका में समलैंगिको ने 'वोट का अधिकार' प्राप्त कर लिया है)।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अपने एकात्म मानववाद दर्शन में स्पष्ट करते हुये कहा कि हिन्दू जीवन दर्शन इनमें से किसी भी जीवन दर्शन (सिद्धांत) से सहमत नहीं है। बल्कि उसके विचार, इन विचारों से पूर्णतः भिन्न हैं। हम 'अस्तित्व के लिऐ संघर्ष' के सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते। हमारे हिन्दू दर्शन के अनुसार एक ही परमतत्व, एक ही ईश्वर इस सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है तथा वही इस विश्व को संचालित करता है। तभी तो हमारे वेदों में कहा गया है कि 'सर्व खलिबंद ब्रह्म' अर्थात एक ही ईश्वर, एक ही शक्ति इस प्रकृति को नियंत्रित कर रही है और वही परम तत्व सहयोग एवं समन्वय से इस प्रकृति को संचालित कर रहा है। जहां तक संघर्ष या परस्पर विरोध का प्रश्न है ? वह तो हमारे अज्ञान, हमारी अशिक्षा का परिणाम है। इस सन्दर्भ में एक रोचक उदाहरण दिया जाता है कि, मानलो किसी अंधेरे कमरे में दो व्यक्ति आपस में टकराते हैं तो वे आपस में लड़ने लगते हैं। परन्तु ज्यों ही अंधकार समाप्त होता है अथवा बिजली आ जाती है तो इस प्रकाश में जब वे एक दूसरे को पहिचानते हैं तो यह संघर्ष स्वतः समाप्त हो जाता है। इस प्रकार व्यक्ति का, समाज का, राष्ट्रों का संघर्ष अज्ञानता का कारण है। अज्ञानता की समाप्ति, इसे स्वतः समाप्त कर देती है।

(ब) सर्व शक्तिमान का अस्तित्व - जिस प्रकार अस्तित्व के लिऐ संघर्ष के सिद्धांत से हम सहमत नहीं है। उसी प्रकार पं. दीनदयाल उपाध्याय ने कहा कि हिन्दू दर्शन 'सर्वोत्तम के अस्तित्व के सिद्धांत' से भी सहमत नहीं है। हिन्दु जीवन दर्शन सभी की अस्तित्व रक्षा का पक्षधर है। तभी तो कहा गया है कि, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः। प्रत्येक व्यक्ति कोई न कोई उद्देश्य लेकर इस विश्व में आता है। अतः उसे उस उद्देश्य

की पूर्ति का अवसर प्राप्त होना चाहिऐ। भौतिकवादी प्राय: कहते हैं कि 'जो कमायेगा सो खायेगा।' परन्तु पं. दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानव दर्शन में इस बात को स्वीकार नही किया बल्कि हिन्दू दर्शन की व्यापकता को स्पष्ट करते हुये कहा कि 'जो जन्मा है वह खायेगा' 'जो कमायेगा सो खिलायेगा'। इस प्रकार 'खुद कमाना एवं खुद खाना' है प्रकृति।

'दूसरों से छीनना एवं खाना है विकृति। तथा

स्वयं कमाना एवं दूसरों को खिलाना है संस्कृति।।'

पं. दीनदयाल जी ने स्पष्ट करते हुये कहा कि, किसी भी संस्कृति की ऊंचाई इस बात से आंकी जाती है कि, उसमें अपने दुर्बल, वृद्ध एवं अपंग व्यक्तियों को खिलाने की कितनी क्षमता है। परिवार में बालक एवं वृद्ध कमाते नहीं। परन्तु उपभोग ज्यादा करते हैं। जबकि इसके विपरीत परिवार के कुछ सदस्य कमाते ज्यादा हैं, जबकि उपभोग कम करते हैं। यह सामन्जस्य इसलिये सम्भव होता है क्योंकि हिन्दू परिवारों में प्रत्येक सदस्य ममता से बंधा होता है। प्रो. कार्ल मार्क्स के सिद्धांत का प्रमुख कथन 'प्रत्येक व्यक्ति से उसकी क्षमता के अनुसार प्राप्त किया जाए एवं प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार दिया जाए।' इस कथन को पूंजीवादी एवं साम्यवादी अर्थ व्यवस्थाओं में देखा जावे तो स्वयं कार्ल मार्क्स का यह सिद्धांत इन व्यवस्थाओं में सफल नहीं हुआ। यदि यह सिद्धांत कहीं प्रभावी अथवा लागू हुआ है तो वह है भारत वर्ष एवं भारत वर्ष में भी हिन्दू परिवार। परिवार ही वह प्रथम विद्यालय है। जहां व्यक्ति ममता एवं स्नेह का प्रथम सबक सीखता है। यही उसे हिन्दू जीवन व्यवस्था की व्यापकता का ज्ञान होता है। पश्चिम की अवधारणा एवं हिन्दू दर्शन के अन्तर को स्पष्ट करते हुये स्वामी विवेकानंद जी ने कहा था कि 'यूरोप में सर्वत्र सबल की विजय एवं दुर्बल की मृत्यु का सिद्धांत प्रचलित है। जबकि इसके विपरीत भारत वर्ष में हर सामाजिक नियम दुर्बल की रक्षा के लिऐ बना है।'

(स) **प्रकृति का शोषण** - पं. दीनदयाल उपाध्याय ने स्पष्ट करते हुये कहा कि, लोगों के भरण-पोषण के लिये, जीवन के विकास के लिये तथा राष्ट्र के विकास के लिये जिन मौलिक साधनों की आवश्यकता होती है उनका उत्पादन अर्थ व्यवस्था का लक्ष्य होना चाहिये। पश्चिम का अर्थ शास्त्र तो इच्छाओं को बराबर बढ़ाते जाने और उनकी निरंतर पूर्ति को अपना एकमात्र लक्ष्य समझता है। इस सन्दर्भ में उसकी कोई अधिकतम मर्यादा नही है। सामान्यतया पहले इच्छा होती थी। फिर इसके बाद

उसकी पूर्ति के साधन जुटाये जाते थे। अर्थात पहले उपभोग की इच्छा होना चाहिये। फिर उत्पादन किया जाता था। किन्तु अब हालत पूर्णतः बदल गये है। आज पश्चिम की गलत अवधारणाओं ने, बढ़ती उत्पादन की मात्रा ने तथा मांग की पूर्ति में असामन्जस्य की स्थिति ने समीकरण ही बदल दिया है। आज सर्वप्रथम उत्पादन किया जाता है। फिर इस उत्पादित वस्तु के लिये उपभोग की प्रवृत्ति को उपभोक्ताओं में जागृत किया जाता है। पहले लोग प्यास लगने पर पानी पीते थे। आजकल कुआँ खोदा जाता है फिर पानी पीने वालों को तैयार किया जाता है। इस सन्दर्भ में निम्नांकित उदाहरण दिये जा सकते हैं -

एक बार बाजार में उत्पादकों के द्वारा वृहद पैमाने पर पेन्सिलीन इंजेक्शन का उत्पादन कर लिया गया। अब इसे बेचने की समस्या पैदा हुई तो उत्पादकों द्वारा अपने विक्रय प्रतिनिधियों को निर्देशित किया गया कि वे चिकित्सकों से मिले एवं पेन्सिलीन के उपभोग हेतु प्रेरित करें। फलस्वरूप हर मर्ज के लिये पेन्सिलीन के प्रयोग की सलाह दी जाने लगी अर्थात आवश्यकता होने पर भी मरीज को पेन्सिलीन लगाया जाए एवं आवश्यकता न होने पर भी।

इसी प्रकार चाय की मांग थी इसलिये इसका उत्पादन एवं उपभोग प्रारंभ नही किया गया। बल्कि चाय पैदा की गई। इसका उत्पादन किया गया। इस उत्पादन की खपत हो इसलिये हमें चाय पीनी सिखाई गई। जब शुरु-शुरु में चाय बाजार में आयी तो व्यक्तियों को मुफ्त में पिलाई गई। परिणाम आज हम चाय के बिना नहीं रह सकते हैं।

इसी प्रकार आलू छीलने के चाकू का उदाहरण दिया जाता है। अमेरिका में स्थित इस कारखाने में एक बार आलू छीलने के इस चाकू का जरूरत से ज्यादा उत्पादन हो गया। अब उत्पादकों के सामने समस्या कि कैसे इसकी पूर्ति की जाये तथा मांग को बढ़ाया जाये। इस सन्दर्भ में विक्रय अभिकर्ताओं की बैठक हुई तो उसमें निर्णय लिया गया कि यदि चाकू का बेंदा आलू के छिलके के रंग का कर दिया जाये तो महिलायें आलू के छिलके के साथ-साथ इसे भी फेंक देगी तथा स्वाभाविक रूप से चाकू की मांग बढ़ने से पूर्ति सरलता से समायोजित हो जायेगी। इस प्रकार बाजार के लिये वस्तु के उत्पादन के स्थान पर, वस्तु के लिये बाजार पैदा किया जाता है। इस प्रकार उत्पादन के बाद उपभोग की परिस्थितियां तैयार की जाती हैं। इस स्थिति के कारण ही अधिउत्पादन (Over Production) की स्थितियां उत्पन्न होती हैं। जिससे

बाजार में व्यापक मंदी की, बेरोजगारी की, मुद्रा स्फीति की स्थितियां उत्पन्न होती है। १९३०-३२ में जर्मनी में जब इस मंदी की स्थिति का निर्माण हुआ था तो बाजार में वस्तुओं की बहुतायत होते हुये भी व्यक्ति उसे प्राप्त करने में असमर्थ था। जर्मनी की 'मार्क मुद्रा' से लोगों का विश्वास उठ गया था। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि उत्पादित वस्तु, उपभोग के अनुसार हो।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने कहा कि उत्पादन का सम्बन्ध प्राकृतिक साधनों से भी होता है। यदि अंधाधुंध उत्पादन बढ़ाते गये तो प्राकृतिक साधन कब तक साथ देंगे ? कुछ व्यक्तियों द्वारा इस सन्दर्भ में बड़ी ही सहजता से कहा जाता है कि यदि एक प्रकार के साधन समाप्त हो गये तो सम्बन्धित साधन के वैकल्पिक रूप खोज लिये जाऐगें। इस तथ्य को स्वीकार कर भी लिया जाये तो यह भी निश्चित सत्य है कि प्रकृति की अपनी मर्यादा है। यदि इसी सिद्धांत पर चलते रहे तो निश्चित पछताने के अलावा कोई विकल्प नही बचेगा। हम प्रकृति से उतना तथा इस प्रकार ले कि वह उस कमी को सरलता से पूर्ण कर दें। पेड़ से फल लेने में कोई हानि नहीं परन्तु यदि अधिक लेने के लालच में आज उर्वरकों का इतनी मात्रा में प्रयोग होने लगा है कि इसके दुष्परिणाम भी सामने आने लगे है। अमेरिका में लाखों एकड़ भूमि का बंजर होना। इस बात का ज्वलंत प्रमाण है। जिस प्रकार उद्योगपति अपने कारखाने में स्थापित यंत्र-सयंत्र के लिये क्षय (Depreciation) की व्यवस्था करता है कि ताकि निश्चित अवधि की समाप्ति के पश्चात पुनः नया यंत्र स्थापित करने में परेशानी न हो तो क्या प्रकृति के इस कारखाने के लिये ह्रास निधि की व्यवस्था नही होनीं चाहिये ? स्वाभाविक है उत्तर हां होगा।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने पश्चिम के उपरोक्त विचार के विपरीत हिन्दू विचार दर्शन को स्पष्ट करते हुये कहा कि, हम प्रकृति के शोषण का समर्थन नहीं करते हैं। हम जानते हैं कि बच्चा मां का उतना दूध पीता है जितना उसके विकास के लिये आवश्यक होता है। हमकों भी प्रकृति से उतना लेना चाहिये जो हमारी आवश्यकताओं के हिसाब से आवश्यक हों। प्रकृति के पास हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये तो साधन है। परन्तु हमारे लोभ पूर्ति के लिये नहीं। हिन्दू दर्शन ने इस पूर्ति के लिये प्रकृति से भी एकात्म भाव (सामन्जस्य) पैदा किया है। हम प्रकृति को माता मानते हैं। धरती को माता, गाय को माता, तुलसी को माता, गंगा, जमुना, सरस्वती, कावेरी, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा जैसी नदियों को माता माना है। हम पीपल, वट इत्यादि को पूजते हैं

तो दूसरी ओर चींटियों को शक्कर खिलाना, मछलियों को दाने देना, सांपो को दूध पिलाना, आदि हिन्दू दर्शन के प्रमुख भाव है। इन भावों को इस लिये पैदा किया ताकि प्रकृति से हमारा सीधा संपर्क हो तथा हम उसका अनावश्यक शोषण न करें। यह भाव हमें अनावश्यक शोषण से रोकता है। हम जिनके प्रति श्रद्धा, आदर या भक्तिभाव रखते हैं। उनका शोषण कदापि नही करते। हिन्दू दर्शन प्रकृति के त्यागपूर्ण ढंग से उपभोग की स्वीकृति देता है। तभी तो कहा गया है कि -

ईशावास्यमिदं सर्व यत्किंच जगत्यां जगत।

तेन त्यक्तेन भुन्जीथाः मागृधः कस्य स्विद्धनम।।

अर्थात इस जगत में जो कुछ भी है सब उस ईश्वर का है। उनका त्यागपूर्वक भोग करें और संग्रह मत करें।

(द) कर्तव्य एवं अधिकार - जहां तक व्यक्ति के वैयक्तिक अधिकार अथवा (कर्तव्य या अधिकार) का प्रश्न है। पश्चिम की अवधारणा मात्र अधिकारों की बात करती है। जहां तक कर्तव्यों का प्रश्न है, इस बात की उपेक्षा ने पश्चिम में व्यापक विसंगतियां पैदा की है। आज अमेरिका जैसे विकसित राष्ट्र में मां पिता बच्चों के कर्तव्यों के प्रति उदासीन है तो माता पिता को वृद्धावस्था में निराश्रित आश्रमों में जीवन यापन करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों को प्राप्त करना चाहता है। परन्तु कर्तव्यों की किसी को कोई चिंता नहीं है।

परन्तु इसके विपरीत विशुद्ध हिन्दू वैयक्तिक अधिकारों में विश्वास नहीं करते हैं। क्योंकि हिन्दू दर्शन दृष्टि के अनुसार व्यक्ति एक बड़ी इकाई का अंग है। वह शेष जगत से अंगागीभाव से जुड़ा है। जैसे हाथ, पैर, आंख, कान आदि शरीर के तत्व हैं। उसी प्रकार यदि हम परिवार को शरीर माने तो उसके सदस्य, उसके तत्व हैं। इसी प्रकार परिवार समाज का, समाज राष्ट्र का, राष्ट्र सम्पूर्ण विश्व या मानव जाति का, मानव जाति प्रकृति का, एवं प्रकृति परमात्मा का अंग है। इस प्रकार व्यक्ति से लेकर परमात्मा तक सभी एक दूसरे से अंगागीभाव से जुड़े है। जहां इस प्रकार का भाव है। वहां अधिकार का प्रश्न ही पैदा नहीं होता है। हाथ, पैर, आंख, कान के अपने कोई व्यक्तिगत अधिकार नहीं है। सभी इस शरीर के लिये अपने कर्तव्यों का पालन कर रहे है। फलस्वरूप शरीर भी इनकी चिंता करता है। महात्मा गांधी ने जगदीश चंद्र बसु को लिखा था कि 'मनुष्य के कोई अधिकार नहीं हैं, उसके केवल

कर्तव्य है।' किन्तु एक के कर्तव्य में दूसरे के अधिकारों की रक्षा का भाव जुड़ा है। उदाहरणार्थ माता-पिता के अधिकारों में बच्चों के अधिकारों की रक्षा है। इसी प्रकार पति-पत्नि, भाई-बहिन, गुरु-शिष्य, शासक-प्रजा, सेवक-स्वामी सभी अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करते हुये, एक दूसरे के अधिकारों की रक्षा करते हैं। यदि अधिकार की बात की जाऐ तो मनुष्य का एक अधिकार है, वह है कर्तव्य करने का अधिकार। इसी बात को भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहां है -

- 'स्वे-स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते-नरः'

अर्थात सब यदि अपना-अपना कर्तव्य करें तो सभी को सिद्धि प्राप्ति होती है। इस प्रकार सम्पूर्ण राष्ट्र एवं मानव जाति का कल्याण होता है।

इस प्रकार पश्चिम की अवधारणाओं का अध्ययन किया जाये तो स्पष्ट है कि इनमें व्यापक विसंगति ने ही वहां विकृतियां उत्पन्न की हैं। तभी तो स्वामी विवेकानंद से जब भगिनी नवोदिता ने प्रश्न पूछा तो आज से १०० वर्ष पूर्व स्वामी विवेकानंद का यह कथन ' कि पश्चिम की जीवन यात्रा एक अट्टहास है। किन्तु इसके पीछे रुदन है। इस रुदन से ही इसकी परिसमाप्ति होगी।' अर्द्ध विकसित, गरीब, पिछड़े राष्ट्रों का शोषण कर, जो समृद्धि विकसित देशों ने प्राप्त की है। उसके परिणाम भी विनाशकारी ही होगें। इस कथन की सत्यता अब स्वयं सिद्ध होने लगी है। अमेरिका जो आज विश्व नेतृत्व की बात करता है, जो समृद्ध होने के साथ-साथ विश्व को नये सूत्र देने की बात करता है। उससे सम्बन्धित कुछ विश्व सूत्रीय आंकड़े उसके खोखलेपन को स्पष्ट करते हैं -

- अमेरिका में ६५ % विवाह तलाक में समाप्त होते हैं। कनाडा में यह ४५ प्रतिशत तथा फ्रांस में २५ प्रतिशत है। बिट्रेन में तलाक की दर यूरोप में सबसे ज्यादा है।

- अमेरिका में हर वर्ष २० लाख नवयुवतियां विवाह से पूर्ण गर्भधारण कर लेती है। यह दुनिया में सर्वाधिक है अर्थात ९८ प्रति हजार।

- अमेरिका में पुरुषों की जितनी मौतें होती हैं, उनमें से ७५ प्रतिशत हत्या, आत्म-हत्या तथा शराब पीकर कार चलाने से होती है।

- अमेरिका में हर २१ मिनिट में एक हत्या, हर १० सेकेंड में एक सेंधमारी हर १६ सेकेंड में एक बच्चे का अपहरण, हर १७ सेकेंड में एक कार चोरी तथा हर ६ मिनिट में एक बलात्कार होता है।

- ८० लाख युवक एवं युवतियां प्रति सप्ताह कम से कम एक बार शराब पीते हैं।

- २ करोड लोग स्नायविक बीमारी के शिकार है। १० लाख छात्र भावात्मक समस्याओं के कारण विद्यालय जाना बंद कर देते हैं।

- ३ लाख से अधिक व्यक्ति प्रति वर्ष आत्म-हत्या का प्रयास करते हैं जिसमें ५६ हजार सफल हो जाते हैं।

- अमेरिका में हर एक लाख में से ४२५ लोग जेलों में बंद हैं। यह विश्व की सर्वाधिक संख्या है।

- अमेरिका में प्रतिदिन ६४ व्यक्ति एड्स की बीमारी से मरते हैं।

इन आंकड़ों को देखे, तो वास्तव में स्वामी विवेकानंद का शताब्दी पूर्व कहा गया यह कथन कितना सत्य है 'कि अट्टहास के पीछे छुपे रुदन को भी देखो'।

ऐसे में पं. दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानव दर्शन, हिन्दू दर्शन ही है जो आज इस पीड़ित, अपमानित, तिरस्कृत विश्व को एक नयी दिशा दे सकता है। इन विकसित देशों को न केवल अपनी आवश्यकताओं को कम करना होगा बल्कि अपनी उच्च जीवन शैली को नीचे उतारना होगा। इन देशों को गरीब एवं पिछड़े देशों के व्यक्तियों के प्रति चिंता एवं वास्तविक प्रेम उत्पन्न करना होगा। यह तभी सम्भव है जब आध्यात्मिकता का सहारा लिया जाये। यह आध्यात्मिक दर्शन उन्हें भारत के अलावा कहाँ प्राप्त होगा। इस सूत्र मात्र से उन समाजों का सामाजिक एवं नैतिक पुनरुत्थान भी सम्भव हो सकता है।

खण्ड - दस

विभिन्न विषयों पर दृष्टिकोण

खण्ड - दस

विभिन्न विषयों पर दृष्टिकोण

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म दर्शन के अलावा भी भारतीय अर्थव्यवस्था से जुड़े विभिन्न विषयों पर अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया। जिसमें कृषि, औद्योगीकरण, शिक्षा, स्वास्थ्य, पूंजी निर्माण, न्यूनतम स्तर आदि विषय महत्वपूर्ण थे। संक्षिप्त में उन विचारों का यहाँ विश्लेषण किया गया है।

कृषि - भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है। यहाँ की ७५ से ८५ प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आधारित है तथा कुल आय का ४४% भाग कृषि आय से प्राप्त होता है। पं. दीनदयाल उपाध्याय का मत था कि कृषि, औद्योगीकरण, व्यापार एवं वाणिज्य, यातायात परिवहन - ये सभी एक दूसरे से जुड़े हुये हैं तथा कृषि के बिना इनके विकास की कल्पना व्यर्थ है। जहाँ तक भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रश्न है प्रथम पंचवर्षीय योजना में तो कृषि पर अपेक्षित ध्यान दिया गया। जिससे अपेक्षित एवं अनुकूल परिणाम अर्थव्यवस्था को प्राप्त हुये। परन्तु इसके बाद आज तक विभिन्न योजनाओं में कृषि पर जितना व्यय एवं ध्यान देना था न देने से अर्थव्यवस्था को महंगाई, मुद्रा स्फीति, अवमूल्यन, घाटे की वित्त व्यवस्था, विदेशी ऋण जैसी गंभीर स्थिति से जूझना पड़ रहा है। पं. दीनदयाल जी का स्पष्ट दृष्टिकोण था कि अर्द्धविकसित राष्ट्रों (Under Development Country) को कृषि क्षेत्र में आत्म निर्भरता प्राप्त किये बिना औद्योगीकरण की सीढ़ी पर कदापि कदम नहीं रखना चाहिये। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री गुन्नार मिरडाल एवं प्रो. जान मेलार जैसे विश्व विख्यात अर्थशास्त्रियों के विचार एवं पं. दीनदयाल जी के विचार में व्यापक एकरूपता थी।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने स्पष्ट करते हुये कहा कि कृषि की उपेक्षा कर, जिन-जिन राष्ट्रों ने आर्थिक विकास का मार्ग तय किया। अपेक्षित औद्योगीकरण भी प्राप्त नहीं हुआ एवं कृषि भी पिछड़ गई। घाना, इंडोनेशिया, ब्रह्मदेश आदि देश इसी श्रेणी में आते हैं। दूसरी पंचवर्षीय योजना में हमने भी इसी दृष्टिकोण को अपनाया, परिणाम विकास के स्थान पर बेकारी एवं दरिद्रता में ही वृद्धि हुई। कोई भी राष्ट्र यदि नियोजित ढंग से नियोजन करें, इसके अलावा प्रकृति की भी सामान्य कृपा हो तो देश खाद्यान के उत्पादन में आत्म निर्भर हो सकता है। ऐसा करना आवश्यक भी होता है। खेती की निरंतर उपेक्षा एवं व्यापक औद्योगीकरण को अपनाने के गंभीर परिणाम

अर्थव्यवस्था को भुगतना पड़ते हैं। इससे कृषि ढांचा प्रभावित होता है तथा स्वावलंबन की अवधारणा भी ढह जाती है। अर्जेंटीना को राष्ट्रपति पेरों के समय यही अनुभव हुआ अर्जेंटीना का कृषि उत्पादन तो घटा ही साथ-साथ मुद्रा स्फीति की व्यापकता ने महंगाई के ग्राफ को अत्यधिक बढ़ाया। जिससे अर्थव्यवस्था में व्यापक असंतुलन उत्पन्न हुआ। इस प्रकार औद्योगीकारण का ढांचा स्वत: ढह गया।

इसी प्रकार वैनेज्यूएला ने अपने तेल के निर्यात से प्राप्त १०० करोड़ पौंड की राशि, विद्युत की पर्याप्त मांग न होते हुये भी जल विद्युत प्रकल्पों में तथा कोयले के न होते हुये भी इस्पात के कारखानों में विनियोजित की। परिणाम यह हुआ कि वैनेज्युएला को अपनी दैनिक आवश्यकता की पूर्ति के लिये विकसित राष्ट्रों के सामने घुटने टेकने पड़े। इस प्रकार बिना कृषि को सुदृढ़ किये, औद्योगीकरण की कल्पना व्यर्थ है। उद्योगों का विकास पूंजी एवं कच्चे माल की आपूर्ति के साथ-साथ ग्राहकों की प्रभावी मांग पर भी निर्भर करता है। हमारे देश में कृषक केवल कच्चे माल का उत्पादक ही नहीं अपितु पक्के माल का खरीददार भी होता है। कृषक की उत्पादन क्षमता में जितनी वृद्धि होगी, उसकी आय भी उसी अनुपात में बढ़ेगी तथा इससे क्रयशक्ति में भी वृद्धि होने से उतनी ही अधिक मात्रा में वह उद्योगों में तैयार होने वाला माल भी खरीद सकेगा।

पं. दीनदयाल जी उपाध्याय स्पष्ट रूप से योजनाओं में कृषि को वरीयता देने के पक्षधर थे। इसके वे विभिन्न कारण स्पष्ट करते थे। कृषि में बहुत कम पूंजी लगा, अधिक से अधिक लोगों को रोजगार से जोड़ा जा सकता है। इसके अलावा कृषि उद्योगों में कम समय में ज्यादा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में प्रो. महालनोबिस द्वारा दी गई सारणी उल्लेखनीय है -

सारणी

क्रमांक विवरण	पूंजी विनियोजित (रूपयों में)	रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की संख्या
१. कृषि उत्पादन	५७,००,०००	४०००
२. उपभोग वस्तुओं का उत्पादन	३३,००,०००	११५०
३. बड़े औद्योगिक प्रकल्प	१९,००,०००	५००

विश्लेषण - उक्त सारणी के विश्लेषण से स्पषट है कि उद्योगों की अपेक्षा कृषि में कम पूंजी विनियोजित कर ज्यादा व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय का स्पष्ट मत था कि देश में व्यापक असंतुलन के उत्पन्न होने का कारण कृषि को गौण स्थान देना है। इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण उदाहरण दिया जा सकता है। देश में कुल कृषि योग्य भूमि का १/४ भाग जिसका निरंतर क्षरण हो रहा है।। वर्ष १९५१ से वर्ष १९७३ (२२ वर्षों के बीच) पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से ४७ करोड़ रुपये खर्च किये गये जबकि इसके विपरीत केवल पांचवी पंचवर्षीय योजना में भिलाई, बोकारो, दुर्गापुर आदि बड़े उद्योगों के विस्तार पर २००० करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया। यदि इस बात को देखा जाये तो स्पष्ट है कि मात्र कम उत्पादन के लिये इतनी बड़ी राशि का विनियोजन कहां तक उचित है ?

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने स्पष्ट करते हुये कहा था कि कृषि के निरंतर पिछड़ने एवं उसकी उपेक्षा की बात काफी पुरानी है। भारत के किसान को एक टन गन्ने के लिये औसतन १५० रुपये मिलते हैं, जो प्रतिकिलो केवल १५ पैसे होता है। जबकि आज कागज की रद्दी का भाव भी ३ से ४ रुपये प्रतिकिलो है। वही राख का भाव ८० पैसे प्रतिकिलो है। सरकार किसान से २५०/- रुपये क्विंटल की दर से गेहूं खरीदती है जबकि इसके विपरीत यही सरकार अमेरिका से गेहूं का आयात ५००/- रुपये से ६००/- रुपये प्रति क्विंटल की दर से करती है। सरकार आज देश के नागरिकों को शक्कर १५ से १७/- रुपये की दर से देती है तो यही सरकार विदेशों को ८० पैसे की दर से शक्कर निर्यात करती है। जो बासुमती चांवल देश में १८ से २५/- उपलब्ध है, वही यही चांवल विदेशों में ५/- से ६/- रु. के मध्य निर्यात होता है। पं. दीनदयाल उपाध्याय का इन विरोधाभासों को देखते हुये स्पष्ट कहना था कि 'कृषि एवं किसान दोनों की दुर्दशा के लिये स्पष्टतः शासन दोषी है।'

पं. दीनदयाल जी कृषि में उन्नत तकनीक के पक्षधर तो थे, परन्तु उस सीमा तक जहाँ तक कृषि एवं रोजगार इससे प्रभावित न हों। भारतीय कृषि एवं किसान को उन्नत तकनीक, वैज्ञानिक उपकरण, अच्छी उर्वरक आदि लाभ मिलें। किन्तु साथ-साथ अर्थव्यवस्था में पड़ने वाले दीर्घकालीन परिणामों की भी व्यापक समीक्षा होनी चाहिये। जो तकनीक अनुकूल हो उसे अपनाना एवं जो प्रतिकूल हो उसे छोड़ देना चाहिये।

वृहद सिंचाई योजनाऐं घातक - पं. दीनदयाल उपाध्याय वृहद सिंचाई योजनाओं, दानवाकार बांधों को अर्थव्यवस्था के अनुकूल नहीं मानते थे। इनसे तात्कालिक लाभ भले प्राप्त होता हो, परन्तु इसके दीर्घकालीन दुष्परिणाम अर्थव्यवस्था को भुगतने पड़ते हैं। परन्तु देश का दुर्भाग्य कि देश के योजना के आयोजकों ने पश्चिमी विचार को स्वीकार करते हुये, निरंतर बड़ी सिंचाई योजनाओं का पक्ष एवं छोटी योजनओं की उपेक्षा की। इस सन्दर्भ में पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'भारतीय अर्थनीति' में १९५१ से १९५६ के दौरान विभिन्न बांध परियोजनाओं एवं कृषि उत्पादन में वृद्धि सम्बन्धी तथ्यात्मक सांख्यिकीय आंकड़े प्रस्तुत किये -

'बड़ी बांध - परियोजनाओं में जहां बजट की ९२ प्रतिशत राशि खर्च हुई तो कृषि उत्पादन केवल ४७ प्रतिशत बढ़ा। जबकि उसी काल में छोटी बांध परियोजनाओं पर ६३ प्रतिशत खर्च हुआ तथा कृषि उत्पादन ९१% प्रतिशत बढ़ा।'

इसी प्रकार रोके गये पानी के सन्दर्भ में स्पष्ट करते हुये उन्होंने कहा कि 'छोटी परियोजनाओं के कारण रोके गये पानी में से ९५ प्रतिशत पानी का उपयोग खेती के कार्य में हो रहा है, जबकि बड़ी बांध परियोजनाओं में केवल ५५ प्रतिशत पानी का प्रयोग ही हो रहा है।'

पं. दीनदयाल जी ने स्पष्ट करते हुये कहा कि बड़ी सिंचाई योजनाओं में भूमि को पानी मिलता है, उसके नीचे पानी का तल थोड़े ही दिनों में ऊंचा उठ जाता है। इस प्रकार भूमि के नीचे बढ़ जाने के कारण भू गर्भ के विविध क्षार भू-तल के ऊपर आ जाने से खेती योग्य भूमि धीरे-धीरे बंजर होने लगती है। वृहद सिंचाई योजनाओं से एक व्यापक समस्या और उत्पन्न होती है। वह है पानी के निकासी की समस्या ? भूमि की पानी को सोखने की क्षमता धीरे-धीरे कम होने लगती है। इसके फलस्वरूप जब वर्षा होती है तो चूंकि भूमि की जल सोखने की क्षमता कम रहती है इससे आस पास के क्षेत्रों में पानी फैलने लगता है एवं बाढ़ की स्थिति निर्मित होने से गंभीर प्राकृतिक संकट खड़ा हो जाता है पंजाब के भटिण्डा, अमृतसर, फिरोजाबाद, गुरुदासपुर तथा उत्तरप्रदेश के मुजफ्फरनगर, मिर्जापुर, गाजीपुर जिलों में बाढ़ की इस प्रकार की गंभीर स्थिति के उत्पन्न होने का यही कारण है।

वृहद बांध परियोजनाओं के कारण दलदली भूमि का निर्माण होता है। प्रायः इस प्रकार की स्थितियों को देखते हुये भूगर्भ शास्त्रियों का कहना है कि भूकंप की परिस्थितियाँ निर्मित होती हैं। भाखड़ा नंगल परियोजना, बरगी बाँध परियोजना, बाण

सागर परियोजनाओं ने इन प्राकृतिक प्रकोपो को उत्पन्न करने का आधार तैयार किया है। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य बड़े बाँधों के सन्दर्भ में यह दिया जाता है कि, ये योजनाऐं पूंजी प्रधान योजनाऐं होती हैं। उन पर होने वाला व्यय निरंतर बढ़ता जाता है।। फिर भ्रष्टाचार, अफसरशाही, समय विलंब आदि इन व्ययो में काफी वृद्धि कर देता है। इसके अतिरिक्त विदेशी निर्भरता, विदेशी तकनीक, विदेशी तकनीशियनों की निर्भरता इन योजनाओं में इतना विलंब कर देती है कि अर्थव्यवस्था का वित्तीय ढांचा असंतुलित हो जाता है। जबलपुर की बरगी बांध परियोजना इसका ज्वलंत प्रमाण है कि विगत २५ वर्षों के उपरांत भी योजना अधूरी है। अभी तक सिंचाई सम्बन्धी कार्य प्रारंभ नहीं हुआ। अभी भी नहरों के निर्माण का कार्य अधूरा है। जबकि योजना में अरबों रुपये खर्च किये जा चुके हैं। इसके विपरीत छोटी बांध परियोजनाओं में खर्च भी कम रहता है, वित्तीय साधन आंतरिक स्त्रोंतों से सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं, समय पर योजना पूर्ण होने से योजना व्यय बढ़ने की संभावना कम रहती है तथा कृषक को तत्काल लाभ होने से राष्ट्रीय उत्पादकता में तीव्र गति से वृद्धि होती है। पं. दीनदयाल जी ने अपनी पुस्तक भारतीय अर्थनीति में छोटे बांधों की महत्ता को स्पष्ट करते हुये कहा कि-

'भारत सरकार ने पश्चिम के देशों की नकल करते हुये, खेती के लिये पानी हेतु दैत्याकार बांध बनाने के कार्यक्रमों को हाथ में लिया, परन्तु सभी दृष्टियों से विचार किया जाये तो छोटी बांध परियोजनायें ही भारतवर्ष के लिये उपयुक्त है।'

इस देश का दुर्भाग्य कहा जायेगा कि पं. दीनदयाल उपाध्याय के इन विचारों की उपेक्षा की गई। भारतवर्ष के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू का समाजवाद, औद्योगीकरण, नियोजन के प्रति इतना व्यापक मोहजाल था कि वे निरंतर कृषि एवं सम्बन्धित लघु उद्योगों की उपेक्षा करते रहे। जबकि सभी दृष्टियों से यह सिद्ध किया जा चुका है कि भारत वर्ष की औद्योगिक परिस्थितियों के अनुसार छोटी बांध परियोजनाऐं सर्वोत्तम एवं लाभप्रद हैं। श्री भारत डोगरा ने १९ अप्रेल १९९२ में 'इंडियन एक्सप्रेस' में लेख लिखते हुये कहा कि -

'लगभग ६० लाख हेक्टेयर भूमि पानी इकट्ठा होने के कारण प्रभावित हुई है। ४५ लाख हेक्टेयर भूमि में लवणों की मात्रा में वृद्धि हुई है तथा २५ लाख हेक्टेयर भूमि में क्षारीयता आ गई है।' श्री डोगरा ने स्पष्ट करते हुये कहा कि इन वृहद परियोजनाओं में विनियोजित पूंजी भी वसूल नहीं हो पाती है। इन बांधों के पानी का लाभ जिन भूमियों को प्राप्त है, उनकी उत्पादन क्षमता वैसे ही कम है तथा प्रति हेक्टेयर

केवल १.७ टन कृषि उत्पादन सम्भव हो पा रहा है। श्री भारत डोगरा के उक्त कथन की सत्यता छठी पंचवर्षीय योजना की समीक्षा मे सरकार द्वारा स्वीकार की गई थी। जो स्पष्ट करता है कि वृहद परियोजनाओं की अपेक्षा छोटी योजनाऐं ज्यादा अच्छी हैं।

पं. दीनदयाल जी उपाध्याय ने वृहद परियोजनाओं के सन्दर्भ में स्पष्ट करते हुये कहा कि, इन परियोजनाओं की पूर्णता विकसित राष्ट्रो, विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि संस्थाओं के वित्तीय सहयोग पर निर्भर रहती है। परिणामस्वरूप निर्धन या अर्द्धविकसित राष्ट्रों की स्थिति 'सांप छछूंदर' जैसी हो जाती है। विकसित राष्ट्रों पर निर्भरता के कुछ उदाहरण समझने योग्य हैं -

(१) पाकिस्तान में सिंधु नदी पर बनाये तरबेला बांध के निर्माण के लिये विश्व बैंक की सहायता के नाम पर इटली, फ्रांस, जर्मनी आदि विकसित राष्ट्रों के बांध निर्माण करने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने करोड़ों रुपयों के ठेके प्राप्त किये। जहाँ इस स्थिति ने पाकिस्तान के स्वावलंबन को समाप्त किया, वहीं दूसरी ओर देश के राष्ट्रीय उत्पादन की दीर्घकालीन उत्पादकता का ह्रास किया।

(२) श्री लंका में धीरे-धीरे एक हजार बांधों की आवश्यकता बतलाई गई। चूंकि छोटे-छोटे बांधों के निर्माण से बहुराष्ट्रीय कंपनियों को कोई लाभ नहीं था। अतः बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हित चिंतकों (दलालों) ने श्री लंका की संसद में एक वर्ग विशेष को तैयार किया, उनसे बड़े बांधों की औचित्यता प्रतिपादित कराई गई। बड़ी मात्रा में विदेशी ऋण स्वीकृत कराये गये एवं आवश्यकता न होते हुये भी महावेला बंदरगाह पर बांध बनवाया गया।

(३) मध्यप्रदेश के जबलपुर जिले की बरगी बांध परियोजना, होशंगाबाद जिले की तवा बांध परियोजना का अनुभव भी इन्हीं राष्ट्रों जैसा है। करोड़ों-अरबों रुपयों की पूंजी विनियोजन के बाद भी अभी तक न तो पूर्ण रूप से सिंचाई सम्बन्धी सुविधा उपलब्ध हुई है, लाखों एकड़ उत्पादक भूमि डूब में आ गई है, जो भूमि की पूर्व उत्पादकता थी। इन परियोजनाओं के बाद उत्पादकता में गिरावट आई है। इस तथ्य को, इसकी सत्यता को विश्व बैंक के भूतपूर्व अध्यक्ष राबर्ट मेकनामारा ने स्वीकार किया। परन्तु दुर्भाग्य की भारत सरकार इसे स्वीकार करने को कतई तैयार नहीं है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने छोटी बांध परियोजनाओं की आवश्यकता एवं महत्ता को न केवल स्वीकार किया, अपितु स्पष्ट करते हुये कहा कि, 'छोटी बांध परियोजनाओं में यदि १० रुपये की पूंजी लगाई जाय तो उससे ५ श्रम दिवस (दिहाड़ी) तथा अप्रत्यक्ष रूप से २-४ श्रम दिवसों के काम (आजीविका) का निर्माण होता है। जबकि इसके

विपरीत यदि इसी १० रुपये की पूंजी का विनियोजन बड़ी बांध योजनाओं में किया जायें तो प्रत्यक्ष रूप से १ श्रम दिवस तथा ३ श्रम दिनों (आजीविका) का निर्माण होता है।

इन बातों से स्पष्ट है कि वृहत सिंचाई परियोजनायें भारतीय अर्थव्यवस्था के अनुकूल नहीं है। हमें अपनी भौगोलिक परिस्थिति, किसान की स्थिति आदि को दृष्टिगत रखते हुये छोटी-छोटी योजनाओं, स्टापडेम, छोटे बांधों के निर्माण को प्राथमिकता देनी होगी तभी कृषि उद्योगों का विकास सम्भव है अन्यथा हम जहां है, वहां भी शायद न रहें।

उर्वरकों के प्रयोग की समस्या- पं. दीनदयाल जी कृषि के लिये उर्वरकों के प्रयोग को महत्वपूर्ण तो मानते थे, परन्तु उनका स्पष्ट कहना था कि इनका प्रयोग सोच समझकर, देश की कृषि की आवश्यकता को देखते हुये किया जाना चाहिये। यदि आवश्यकता है तो भी भूमि का सही परीक्षण कर, उत्पादन की प्रणाली, पानी के साधनों का विचार करने के बाद समुचित मात्रा में उर्वरक का प्रयोग किया जाना चाहिये। वर्तमान समय हमारे देश में कृत्रिम उर्वरकों के प्रयोग की मात्रा में वृद्धि हुई है। इन कृत्रिम उर्वरकों के प्रयोग से तात्कालिक रूप से तो कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है। इनका प्रयोग धीरे-धीरे आवश्यकता बन जाता है तथा बाद में भूमि धीरे-धीरे बंजर होने लगती है। इससे कृषि उत्पादन घटने लगता है। अतः ऐसे उर्वरकों का प्रयोग कम मात्रा में तथा देशी खाद-बीज का प्रयोग किया जाना चाहिये। जो कृषि उत्पादन को बनाये भी रखता है तथा भूमि की उर्वरा शक्ति को नष्ट भी नहीं होने देता है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने स्पष्ट करते हुये कहा कि भारत वर्ष में सबसे ज्यादा पशुधन है। इस पशुधन से लगभग ८ लाख टन गोबर प्राप्त होता है। इससे आधा गोबर कंडे बनाकर जलाने के काम में आता है। यदि इस गोबर को जलाने की प्रथा को समाप्त कर गोबर गैस संयंत्र लगाकर ईंधन एवं खाद के रूप में दोहरा उपयोग होना चाहिये। इस कार्य के फलस्वरूप जहां एक ओर हजारो गावों में ईंधन की समस्या का समाधान होगा, वहीं दूसरी ओर कृत्रिम विदेशी रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से होने वाला भूमि का क्षरण भी स्वतः समाप्त हो जायेगा।

पं. दीनदयाल जी ने स्पष्ट करते हुये कहा कि रासायनिक उर्वरकों के मिट्टी की उर्वरता पर होने वाले दुष्परिणाम धीरे-धीरे सभी देशों द्वारा अनुभव किये जाने लगे हैं रासायनिक एवं वृहद सिंचाई योजनाओं तथा पानी के निरंकुश प्रयोग ने अमेरिका

की लाखों हेक्टेयर योग्य कृषि भूमि को बंजर कर दिया है। हमारे देश में महाराष्ट्र के सतारा, सांगली, कोल्हापुर, आदि जिलों में भी अमेरिका जैसी स्थिति का निर्माण होने लगा है। अभी वर्तमान में नाइजीरिया द्वारा अपने देश में आधुनिक उर्वरकों के प्रयोग को पूर्णतः प्रतिबंधित कर दिया है। इस प्रतिबंध का परिणाम यह हुआ है कि नाइजीरिया के राष्ट्रीय कृषि उत्पादन में लगभग ७ गुनी वृद्धि हुई है। इन तमाम बातों से स्पष्ट है कि भारत वर्ष के लिये, भारतीय कृषि के लिये, तथा उसके दीर्घकालिक हितों के लिये यही सर्वोत्तम एवं एकमेव रास्ता होगा कि हम देशी खाद-बीज का प्रयोग कर कृषि को उन्नत करें।

कृषि एवं पशुधन का सम्बन्ध- पं. दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय कृषि एवं ग्रामीण कृषक के लिये पशुधन (गाय-बैल-भैंस आदि) को एक दूसरे का पूरक माना है। उनके अनुसार बिना पशुधन के भारतीय कृषि की कल्पना ही व्यर्थ है। जिस प्रकार गोबर खाद का प्रश्न पशुधन के साथ स्पष्टतः जुड़ा है। उसी प्रकार से 'हल या ट्रेक्टर' का प्रश्न भी पशुधन से सम्बन्धित है। दोनों एक दूसरे के पर्याय है। हमारे देश की विशेष सांस्कृतिक परंपरा में कृषि प्रणाली का विचार कर गोवंश की रक्षा की जाये। इस बात को पं. दीनदयाल उपाध्याय ने सर्वोच्च प्राथमिकता दी है।

उन्होंने इस सन्दर्भ में स्पष्ट करते हुये कहा कि, 'भारतवर्ष में खेतों के आकार अत्याधिक छोटे-छोटे हैं,' अतः यांत्रिक पद्धति से अथवा ट्रेक्टर इत्यादि से खेती करना सम्भव ही नहीं है। यदि ट्रेक्टर का प्रयोग किया जाता है तो कृषक का पशुधन हल एवं बैल की उपयोगिता धीरे-धीरे समाप्त हो जायेगी। जिससे देश में प्राकृतिक खाद एवं ईंधन की समस्या गंभीर हो जायेगी। अतः हल एवं बैल भारतीय कृषि के जीवन आधार है।

प. दीनदयाल उपाध्याय ने स्पष्ट करते हुये कहा कि हमारे देश में खेती के लिये प्रति हेक्टेयर ३६ अश्व शक्ति ऊर्जा प्रयुक्त होती है। इसमें यंत्रशक्ति, मनुष्य शक्ति, पशु शक्ति सभी का समावेश है। इसमें से ५०.८ प्रतिशत ऊर्जा बैल एवं अन्य पशुओं से प्राप्त होती है। इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि भारत वर्ष में गोबर खाद तथा गोबर गैस (ईंधन) उपलब्ध कराने की कितनी शक्ति पशुधन में विद्यमान है। अतः किसी भी दशा में भारतीय पशुधन के औचित्य को नकारा नहीं जा सकता है। दुर्भाग्य वश वर्तमान योजना के आयोजक इन महत्वपूर्ण तथ्यों की उपेक्षा कर रहे हैं, जो अपने हाथ पैरों में कुल्हाड़ी मारना कहा जायेगा।

औद्योगीकरण- पं. दीनदयाल उपाध्याय ने औद्योगीकरण के सन्दर्भ में भी विचार करते हुये, इसके औचित्य को प्रतिपादित तो किया, परन्तु यह स्पष्ट संकेत दिया कि, इसे भारतीय अर्थव्यवस्था की परिस्थितियों की सीमाओं को ध्यान में रखना होगा। औद्योगीकरण शब्द की उत्पत्ति 'उद्योग' शब्द से हुई है। जिसका सामान्य अभिप्राय वस्तु अथवा सेवा के निर्माण से लगाया जाता है। यदि स्पष्टता से देखा जाये तो व्यक्ति, किसी वस्तु का सृजन नहीं कर सकता। वास्तव में वह अपनी बुद्धि से वस्तु का रूपांतर कर उसकी उपयोगिता बढ़ा देता है। वर्तमान सन्दर्भ में उद्योग का अर्थ विज्ञान एवं तकनीकी सहायता से नवीन उपयोगिताओं अथवा मूल्यों के निर्धारण से लगाया जाता है। जब उद्योगों की श्रृंखला व्यापक रूप धारण कर लेती है, तो यह एक प्रक्रिया बन जाती है। जिसे औद्योगीकरण कहते हैं।

यदि अर्थव्यवस्था में औद्योगीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाये तो इससे अर्थव्यवस्था में व्यापक परिवर्तन की स्थितियां निर्मित होती है यथा-राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि, रोजगार साधनों में वृद्धि, बचत एवं विनियोग आदि स्थितियां परिलक्षित होती है। औद्योगीकरण को परिभाषित करते हुये प्रो. पी.फ़ांग-चांग ने कहा कि,

'औद्योगीकरण वह प्रक्रिया है। जिसमें उत्पादन कार्यों में क्रमबद्ध परिवर्तन होते रहते हैं। इसके अंतर्गत वे आधारभूत परिवर्तन आते हैं, जो किसी उपक्रम के यंत्रीकरण, नवीन उद्योगों के निर्माण, नये बाजार की स्थापना तथा किसी क्षेत्र के विदोहन से होता है। औद्योगीकरण वास्तव में पूंजी को गहन एवं व्यापक बना देने की प्रक्रिया है।

पं. दीनदयाल जी ने स्पष्ट करते हुये कहा कि कृषि के बाद हमें निश्चित रूप से उद्योगों का विचार करना होगा। औद्योगीकरण किये बिना जीविका के लिये पूर्णतः खेती पर निर्भर रहने वाले व्यक्तियों की संख्या कम नहीं हो सकेगी। खेती पर पड़ने वाले आवश्यकता से अधिक बोझ को कम करने के लिये ही नहीं अपितु खेती का समुचित विकास हो। इस कारण भी औद्योगीकरण आवश्यक हो जाता है। भारत वर्ष के गांवों में कुछ दिन तो पूर्ण रोजगार के दिन होते हैं जबकि संपूर्ण परिवार के व्यक्ति कृषि कार्य में संलग्न रहते हैं। जबकि इसके विपरीत कुछ दिन ऐसे होते हैं जबकि व्यक्ति के लिये कोई कार्य नहीं होता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि भारतीय कृषि- अर्द्ध बेरोजगारी की स्थिति को उत्पन्न करती है। यदि औद्योगीकरण के लिये स्वस्थ्य नौजवानों को गांवों से शहर स्थानांतरित कर दिया जाये। तो कृषि पूर्णतः नष्ट

हो जायेगी। इससे देश की अर्थ व्यवस्था एवं उसका ढांचा चरमरा जायेगा। पं. दीनदयाल जी ने कहा कि ऐसी परिस्थिति में हमें ग्रामीण लोगों को उनके गांवों में धीरे-धीरे उद्योगों का निर्माण करना होगा ताकि खाली समय उन्हें रोजगार प्राप्त हो तथा खेती का कार्य भी न पिछड़े।

पं.दीनदयाल उपाध्याय ने कहा कि औद्योगीकरण बढ़ती हुई जनसंख्या की प्रतिदिन की उपयोगी आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति करता है। इसके अलावा विदेशों में हमारी निर्भरता को कम करके स्वावलंबी भी बनाता है। औद्योगीकरण का विचार करते समय बड़े एवं छोटे उद्योगों का अनुपात, उनका कार्यक्षेत्र, आपसी सम्बन्ध, गुण दोष आदि अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं। विकासशील देशों की मिश्रित अर्थव्यवस्था में बड़े एवं छोटे दोनों उद्योगों को महत्व दिया जाता है। परन्तु पं. दीनदयाल उपाध्याय का स्पष्ट मत था कि भारतीय अर्थव्यवस्था के लिये मुख्य बल छोटे उद्योगों पर होना चाहिये। क्योंकि इसकी स्थिति इन्हीं पर आधारित है। पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा औद्योगीकरण के सन्दर्भ में प्रतिपादित कुछ बातें मुख्य है।

(अ) वृहद उद्योगों की स्थापना का अभिप्राय है छोटे उद्योगों का नष्ट होना?

(ब) यदि वृहद उद्योगों की स्थापना होती है तो यंत्रीकरण की, इस प्रक्रिया से बेरोजगारी में और ज्यादा वृद्धि होती है।

(स) छोटे उद्योगों की तुलना में बड़े उद्योगों में लगी पूंजी का गुणक प्रभाव कम होता है।

(द) भारतीय अर्थ व्यवस्था श्रम प्रधान अर्थव्यवस्था है। अतः खेती के लिये बड़े पैमाने पर व्यक्तियों की आवश्याकता होती है। गांवों का श्रमिक गांव छोड़कर उद्योगों के लिये शहर आता है। इससे खेती दुरावस्था को प्राप्त होती है।

(इ) औद्योगिक केंद्रीयकरण (Industrial Centraligation) के कारण परिवहन लागतों में वृद्धि होती है। इससे उत्पादन व्यय बढ़ने से कच्चे एवं पक्के माल की कीमतों में वृद्धि होने से, व्यापक असंतुलन उत्पन्न होता है। जिसका परिणाम अंततः कीमत वृद्धि होता है।

औद्योगिक उत्पादन के प्रकार- पं. दीनदयाल उपाध्याय ने औद्योगिक उत्पादन के सन्दर्भ में स्पष्ट करते हुये कहा कि इसके अंतर्गत २ प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन होता है यथा (अ) उपभोग वस्तुयें एवं (ब) उत्पादक वस्तुयें।

जिन वस्तुओं का हम प्रत्यक्ष में उपभोग करते हैं, उन्हें उपभोग वस्तुयें और जिन वस्तुओं का उपभोग, उपभोग्य, वस्तुओं के उत्पादन के लिये किया जाता है, उन्हें उत्पादक वस्तुयें कहा जाता है। उदाहरण के लिये यदि कपड़ा उपभोग वस्तु है तो कपड़े को तैयार करने वाले यंत्र उत्पादक वस्तु की श्रेणी में माने जायेंगे।

पं. उपाध्याय जी ने स्पष्ट करते हुये कहा कि किसी अर्थव्यवस्था में आवश्यक उपभोग वस्तुओं के निर्माण के लिये आवश्यकता से अधिक उत्पादक वस्तुओं का निर्माण करना पड़ता हो तथा नियोजन की गलत दिशा एवं त्रुटिपूर्ण कार्यवाही के कारण धन सत्ता का केंद्रीय-करण होने से विलासितापूर्ण वस्तुओं का उत्पादन अधिक होता है। इससे अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले परिणाम सकारात्मक नहीं होते हैं। अंततः वे घातक परिणाम देते हैं। इसी प्रकार जिस अर्थव्यवस्था में गरीब वर्गों के व्यक्तियों की क्रय शक्ति बढ़ाने को प्रधानता नहीं दी जाती है। उससे व्यापक असंतुलन उत्पन्न होता है तथा अर्थव्यवस्था काफी पिछड़ जाती है। अतः व्यक्तियों की क्रय शक्ति में वृद्धि अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है। उत्पादक वस्तुओं का उत्पादन इस ढंग से किया जाना चाहिये ताकि जीवनोपयोगी वस्तुओं के उत्पादन में निरंतर वृद्धि हो। इसके अलावा छोटे-छोटे उद्योगों का विस्तार कर ग्रामीण-अंचलों में समृद्धि का प्रयास होना चाहिये। इस सन्दर्भ में पं. दीनदयाल जी ने स्पष्ट करते हुये कहा कि -

'इस प्रकार बढ़ायी गई क्रय शक्ति अपने गुणक प्रभाव से अनेक उद्योगों एवं संपूर्ण अर्थव्यवस्था को गतिशील करती है। इससे अर्थ व्यवस्था में राष्ट्रीय आय एवं राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होती है, जो अंततः अर्थव्यवस्था को आत्म निर्भरता की स्थिति प्रदान करती है।'

पं.दीनदयाल जी ने भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति को स्पष्ट करते हुये कहा कि हम राष्ट्रीय आय का उत्पादन वृद्धि का प्रयास तो करते हैं जबकि राष्ट्रीय कल्याण की उपेक्षा की जाती है। उदाहरण के लिये हमारे देश में स्टैण्डर्ड, फियेट, एवं एम्बेसडर ३ प्रकार के कारों के निर्माण के कारखाने हैं -

उनकी उत्पादन क्षमता में से मात्र २०% का प्रत्यक्ष उपयोग होता है। ऐसी स्थिति में सरकारी कोष से ८०० करोड़ रुपये देकर बंद पड़ा मारुति का कारखाना फिर प्रारंभ किया गया है। इस कारखानों में कारों के निर्माण से राष्ट्रीय आय एवं उत्पादन में निश्चित वृद्धि होगी। परन्तु गहनता से देखा जाये तो गरीब व्यक्ति को कोई

लाभ नहीं होगा अर्थात राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ने पर पर भी राष्ट्रीय कल्याण घटेगा। अतः पं. दीनदयाल जी का कहना था कि हमें पश्चिम की अवधारणों को सीमित रखकर छोटे-छोटे उद्योगों को बढ़ाना होगा। विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया को बढ़ाना होगा तथा श्रम प्रधान तकनीक को अपनाना होगा। तभी अर्थव्यवस्था का विकास सम्भव है।

पं. दीनदयालजी ने भारतीय अर्थव्यवस्था एवं योजना आयोजकों के गलत प्राथमिकताओं के निर्धारण के दुष्परिणाम को उल्लेखित करते हुये कहा कि, योजना का क्रम गलत होने एवं उपभोग वस्तुओं का उत्पादन पिछड़कर, उत्पादक वस्तुओं के उत्पादन को वरीयता मिलने तथा विलासितापूर्ण वस्तुओं के निर्माण पर कोई नियंत्रण न होने के कारण हमारे यहां उत्पादन क्षमता का दुरूपयोग किया गया। मुद्रा स्फीति के कारण सच्चे किसान एवं अच्छे उत्पादकों को कोई रुचि नहीं है। सटोरियों, दलालों, की संख्या में निरंतर वृद्धि हुई है। इसके अनेकानेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। गन्ना पैदा करने वाले किसानों को उसके उचित माल का भाव न देते हुये उन्हें ऋण के बोझ में निरंतर दबाया जाता रहा है। इस आधार पर ही देश का चीनी उद्योग आज खड़ा हुआ है। चीनी उद्योग की प्राप्त आय को ग्रामीण क्षेत्रों में व्यय नहीं किया जाता बल्कि देशी मदिरा, बीयर, व्हिस्की का अत्याधिक उत्पादन बढ़ा है। १९६४ में बीयर का उत्पादन ५४ लाख लीटर था जो १९७४ में बढ़कर ४ करोड़ लीटर तक पहुंच गया है इस बीच यदि देखा जाये तो बच्चों के लिये दुग्ध पाउडर और उससे सम्बन्धित बनने वाले पदार्थों का उत्पादन निरंतर घटा है। जबकि इनके दामों में २ से ३ गुना वृद्धि हुई है। गरीबों के लिये सूती कपड़ों का उत्पादन एक ओर नाममात्र को बढ़ा तो दूसरी ओर टेरीलिन, टेरीवूल जैसे कपड़ों का उत्पादन काफी बढ़ा है। माल ढोने के लिये ट्रक्स एवं यात्री गाड़ियों की अपेक्षा जीप एवं कारों का उत्पादन बढ़ा है। सामान्य व्यक्ति के लिये घर बनाने के लिये आवश्यक ईंट, रेत, गिट्टी, सीमेंट, उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं हुई जबकि अमीर वर्ग की विलासितापूर्ण वस्तुओं कूलर,फ्रिज, टीवी, का सर्वत्र उत्पादन बढ़ा है। आज भी देश की ४६ प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की जीवनरेखा के नीचे रहकर जीवन यापन कर रही है। लगभग ३ लाख से ज्यादा गांवों में पीने के पानी की सुविधा का अभाव है। परन्तु इसके विपरीत कोका कोला, लिमका, थम्सअप के विक्रय में निरंतर वृद्धि की जा रही है। इन परिस्थितियों को परिवर्तित करना होगा। क्योंकि यदि राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ते हुये, राष्ट्रीय कल्याण घटता है तो माना जायेगा कि आयोजकों की योजना में व्यापक त्रुटिया हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था के अनुकूल प्रणाली का चयन - पं. दीनदयाल जी ने औद्योगीकरण तथा भारतीय अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में स्पष्ट करते हुये कहा कि आखिर भारतीय सन्दर्भ में कौन सी प्रणाली श्रेष्ठ है? प्रायः अर्थ व्यवस्थाओं में २ प्रणालियां प्रचलित हैं -

१. पूंजी प्रधान तकनीक एवं

२. श्रम प्रधान तकनीक।

पूंजी प्रधान तकनीक से अभिप्रायः उस प्रणाली से होता है। जिस प्रणाली में पूंजी की प्रधानता होती तथा इस प्रकार की प्रणाली में प्रायः यंत्रीकरण अथवा मशीनीकरण का प्रभुत्व होने के कारण, श्रम की अल्प मात्रा में कार्य-प्रारंभ हो जाता है। प्रायः विकसित अर्थव्यवस्थाओं में जहां श्रम की पूर्ति कम होती है। वहां इस प्रणाली का प्रयोग ज्यादातर किया जाता है।

इसी प्रकार श्रम प्रधान तकनीक से अभिप्राय उस प्रणाली से होता है। जहां श्रम को प्रमुखता दी जाती है तथा पूंजी का स्थान प्रायः गौण होता है। अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं में जहां श्रम अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है। इस प्रणाली का प्रयोग मुख्यतः लाभ-प्रद माना जाता है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने स्पष्ट करते हुये कहा कि भारतीय अर्थव्यवस्था में भी प्रायः दोनों प्रणालियों को प्रयोग किया जाता है। लेकिन जहां तक अनुकूलता एवं श्रेष्ठता का प्रश्न है। श्रम प्रधान तकनीक (प्रणाली) ज्यादा उपयुक्त है। भारतीय अर्थव्यवस्था में श्रम की पूर्ति, मांग की तुलना में ज्यादा है। अतः यदि पूंजी प्रधान तकनीक का प्रयोग किया जाता है तो इससे श्रम की पूर्ति में और अधिक वृद्धि होने से, बेरोजगारी के बढ़ने की संभावनायें ज्यादा होती है एवं व्यापक असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होती है। अतः श्रम प्रधान तकनीक का अपनाया जाना उचित एवं व्यवहारिक होगा। प्रायः अर्द्ध विकसित राष्ट्र, विकसित देशों की नकल कर स्वयं अपने लिये समस्यायें उत्पन्न कर लेते हैं। इस सन्दर्भ में रोचक उदाहरण दिया जा सकता है। विकसित राष्ट्र (अमेरिका) में क्योंकि श्रम की मांग की तुलना में पूर्ति कम है अतः वहां यंत्रीकरण, मशीनीकरण, कम्प्यूटर का प्रादुर्भाव हुआ एवं अधिकांश कार्य-मशीनों के माध्यम से किया जाता है। श्रम की कमी को देखते हुये विवाह एवं अन्य कार्यक्रमों में 'बफे सिस्टम' का प्रादुभाव हुआ। अर्थात बिना नौकरों के खाने-पीने का कार्य स्वयं

किया जाये। अब चूंकि अमेरिका में श्रम की कमी से यह प्रणाली उपयुक्त कही जायेगी परन्तु दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति कि भारत समेत अनेक विकासशील देशों में जहां श्रम की बहुलता है। इस प्रणाली को अपनाया जा रहा है। अर्थात वैसे ही बेरोजगारी है। इससे ओर ज्यादा बेरोजगारी बढ़ जाती है। इस प्रकार प्राथमिकताओं का गलत निर्धारण भी अर्थव्यवस्था में विषम परिस्थिति उत्पन्न करता है। भारतीय अर्थव्यवस्था मुख्यतः खेती पर आधारित है। यहां कि अधिकांश जनसंख्या खेती पर निर्भर है तथा वर्ष के अनेक दिन किसान खाली रहता है। अतः पं. दीनदयाल जी का स्पष्ट मत था कि हमें श्रम प्रधान तकनीक को प्राथमिकता देनी चाहिये ताकि हमारे देश के अधिकतम श्रम का सदुपयोग हो। हमें अनावश्यक मशीनीकरण से बचना चाहिये। क्योंकि बढ़ता हुआ यंत्रीकरण श्रम के आधिक्य में वृद्धि करता है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने स्पष्ट करते हुये कहा कि यह देश का दुर्भाग्य है कि भारतीय अर्थव्यवस्था की इस सामान्य बात को न समझते हुये, योजना के आयोजकों ने पूंजी प्रधान तकनीक (व्यापक औद्योगीकरण, मशीनीकरण) आदि का सहारा लिया। इससे देश में व्यापक मुद्रास्फीति, व्यापक मंहगाई, व्यापक गरीबी जैसी गंभीर स्थितियों का जन्म हुआ। आज देश में निरंतर बेरोजगारी में वृद्धि (लगभग ३ करोड़ व्यक्ति देश में बेरोजगार है) का यही कारण है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने कहा कि, हमारे पास उपलब्ध उत्पादन के विविध तत्वों में पूंजी अत्यंत दुर्लभ तत्व है। अतः हमें अपने पास उपलब्ध पूंजी की उत्पादकता की प्रत्येक इकाई में वृद्धि करनी होगी। इसके लिये उत्पादन की तकनीक एवं उत्पादन की प्रणाली में सामन्जस्य करना होगा। इस प्रकार का विचार करते समय मात्र यंत्रों में परिवर्तन से कार्य-सम्भव नहीं होगा। अपितु हमें पूंजी, श्रम, व्यवस्थापन (प्रबंध), प्रशासन, उत्पादन की प्रणाली समेत समस्त तत्वों की वैज्ञानिक आधार पर पुर्नसंरचना करनी होगी। पं. दीनदयाल जी का इस सन्दर्भ में स्पष्ट कहना था कि हमें जापान के औद्योगीकरण के इस आदर्श को स्वीकार करना होगा।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने स्पष्ट करते हुये कहा कि जापान तथा यूरोप में पाये जाने वाले स्वरूप में व्यापक भिन्नता है। जापान में लघु एवं कुटीर उद्योगों, मध्यम उद्योगों की प्रणाली को संपूर्ण ग्रामीण अंचलों में फैला दिया है। जापान में जनसंख्या का दबाव अत्यधिक होने के बाद उसने श्रम शक्ति का समुचित प्रयोग किया, उत्पादन में निरंतर वृद्धि करते हुये, राष्ट्रीय एवं प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि की। नियोजन की ऐसी

नीति के कारण जापान को रूस के समान औद्योगिक विकास हेतु भारी मात्रा में पूंजी निवेश नहीं करना पड़ा। इंग्लैंड एवं जापान के सन्दर्भ में एक सर्वेक्षण के दौरान स्पष्ट हुआ कि, जापान की प्रतिव्यक्ति आय, इंग्लैंड की तुलना में तीन गुनी से भी ज्यादा है। यूरोप में जब औद्योगिक विकास के कारण सम्पूर्ण देश से किसानों को गांवों एवं खेती से अलग किया जा रहा था तब जापान ने अपने सामाजिक परिवेश को स्थिर रखा।

पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत विकेंद्रीकरण अर्थव्यवस्था की परिकल्पना का केंद्र 'व्यक्ति' एवं 'परिवार' था। जापान में पंडित जी की कल्पना को साकार स्वरूप प्राप्त हुआ है। जापान के आर्थिक विकास का केंद्र बिंदु यही 'परिवार' है। आज भी जापान में ३५ प्रतिशत के लगभग श्रमिक, कृषक अपने घरों के आसपास यंत्रों पर कार्यरत है। अमेरिका में यह अनुपात २ प्रतिशत तो इंग्लैंड में १ प्रतिशत से कम है। जबकि जापान के द्वारा उत्पादित माल का स्तर अमेरिका एवं इंग्लैंड से ज्यादा श्रेष्ठ है।

पं. दीनदयाल जी ने श्रम प्रधान प्रणाली के सन्दर्भ में विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हुये श्री लोकनाथन के १९४३ के निष्कर्षों को स्पष्ट किया। उन्होंने १०० रुपये का कपड़ा मिल, स्वचालित हाथ करघा एवं हाथ करघा से तैयार किया जाये तो पूंजी एवं श्रम की क्या स्थिति होगी सारणी से स्पष्ट है।

सारिणी

(रुपयों में)

विवरण	लगाई जाने वाली पूंजी	उपलब्ध मानव श्रम संख्या
१. मिलों में	१६४६	१.५४
२. स्वचालित करघों में	११२५	१२.५
३. हाथ करघों में	७७८	२२.५

पं.दीनदयाल जी ने स्पष्ट करते हुये कहा कि मिलों में १०० रुपये का कपड़ा तैयार करने के लिये १६४६/- रुपये की पूंजी की आवश्यकता होती है तथा इसमें १.५४ मानव श्रम की आवश्यकता होती है, जबकि इसी कपड़े को जब स्वचालित करघों में तैयार किया जाता है तो ११२५/- रुपये की आवश्यकता होती है तथा १२.५

मानव श्रम को कार्य उपलब्ध होता है। जबकि इसी मूल्य के कपड़े के निर्माण के लिये हाथकरघा ७७८/- रुपये मात्र लगाते है तथा २२.५ मानव श्रम को कार्य मिलता है। जो स्पष्ट करता है कि स्वदेशी एवं लघु कुटीर उद्योग कम पूंजी से ज्यादा रोजगार उपलब्ध कराते हैं। इस आधार पर पं. दीनदयाल जी ने निम्नांकित महत्वपूर्ण निष्कर्ष-प्रमाणित किये -

(१) बड़े कारखानों में उत्पादन तो अधिक होता है, परन्तु उतनी ही पूंजी का विनियोजन छोटे एवं लघु उद्योगों में किया जाये तो ४ गुना ज्यादा श्रम रोजगार मिलता है।

(२) लघु एवं कुटीर उद्योगों तथा हाथकरघों में पूंजी की प्रति ईकाई (Per-Unit) के पीछे मिल की अपेक्षा-२३ प्रतिशत से ज्यादा उत्पादन उपलब्ध होता है।

इस प्रकार दीनदयाल जी की स्पष्ट कल्पना थी कि भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास, उसका आधार उसके लघु एवं कुटीर उद्योगों तथा छोटे-छोटे उद्योगों में निहित है।

शिक्षा- पं दीनदयाल उपाध्याय ने शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषय पर भी स्पष्टता से, विचार व्यक्त करते हुये कहा था कि किसी भी समाज, राष्ट्र के विकास, उसकी सभ्यता एवं संस्कृति की पहचान शिक्षा एवं उस राष्ट्र के शिक्षित समाज से होती है। देश की आजादी के बाद यह होना चाहिये था कि जिस प्रकार हमने अपनी आर्थिक एवं विदेशी नीतियों में परिवर्तन किया। वैसा ही परिवर्तन तत्काल शिक्षा के क्षेत्र में भी होना चाहिये था। परन्तु दुर्भाग्य कि हम आज आजादी के ४८ वर्षों के बाद भी अंग्रेजों की उसी शिक्षा नीति एवं ढांचे को बनाये हैं। जिसने हमें गुलाम बनाया एवं वर्षों बनाये रखा।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने कहा कि, कोई भी अर्थव्यवस्था हो सबसे पूर्व वह अपनी शिक्षा नीति (Education policy) में परिवर्तन करती है। अमेरिका ने सबसे पहले शिक्षा के ढांचे में परिवर्तन किया। कनाडा, बिट्रेन, रूस इत्यादि ने भी सर्वप्रथम शिक्षा के संस्थागत ढांचे का निर्धारण किया। अभी-अभी रूस के विखंडन के पश्चात पुनः रूस में शिक्षा के ढांचे में परिवर्तन एवं सुधार पर विचार विमर्श जारी है। परन्तु भारत का दुर्भाग्य है कि हम ४८ वर्षों के बाद भी 'लार्ड मैकाले' की उसी शिक्षा नीति को आदर्श बनाये रखा है। जिसने देश को गुलामी की मानसिकता से मढ़ दिया। जिसने 'बाबू' संस्कृति पैदा कर देश के दिमागों को दिवालिया कर दिया।

आज देश में 'दून संस्कृति' की सभ्यता जानबूझकर पैदा की जा रही है। देश के प्रशासनिक, पुलिस, विदेश सेवा के अधिकारियों को विदेशों में ट्रेनिंग दी जाती है। जो विदेशों में जाकर वहां की आबो हवा में रहकर, वहां अपने मस्तिष्क को वैसा बनाकर, भारत में आकर यहां की समस्याओं को हल करने का प्रयास करते हैं। 'उत्तर' विदेश का, 'प्रश्न' देश का कैसे हल होगा 'प्रश्न'? यही- विचारणीय मुद्दा है? यही समस्या का असली कारण भी है?

आज देश में ग्रामीण अंचलों में प्राथमिक, माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा का अभाव है। पर्याप्त स्कूलों का अभाव, पर्याप्त शिक्षकों का अभाव, ब्लैक-बोर्ड जैसी आवश्यक वस्तु का अभाव जैसी न जाने कितनी बातें है। जिन पर सरकार ध्यान देने के स्थान पर 'दून संस्कृति' को बढ़ा रही है। इस देश के 'कुछ लोगों' के बच्चों के लिये तो सब कुछ है। लेकिन जहां सब कुछ है, उन ग्रामीण अंचलों, कस्बों में कुछ नहीं है। इस विरोधाभास ने देश के शिक्षा के ढांचे को ध्वस्त किया है। आज माध्यमिक, प्राथमिक, विद्यालयों एवं विश्व विद्यालयों के शिक्षकों के वेतन-मान में ५ से ६ गुना अंतर है। अंतर तो होना चाहिये, लेकिन अधिक अंतर ही शिक्षा को घटिया कर रहा है। शायद यह मजबूरी भी है इस सन्दर्भ में अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रसंग याद आता है जो इस समाज की व्यवस्था पर व्यंग्य भी करता है।

एक शाला में एक शिक्षक, छात्रों को बता रहे थे कि गंगा जी गंगोत्री से निकलती है तथा भोपाल में गिर जाती है। शिक्षक बता रहे थे छात्र समझ रहे थे। इतने में वहां ए.डी.आई.एस. महोदय आये। उन्होंने भी इस बात को सुना तो उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने प्रश्न किया कि आप-छात्रों को यह क्या समझा रहे हैं ? अरे गंगा का गंगोत्री से निकलता तो समझ में आता है। यह भोपाल में गिरने का क्या मतलब है ? तो शिक्षक महोदय ने हाथ जोड़कर विनम्रता से कहा कि अब २००/- रुपये में इसे बंगाल की खाडी में गिराना सम्भव नहीं है। यह हंसने का विषय भी हो सकता है, परन्तु यह इस देश की आर्थिक विषमता का भी नमूना है। यदि मजदूर को ठीक-ठीक मजदूरी मिलेगी तो कार्य भी ठीक-ठाक होगा। परन्तु यदि उसे मेहनत के अनुरूप पारिश्रमिक प्राप्त नहीं होगा। तो क्या स्थिति होगी ? यही बात होगी जो शिक्षक ने कही है ? हमें इस ओर गंभीरता से ध्यान देना होगा।

पं.दीनदयाल जी उपाध्याय ने कहा कि आज शिक्षा, शिक्षा न रहकर व्यवसाय हो गई है। शिक्षा तो एक प्रकार का पूंजी निर्माण (Capital formation) है। जो समाज

को भविष्य में अच्छे डॉक्टर, अच्छे प्राध्यापक, अच्छे इंजीनियर, अच्छे तकनीशियन देता है। अतः शिक्षा इस समाज में निशुल्क प्रदान की जानी चाहिये ? परन्तु जब शिक्षा का मूल्य लिया जाता हो, तो शिक्षा प्राप्ति के बाद वह व्यक्ति समाज सेवा करेगा या राष्ट्रीयता का उसमें भाव पैदा होगा। यह कैसे सम्भव है ? प्राचीन भारत में शिक्षा, समाज का दायित्व हुआ करती थी। विद्यार्थी गुरूकुल के आश्रमों में जाया करते थे। माता-पिता उन्हें गुरूकुलों को सौंप देते थे। विद्यार्थी पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये गुरूओं की आज्ञा के अनुसार आश्रमों को अपना घर समझकर विद्या अध्ययन करते थे। वे भोजन, वस्त्र, आवास की चिंता न करते हुये, अध्ययनरत रहते थे। आश्रम उनकी अन्य चिंताओं का समाधान करता था। समाज में कोई शिक्षार्थी, आचार्य भिक्षाटन को जिस घर में पहुंचता था। वह खाली हाथ नहीं आता था। शिक्षा समाज का दायित्व था। सो शिक्षा भी समाज के लिये लाभप्रद होती थी। आज मापदंड बदल गये है। फलस्वरूप प्राप्त निष्कर्ष भी गलत परिणाम दे रहे हैं ? शिक्षा का स्वरूप व्यावसायिक हो जाने से शिक्षा प्राप्ति के पश्चात वह विद्यार्थी भी इस समाज से व्यवसायिक सम्बन्ध बनाता है तथा सौदेबाजी करता है तो अन्यथा क्या है ? 'जैसा- बोया वैसा काटो'। आज विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में पाठ्यक्रम पूरे नहीं होते बल्कि 'ट्यूशन' के दौरान उन्हें पूर्ण किया जाता है। आज शिक्षा का रोजगार से कोई सहसम्बन्ध (correlation) नहीं है।

यह देश का, देश के विद्यार्थियों का दुर्भाग्य कहा जायेगा कि डिग्री लेने के बाद वह भटकता है। रोजगार प्राप्ति उसके लिये मृगमरीचिका साबित होती है। वह रोजगार की तलाश में जब ज्यादा परेशान होता है तो अंततः वह आत्म हत्या जैसी आत्मघाती सोच को अपना लेता है। यह देश का दुर्भाग्य कहा जायेगा कि शिक्षा उसे रोजगार देने के स्थान पर अभाव, तनाव, पलायन, नशाखोरी जैसी स्थिति देती है।

पं. दीनदयाल जी ने स्पष्ट करते हुये कहा कि शिक्षा वह आधार है जो देश की भावी पीढ़ी का निर्माण करती है। अतः इस पर किया जाने वाला विनियोजन (Investment) उचित एवं पर्याप्त होना चाहिये। यह हमारा दुर्भाग्य है कि आजादी के ४८ वर्षों बाद भी हम कुल बजट राशि का ३ प्रतिशत मात्र इस पर खर्च करते हैं। आज की शिक्षा विद्यार्थियों में 'बोझ' बनती जा रही है। चौथी पांचवी के विद्यार्थी का बस्ता उसके वजन से ज्यादा होता है। मुझे शिक्षक एवं विद्यार्थी का इस सन्दर्भ में संवाद याद आता है -

एक विश्वविद्यालय में अध्यापन के दौरान प्राध्यापक ने छात्र से कहा कि हमारे देश का मजदूर १३५ किलोग्राम का बोझ ढ़ोता है तथा विदेशी मजदूर मात्र ५५ किलोग्राम ? विद्यार्थी ने कहा महाशय इसका मतलब कि हमारे देश का मजदूर, विदेशी श्रमिक से ज्यादा मजबूत एवं मेहनती है। क्योंकि वह २ १/२ गुना ज्यादा बोझ उठाता है। तो शिक्षक ने कहा कि जिस देश का विद्यार्थी बचपन से अपने वजन से ज्यादा बस्ते का वजन ढोता है, वह तो ज्यादा मजबूत होगा। यह स्वाभाविक है। आज राष्ट्रीय स्तर पर गठित 'शिक्षा सुधार समिति' जिसके अध्यक्ष प्रो. यशपाल हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा कि आज की प्राथमिक शिक्षा में वजन तो ज्यादा है, परन्तु समझ कम। इस प्रवृति में सुधार लाना अत्यन्त आवश्यक है।

अतः पं. दीनदयाल जी का शिक्षा के सन्दर्भ में स्पष्ट सोच था कि स्वतंत्रता के पश्चात कुछ समय तक जिस प्रकार प्राथमिक एवं उच्च स्तरीय निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान था। यदि यह उच्च स्तर पर सम्भव न हो तो कम से कम प्राथमिक, माध्यमिक स्तर पर इस सोच को क्रियान्वित किया जाना चाहिये। शिक्षा पर किया विनियोजन अंततः समाज को ही प्राप्त होता है। जिस प्रकार हम पेड़ लगाकर उससे फल प्राप्त करते हैं। इसके लिये पेड़ हमसे कोई मूल्य प्राप्त नहीं करता है। वैसा ही हमें करना होगा। पं. दीनदयाल जी ने गंभीर बात करते हुये कहा कि मान लो कल विद्यार्थी शिक्षण शुल्क बहिष्कार कर दे अथवा वे शिक्षा के मूल्य के कारण पढ़ना बंद कर दें तो क्या होगा ? निश्चय ही गंभीर परिस्थितियों का निर्माण होगा, जो देश के लिऐ हितकर नहीं होगा। अतः शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र सभी के लिये हितकर हो। अन्यथा राष्ट्र कवि श्रीकृष्ण सरल की पंक्तियों की सार्थकता ज्यादा होगी-

जिस शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्र हित होता है।
वह शिक्षा ही सच्चे अर्थों में शिक्षा है।।
जो सभी तरह से पंगु बना कर रख दे, वह।
झोली में डाली जाने वाली भिक्षा है।।

चिकित्सा - पं. दीनदयाल उपाध्याय ने स्वास्थ्य के सन्दर्भ में भी स्पष्टता से विचार व्यक्त करते हुये कहा कि चिकित्सा भी एक प्रकार का पूंजी निर्माण है। उस पर जितने अच्छे ढंग से खर्च किया जायेगा। प्राप्त परिणाम भी अर्थव्यवस्था के उतने

अनुकूल होंगे। इससे भविष्य में समाज को स्वस्थ्य, प्रतिभाशाली व्यक्ति मिलते हैं। इससे उनकी कार्यक्षमता में अपेक्षित वृद्धि होने से राष्ट्रीय उत्पादकता (National Productivity) में वृद्धि होती है। इस प्रकार स्वस्थ्य व्यक्ति समाज के विकास में सहायक होता है। परन्तु यह दुर्भाग्य है कि हम चिकित्सा जैसे महत्वपूर्ण तत्व की भी निरंतर उपेक्षा कर रहे हैं तथा शिक्षा के सदृश्य ही स्वास्थ्य (चिकित्सा) पर भी शुल्क लिया जाता है। हमारे देश में पहले चिकित्सा निःशुल्क थी। परन्तु वर्तमान में तो प्रत्येक कार्य सशुल्क हो गया है। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने स्पष्ट करते हुये कहा कि आजकल मंदिर में जाने एवं भगवान के दर्शन के लिये भी शुल्क देना पड़ता है। तिरूपति बाला जी, वैष्णव देवी, मैहर का शारदा मंदिर समेत अनेक ऐसे धार्मिक स्थान हैं जहाँ ईश्वर दर्शन हेतु शुल्क देना पड़ता है। परन्तु इन स्थानों पर कुछ समय (तिरूपति बाला जी में १२ से १ बजे के दौरान) कोई शुल्क नहीं देना पड़ता। उसे 'धर्म दर्शन' का समय कहा जाता है। पंडित जी ने कहा कि मानो बाकी समय जो दर्शनार्थी दर्शन करते हैं वह अधर्म दर्शन है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने स्पष्ट करते हुये कहा कि चिकित्सा (स्वास्थ्य) जैसे तत्व की उपेक्षा कर प्रगति की कल्पना व्यर्थ है। यह देश का दुर्भाग्य है कि स्वास्थ्य जैसी महत्वपूर्ण मद पर आज १.६० प्रतिशत खर्च किया जा रहा है। इसे मजाक नहीं तो और क्या कहा जायेगा?

भारत वर्ष में प्रथम पंचवर्षीय योजना से वर्ष १९९१-९२ तक स्वास्थ्य सम्बन्धी मद पर खर्च की गई कुल राशि एवं उसका प्रतिशत निम्नांकित सारणी से स्पष्ट है -

योजना अवधि	कुल विनियोग	योजना में स्वास्थ्य पर विनियोग	कुल राशि पर विनियोजित स्वास्थ्य सम्बन्धी मद का प्रतिशत
प्रथम पंचवर्षीय योजना (१९५१-५६)	१९६०.००	६५.२०	३.३० प्रतिशत
द्वितीय पंचवर्षीय योजना (१९५६-६१)	४६७२.००	१४०.४८	३.०० प्रतिशत
तृतीय पंचवर्षीय योजना (१९६१-६६)	८५७६.५०	२२५.९०	२.६० प्रतिशत

वार्षिक योजनायें (१९६६-६९)	६६२५.४०	१४०.२०	२.१० प्रतिशत
चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (१९६९-७४)	१५,७७८.८०	३३५.५०	२.१० प्रतिशत
पाँचवी पंचवर्षीय योजना (१९७४-१९७९)	३९,४२६.२०	७६०.८०	१.९० प्रतिशत
वार्षिक योजनायें (१९७९-८०)	१२,१७६.५०	२२३.१०	१.८२ प्रतिशत
छठवीं पंचवर्षीय योजना (१९८०-८५)	१,०९,२९१.००	२०२५.२०	१.८० प्रतिशत
सातवीं पंचवर्षीय योजना (१९८५-९०)	२,१८,७२९.६०	३६८८.६०	१.७० प्रतिशत
वार्षिक योजनायें (१९९०.९१)	६१५१८.१०	९६०.९०	१.६० प्रतिशत
१९९१-९२ (out lay)	७२३१६.८०	११८५.५०	१.६० प्रतिशत

सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना में जहाँ बजट राशि का ३.३० प्रतिशत स्वास्थ्य सम्बन्धी मद पर खर्च किया। वह अनुपात क्रमशः कम होता गया तथा वर्ष १९९१-९२ के दौरान यह राशि घटकर मात्र १.६० प्रतिशत रह गई। जो यह स्पष्ट करती है कि सरकार का देश के नागरिकों के स्वास्थ्य एवं उन्होंने उपलब्ध कराई गई सुविधा का क्या मूल्य है? जिस देश में स्वास्थ्य जैसी महत्वपूर्ण मद पर १.६० प्रतिशत खर्च किया जाता हो, वहाँ उनकी कार्यकुशलता, उनकी उत्पादकता की क्या स्थिति होगी। यह स्वयं स्पष्ट हो जाता है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने स्पष्ट किया कि चिकित्सा पर किया व्यय एक प्रकार का दीर्घकालीन विनियोजन है। जो अंततः देश को बढ़ी कार्यकुशलता एवं बढ़ी उत्पादकता के रूप में प्राप्त होता है। आज देश की ५० करोड़ जनसंख्या गरीबी की जीवन रेखा के नीचे रहकर जीवन-यापन कर रही है। २ से ३ लाख व्यक्ति समुचित चिकित्सा के अभाव के कारण अंधे हैं तो १ करोड़ बच्चे कुपोषण के कारण अपंग हैं। इससे जहाँ एक ओर देश पर आर्थिक बोझ बढ़ता है वहीं दूसरी ओर देश की उत्पादकता प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होती है। अंततः यह आवश्यक एवं नितांत महत्वपूर्ण है कि

चिकित्सा (स्वास्थ्य) सम्बन्धी मदों पर विनियोजित राशि को बढ़ाया जाये। क्योंकि यह एक प्रकार का पूंजी निर्माण है। जिसका लाभ अंततः अर्थव्यवस्था को अनिवार्य रूप से प्राप्त होगी।

पूंजी निर्माण - पं. दीनदयाल उपाध्याय ने पूंजी निर्माण (Capital Formation) के सन्दर्भ में भी अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा कि पूंजी निर्माण किसी भी अर्द्ध विकसित अर्थव्यवस्था के लिये महत्वपूर्ण आधार तत्व होता है। प्रायः अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का भाग २ प्रकार की वस्तुओं में विनियोजित होता है -

(अ) उपभोक्ता वस्तुऐं (Consumer Goods) एवं

(ब) पूंजीगत वस्तुऐं (Capital Goods)।

उपभोक्ता वस्तुओं में राष्ट्रीय आय का जो भाग खर्च या विनियोजित किया जाता है। उसे उपभोक्ता वस्तुओं में किया जाने वाला विनियोजन कहा जाता है। उपभोक्ता वस्तुओं में विनियोजन से अभिप्राय - खाद्य तेल, अनाज, सीमेंट, कागज इत्यादि में किया जाने वाला विनियोजन है। इस प्रकार के उपभोक्ता वस्तुओं में जो विनियोग होता है वह प्रायः उपभोक्ता के उपभोग में समाप्त हो जाता है। इससे अर्थव्यवस्था को कोई 'अतिरिक्त बचत' प्राप्त नहीं होती है।

जबकि इसके विपरीत राष्ट्रीय आय का दूसरा भाग, अर्थव्यवस्था के अर्न्तगत पूंजीगत वस्तुओं में विनियोजित किया जाता है। इस प्रकार के विनियोजन को पूंजीगत वस्तुओं में किया जाने वाला विनियोग कहा जाता है। पूंजीगत विनियोजन के अर्न्तगत - नदी, घाटी योजनाओं (सिंचाई हेतु बड़े बांधों का निर्माण), लौह एवं इस्पात के कारखानों का निर्माण, शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा इत्यादि में किया गया विनियोजन पूंजीगत वस्तुओं में किया गया विनियोजन कहलाता है। पूंजीगत वस्तुओं में किये जाने वाले विनियोजन से अर्थव्यवस्था को जो 'अतिरेक' (Surplus) प्राप्त होता है इस 'अतिरेक' अथवा 'बचत' को ही अर्थशास्त्र में पूंजी निर्माण कहते हैं।

पूंजी निर्माण के उदाहरण निम्नांकित हैं यथा - नदी घाटी योजनाओं में विनियोजन (लघु एवं वृहद बांध निर्माण) से अच्छी सिंचाई सुविधायें प्राप्त होती हैं। जिससे भविष्य में राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होती है तथा जिससे बचत होती है। यही बचत पूंजी निर्माण करती है। इसी प्रकार लौह इस्पात के कारखानों में विनियोजन से भविष्य में निर्माण की संभावनाओं में वृद्धि होती है। जो विदेशी मुद्रा अर्जन करा सकने

में सहायक होते हैं। इससे भी पूंजी निर्माण सम्भव होता है। इसी तरह से शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा इत्यादि में जो प्रारंभिक विनियोजन होता है इससे भविष्य में अच्छे डॉक्टर, प्रोफेसर, चिकित्सक, इंजीनियर, तकनीशियन मिलते हैं जो अपनी सेवाऐं उपलब्ध कराके पूंजी निर्माण को सम्भव बनाते हैं।

इस प्रकार उपभोक्ता वस्तुओं का विनियोजन उपभोग में समाप्त हो जाता है जबकि पूंजीगत वस्तुओं के विनियोजन से जो अतिरेक अथवा बचत प्राप्त होती है उसे पूंजी निर्माण कहा जाता है। पूंजी निर्माण के सन्दर्भ में प्रो. रेगनर नर्कसे की परिभाषा महत्वपूर्ण है -

'पूंजी निर्माण से अभिप्राय समाज अपनी वर्तमान उत्पादन क्षमता को पूर्णतः उपभोग एवं तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नहीं जुटाता है बल्कि इसके एक भाग को पूंजीगत वस्तुओं अर्थात औजार एवं उपकरण, मशीन एवं परिवहन सुविधाओं, सयंत्र एवं साज सज्जा के निर्माण में लगा देता है। ये सब वास्तविक पूंजी के विभिन्न स्वरुप है। जो उत्पादन प्रयासों की एक क्षमता को बहुत बढ़ा सकते हैं।'

'The meaning of 'Capital Formation' is that Society does not apply the whole of its current Productive activity to the needs and desires for immediate consumption ; but directs a part of it to the making of capital goods, tools and Instruments, machine and transport facilities, plant and equipment all the various forms of real capital that can so greatly increase the efficiency of productive efforts.'

- (Ragner Narkse, Problems Of Capital Formation In Under Developed Countries P. 2)

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने पूंजी निर्माण के सन्दर्भ में स्पष्ट करते हुये कहा कि, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था एवं समाजवादी अर्थव्यवस्था दोनों में पूंजी निर्माण की प्रक्रिया सम्पन्न होती है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उद्योगपति या व्यापारी 'अतिरिक्त मूल्य' के सहारे पूंजी निर्माण करता है तो वहीं समाजवादी या साम्यवादी व्यवस्था में यह कार्य 'राज्य' के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इन दोनों व्यवस्थाओं का दोष यह है कि जहाँ पूंजीवादी व्यवस्था में पूंजी निर्माण या बचत उद्योगपति को प्राप्त होती है तो वहीं साम्यवादी व्यवस्था में यह लाभ राज्य को प्राप्त होता है। दोनों व्यवस्थाओं में 'श्रमिक' को इस

लाभ से वंचित रखा जाता है। पं. दीनदयाल जी का स्पष्ट कहना था कि विकेन्द्रित व्यवस्था या विकेन्द्रीयकरण को स्वीकार करते हुये इस अतिरिक्त मूल्य में श्रमिकों की यदि भागीदारी होती है तो बिना किसी तनाव, तालाबंदी, हड़ताल इत्यादि के विकास की प्रक्रिया सुचारु रूप से गतिमान होती है।

इस प्रकार पूंजी निर्माण अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व होता है। जो किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अर्द्ध विकसित अर्थव्यवस्थाओं, गरीब या पिछड़े देशों में अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन का प्रमुख कारण पूंजी निर्माण की दर में निम्नता मानी जाती है। भारतीय अर्थव्यवस्था भी इसी श्रेणी में सम्मिलित होती है। भारत में पूंजी निर्माण से सम्बन्धित आँकड़ों को निम्नांकित सारणी से स्पष्ट किया गया है -

सारणी

भारत में पूंजी निर्माण

वर्ष (Year)	सकल घरेलू बचत (Gross Domestic Savings)	सकल घरेलू पूंजी निर्माण (Gross Domestic Capital Formation)
१९५०-५१	१०.२	१०.०
१९५५-५६	१३.९	१४.३
१९६०-६१	१३.७	१६.९
१९६८-६९	१४.१	१५.४
१९७३-७४	१९.३	२०.०
१९८०.८१	२१.२	२२.७
१९८४-८५	१९.५	२१.८
१९८७-८८	२०.२	२२.१
१९८८-८९	२१.५	२३.१

उपरोक्त आंकड़े अर्थव्यवस्था में पूंजी निर्माण की गति को स्पष्ट करते हैं। भारत में पूंजी निर्माण की गति अत्यन्त निम्न है। घरेलू बचत को प्रोत्साहित कर इसमें

वृद्धि की जा सकती है। पूंजी निर्माण हेतु बचत आवश्यक है। जिसका भारतीय अर्थव्यवस्था में अभाव है। इसे सुदूर अंचलों, ग्रामीण क्षेत्र में व्यापकता प्रदान करनी होगी। अप्रत्यक्ष करों के ढाँचे में परिवर्तन करना होगा, व्ययों में कमी करना होगी, तथा देश में मूल्य में स्थिरता को लाना होगा। इन्हीं उपायों को लागू करते हुये, देश में पूंजी निर्माण गति बढ़ाई जा सकती है। तभी अर्थव्यवस्था को गरीबी के चक्र से बाहर निकालते हुये विकसित देशों की श्रेणी में लाया जा सकता है।

विदेशी पूंजी - पं. दीनदयाल उपाध्याय ने विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को दी जाने वाली 'विदेशी पूंजी' के सन्दर्भ में भी स्पष्टता से अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा कि, गलत नियोजन, पूंजी प्रधान योजनाओं में वृद्धि, वृहद औद्योगीकरण ने विदेशी सहायता लेने की बाध्यता उत्पन्न की तथा हमारे स्वावलंबन एवं स्वदेशी की भावना को चोट पहुंचाई। उन्होंने स्पष्ट करते हुये कहा कि विदेशी पूंजी प्राप्ति के निम्नलिखित स्त्रोत हैं -

(i) विदेशी उद्योगपतियों से व्यक्तिगत रूप से प्राप्त सहायता।

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा संस्थाओं से प्राप्त सहायता एवं

(iii) विदेशी सरकारों से प्राप्त सहायता।

उपरोक्त विदेशी सहायता के सन्दर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुये पं. दीनदयाल जी ने कहा कि, 'उपनिवेशवाद एवं राजनैतिक गुलामी का स्थान 'आर्थिक सहायता' ने ले लिया है। विदेशी सहायता के नाम पर विकसित देश विकासशील देशों पर नियंत्रण करते जा रहे हैं प्रत्यक्ष नियंत्रण की अपेक्षा यह ज्यादा सरल कार्य है। न चाहते हुये भी हम इसे स्वीकार करने को मजबूर हैं। किंतु यदि हमने इस ओर ध्यान नहीं दिया तो होने वाली चूक गंभीर परिणामों को जन्म देगी।' पं. दीनदयाल उपाध्याय ने पी.एल. ४८० के नाम पर दी गई विदेशी सहायता एवं उसके दुष्परिणामों की विस्तृत विवेचना करते हुये कहा कि यह सोची समझी राजनीति के तहत देश को गुलामी की जंजीरों में बांधने का आधुनिक षड़यंत्र है।

पी.एल. ४८० बनाम आर्थिक दबाव - पं. दीनदयाल उपाध्याय ने कृषि के सन्दर्भ में स्पष्टता से मत व्यक्त करते हुये कहा कि बिना कृषि में स्वावलंबन लाये देश का कल्याण सम्भव नहीं है। यदि इस सन्दर्भ की निरंतर उपेक्षा की गई तो हमारी स्वतंत्रता को भी भविष्य में खतरा पैदा हो सकता है। उन्होंने स्पष्ट करते हुये कहा

कि पं. जवाहर लाल नेहरु ने १९५१ में संसद में यह घोषणा की थी कि 'अब भारत विदेशों से कोई आयात (खाद्यान) नहीं करेगा।' पं. नेहरू देश के प्रधानमंत्री के साथ-साथ योजना आयोग के अध्यक्ष भी थे। किन्तु इस योजना की धज्जियाँ तब उड़ीं जब १९५४ से १९६६ के १२ वर्षों में अमरीका, कनाडा आदि देशों से करोड़ों रुपयों का खाद्यान खरीदा गया। वर्ष १९५६ माह अगस्त से मई १९६० के पौने चार वर्षों के समय में अमेरिका से १०६७ करोड़ रुपयों का खाद्यान आयात किया गया, जबकि भारत की प्रथम पंचवर्षीय योंजना केवल २ हजार करोड़ रुपये की थी।

पं. दीनदयाल उपाध्याय सम्पूर्ण विश्व में एक भिखारी के सदृश्य देश की स्थिति से काफी चिंतित थे। वे इसे समाप्त कर देश को स्वावलंबी बनाने के लिये खाद्यान के सन्दर्भ में दीर्घकालीन योजना को लेने के पक्षधर थे। उन्होंने कहा कि यह हमारा दुर्भाग्य एवं सरकार के गलत निर्णय का परिणाम की हम स्वावलंबन के स्थान पर पी.एल. ४८० पर अवलंबित हैं। जो भविष्य में गंभीर दुष्परिणाम देगा।

उन्होंने विदेशी सहायता के गंभीर दुष्परिणामों को स्पष्ट करते हुये कहा कि भारतीय अर्थव्यवस्था पर विदेशी दबाव निरंतर बना रहेगा। इससे हमें न चाहते हुये भी चुपचाप इन देशों के अनुकूल निर्णय लेने होंगे। खाद्यान पर बाहय निर्भरता से कभी-कभी खाद्य संकट उत्पन्न हो सकता है। उनकी भविष्यवाणी पूर्णतः सत्य सिद्ध हुई। इस सन्दर्भ में निम्नांकित उदाहरणों (घटनाओं) को उल्लेखित किया जा सकता है -

१९४५ में जब द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त हुआ, तब भारत के पास करोड़ों रुपये का विदेशी कोष था। १९५०-५१ प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान यह विदेशी कोष ९५१ करोड़ रुपये था। जो शनै-शनै कम होता चला गया एवं हमें अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये क्रमशः बाह्य सहायता पर निर्भर होते जाना पड़ा। स्वाधीनता के पश्चात आज हम २ लाख ७६ हजार करोड़ रुपयों के विदेशी कर्जदार हो गये हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंत तक हमने ३२४३ करोड़ रुपये फूंक दिये और हम कर्जदार होते चले गये। इन स्थितियों के लिये हमारा गलत नियोजन भी कुछ हद तक जिम्मेदार है। सन् १९८० से १९९० इन दस वर्षों में भारत पर २,६३,००० करोड़ रुपयों का ऋण हो गया। चौथी योजना में हमारा लक्ष्य स्वावलंबन था, परन्तु हम धीरे-धीरे विदेशी ऋण ग्रस्तता के जाल में उलझते गये। आज हमारी प्रत्येक योजना विदेशी ऋणों पर आधारित है तथा कुल बजट का ५० प्रतिशत ऋणों की किश्तों की

अदायगी में होता है। इस स्थिति में सुधार के स्थान पर हम निरंतर कर्ज लेते जा रहे हैं, हम पीछे मुड़कर नहीं देख रहे। इस सन्दर्भ में यह श्लोक याद आता है -

'यावत जीवेत, सुखम जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।'

कि जब तक जिओ, सुख से जिओ। ऋण लेकर घी पियो। इस जीवन को तो मिट्टी में मिलना है तथा हिन्दू संस्कृति के अनुसार पुनः पैदा होना है तो चिंता की कोई बात नहीं है। आज इस स्थिति से प्रत्येक भारतीय बच्चा पैदा होते ही ६०००/- रुपये का कर्ज लेकर पैदा हो रहा है।

पं. दीनदयाल जी ने विदेशी सहायता एवं इसके बाद के राजनैतिक दवाबों से परिचित थे। इसलिये बार-बार चेतावनी देते स्पष्ट करते थे कि इस जाल को तोड़ा जाये। यह बात सन् १९६५ के युद्ध के दौरान सही भी हुई जब भारत-पाकिस्तान युद्ध के दौरान पी.एल. ४८० के तहत् अनाज (खाद्यान्न) की सहायता को अचानक रोककर भारत को उलझन में डाल दिया गया था। विदेशी सहायता के सन्दर्भ में पश्चिम के विख्यात अर्थशास्त्री बाअर का कथन ध्यान देने योग्य है -

'आजकल सभी व्यवहारों में राजनैतिक उद्देश्य का विशेष महत्व होता है। इसलिये सहायता के रूप में भेजी गई सामग्री का राजनैतिक परिणाम महत्वपूर्ण होते हैं। सहायता के आवरण के नीचे दाता राष्ट्र का ऋणी राष्ट्र के आंतरिक व्यवहार में हस्तक्षेप होता ही रहता है।'

वर्ष १९६२ में अमेरिकी सीनेट की विदेश व्यवहार समिति ने भारत को दी जाने वाली लगभग ७३ करोड़ डालर की सहायता में लगभग २५% की कटौती की थी। प्रो फुलब्राइट जो समिति के अध्यक्ष एवं भारत के हितैषी भी थे। इस संदर्भ को स्पष्ट हुए कहा था कि -

'श्री कृष्णामेनन अमेरिका से असहयोग करते थे, भारत ने गोवा में आक्रमण किया एवं रूस से सैन्य सामग्री खरीदी। अतः जब नेहरू एवं मेनन इस नीति पर चल रहे थे तो तय किया गया कि भारत को सहायता न दी जाये।'

१९६५ में जब पाकिस्तान से भारत का युद्ध प्रारंभ हुआ तो अमेरिका ने सभी आर्थिक सहायता बंद कर देश के प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री की अमेरिका यात्रा को एकतरफा निरस्त कर दिया। परन्तु श्री लालबहादुर शास्त्री ने स्वाभिमान को बनाये

रखा। उन्होंने स्वयं अमेरिका यात्रा स्थगित की एवं देशवासियों से एक समय भूखे रहने का आग्रह कर अमेरिका को करारा जवाब दिया। पं. दीनदयाल जी ने श्री शास्त्री के इस निर्णय का स्वागत किया एवं कहा कि सारा विश्व भी खाद्यान सहायता रोक दें, तो भारत का किसान, मजदूर देश की खाद्य आवश्यकता की पूर्ति कर लेगा। बाद के वर्षों में यह स्थिति सकारात्मक रूप से स्पष्ट होती दिखाई दी। परन्तु पुनः हम ऋणो के पाश्चात्य जाल में फंसते जा रहे हैं।

विदेशी दबाव बनाम रुपये का अवमूल्यन - पं. दीनदयाल उपाध्याय ने मुद्रा के अवमूल्यन (Devaluation of Money) के सन्दर्भ में स्पष्ट करते हुये कहा कि, मुद्रा का अवमूल्यन देश के आर्थिक इतिहास की महत्वपूर्ण घटना होती है। अवमूल्यन का देश के आयात-व्यापार, देश के निर्यात व्यापार पर ही प्रभाव नहीं पड़ता बल्कि इससे कृषि उत्पादन, औद्योगीकरण, मूल्यों, मुद्रास्फीति समेत अनेक क्षेत्र व्यापक रूप से प्रभावित होते हैं। देश के आर्थिक विकास एवं नियोजन से इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। अवमूल्यन को आर्थिक क्षेत्र में न होने वाली घटना कहा जाता है। जब तमाम प्रयास या रास्ते बंद हो जाते हैं तब अवमूल्यन का सहारा लिया जाता है।

पं. दीनदयाल जी ने देश में ५ जून १९६६ के घटना क्रम को उल्लेखित करते हुये कहा कि, सरकार ने रुपये का मूल्य विदेशी मुद्रा में ३६.५ प्रतिशत कम कर दिया। सरकार द्वारा स्पष्टीकरण दिया गया कि, अगर अवमूल्यन को नहीं किया गया तो और अधिक विदेशी सहायता मिलना बंद हो जायेगी। इस पर पं. दीनदयाल जी ने तीखी टिप्पणी करते हुये कहा कि -

'एक ओर भारत सरकार विदेशी सहायता पर कम से कम निर्भरता की बात करती है तो दूसरी ओर विदेशी सहायता के लिये देश की मुद्रा का अवमूल्यन करती है। इसे चरम सीमा का परावलम्बन एवं देश का आर्थिक दिवालियापन कहा जाये तो क्या अतिशयोक्ति है। '

उस समय सरकार द्वारा बार-बार झूठी घोषणायें की गईं कि अवमूल्यन विदेशी दबाव के तहत् नहीं किया गया। परन्तु दीनदयाल जी ने वास्तविकता को उजागर कर सरकार के दावे को ध्वस्त कर दिया। उन्होंने 'अवमूल्यन एक महानपतन' के तहत् लिखित पुस्तक में कहा कि 'अवमूल्यन विदेशी दबावों का परिणाम है। सरकार कितनी भी बातें करे वह निरर्थक हैं, उसके दावे खोखले हैं। ' पं. उपाध्याय के कथन की सत्यता, केन्द्रीय वित्त मंत्री श्री टी.टी. कृष्णामाचारी के कांग्रेस कार्यकारणी में दिये

इस कथन से सिद्ध होती है कि 'सरकार पर विगत २ वर्षों से विश्व बैंक एवं अमरीका सरकार का निरंतर दबाव था कि हम मुद्रा का अवमूल्यन करें और हमें ऐसा करना पड़ा।

श्री कृष्णामाचारी स्वयं इस अवमूल्यन के विरोधी थे। केन्द्र सरकार के वाणिज्य मंत्रालय का उन्हें पूर्ण समर्थन प्राप्त था। इस सन्दर्भ में वाणिज्य मंत्रालय ने विस्तृत योजना तैयार करते हुये चेतावनी दी थी कि, इसके कारण देश में आर्थिक विषमता और विस्तृत होगी एवं देश आर्थिक चक्रव्यूह में फंस जायेगा। श्री लालबहादुर शास्त्री के निधन ने श्री कृष्णामाचारी की योजना को खत्म कर दिया। देश की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी बनीं वे तत्काल परिणामों की पक्षधर थीं। उन्होंने विदेशी सहायता लेनी प्रारंभ की। उन्होंने अमेरिका, विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की शर्तों को स्वीकार किया। फलस्वरूप इन देशों एवं संस्थाओं के अनुसार ५ जून १९६६ को वित्त मंत्री सचिन चौधरी ने स्वर्ण माध्यम में ३६.५ प्रतिशत, तो डॉलर तथा पौंड मुद्रा में ६७.५ प्रतिशत का प्रचंड अवमूल्यन घोषित किया।

इस अवमूल्यन के सन्दर्भ में सरकार ने तर्क दिया कि इससे हमारे निर्यातों में व्यापक वृद्धि होगी, जो विदेशी मुद्रा अर्जन का साधन बनेंगे एवं देश का त्वरित विकास होगा। परन्तु सरकार की यह अवधारणा गलत सिद्ध हुई। पं. दीनदयाल जी ने कहा कि 'अवमूलयन के पश्चात भी निर्यातों में कोई वृद्धि नहीं हुई। मुद्रा स्फीति बढ़ती गई, बाजारों के मूल्यों में निरंतर वृद्धि होती गई। सामग्री में कमी एवं उत्पादन क्षमता में गिरावट आती गई। उत्पादन में वृद्धि के स्थान पर कालाबाजारी, जमाखोरी, मंहगाई में निरंतर वृद्धि की स्थितियाँ परिलक्षित होती गईं। सटोरियों एवं तस्करों के कार्यों में निरंतर वृद्धि होती गई। इसका परिणाम कि हमें १९६६ में प्रकाशित चौथी पंचवर्षीय योजना को निरस्त करना पड़ा। १२ जून १९६६ को 'आर्गनाइजर' में दीनदयाल जी ने स्पष्टता से लिखा कि, रुपये के साथ-साथ हमारे देश का भी अवमूल्यन हो गया है। यह मानकर कि यह अर्थव्यवस्था में स्फूर्ति उत्पन्न करता है। इसे मान भी लिया जाये तो भी एक भयंकर बात यह है कि हमें अवमूल्यन की लत (आदत) पड़ जायेगी।'

पं. दीनदयाल जी के उक्त कथन को देखा जाये तो स्पष्ट है कि वास्तव में सरकार को अवमूल्यन की लत सी पड़ गई है। राजीव गांधी जब देश के प्रधान मंत्री बने तो इस (अवमूल्यन) को सहारा बनाया गया। देश के वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरसिम्हाराव के कार्यकाल में तो २४ घंटे में २ बार अवमूल्यन कर ऐतिहासिक कार्य

किया। विगत ४ वर्षों (१९९१ से १९९४) के मध्य तो निरंतर रुपये की कीमत में गिरावट आती गई। जो वर्ष १९९१ में ९.५६ पैसा थी। जो १९९३ जनवरी माह में घटकर ८.४२ पैसा हुई। दिसम्बर १९९३ में घटकर ७.६८ पैसे हुई तो फरवरी १९९४ में ७.६० पैसा हुई।

इस प्रकार 'अवमूल्यन' ने देश की आर्थिक व्यवस्था में असंतुलन उत्पन्न किया एवं देश को परावलंबी बनाने का आधार तैयार किया। कलकत्ता के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. डॉ. मानहोत की अवमूल्यन के सन्दर्भ में टिप्पणी महत्वपूर्ण है -

'अवमूल्यन विकास के निदान का निकृष्ट उपचार था।'

विदेशी पूंजी वापिसी बनाम चक्रव्यूह -पं. दीनदयाल उपाध्याय ने विदेशी पूंजी वापिसी के सन्दर्भ में स्पष्ट करते हुये कहा कि, ऋण प्राप्ति के पश्चात उसे वापिस करने हेतु निर्यात में वृद्धि हुई है। अनेक वस्तुओं का निर्यात हमने बढ़ाया है। किन्तु इस प्रक्रिया के तहत् हमने जनसामान्य के दैनिक जीवन से जुड़ी अनेकानेक आवश्यक वस्तुओं का जरुरत से ज्यादा निर्यात करना प्रारंभ कर दिया है। परिणाम हमारे देश में उत्पादित या निर्मित वस्तु का उपभोग करने से देशवासी वंचित हो गये हैं। जो दुर्भाग्यपूर्ण हैं। हम अभिमन्यु की तरह ऐसे आर्थिक चक्रव्यूह में फंस गये हैं। जहाँ से निकलना फिलहाल असम्भव है। सरकार के लिये अपरिहार्य हो गया है कि हम कैसे भी विदेशी मुद्रा प्राप्त करें।

इस सन्दर्भ में पं. दीनदयाल जी ने अनेकानेक दृष्टांत प्रस्तुत किये। आज देश में खाने के तेल, दालों, चांवल, गेहूं की कीमतों में वृद्धि हो गई है। किन्तु हम इन वस्तुओं का निरंतर निर्यात बढ़ाते जा रहे हैं। देश के ७० से ८० प्रतिशत लोग पैरों में चप्पल नहीं पहन पाते, किन्तु हम देश से चमड़ों एवं जूतों को बाहर भेजे जा रहे हैं। देश में लाखों-करोड़ों लोगों को नंगे बदन रहना पड़ रहा है, किन्तु हम हाथकरघा एवं मिलों से निर्मित कपड़ा बाहर भेजे जा रहे हैं। देश में हरी सब्जियों की जनसामान्य को पर्याप्त उपलब्धि नहीं किन्तु हम अरब देशों को इनका सतत् निर्यात कर रहे हैं। देश के पशुधन (गाय, बैल, भैंस, बकरी इत्यादि) को बूचड़ खानों में भेज कर विदेशों को मांस मटन भेजा जा रहा है। देश का नागरिक भूखा है और हम दूध-दही का निर्यात कर रहे हैं। इस प्रकार के भयानक परिणामों के लिऐ हम स्वतः जिम्मेदार हैं क्योंकि हमने बोतल से भूत (जिन्न) को निकाला है। सो परिणाम भी हमें भुगतना होगा।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने इस भयानक स्थिति को स्पष्ट करते हुये, एक जनसभा में कहा कि -

'आज डालर के लिये हम ऐसे पागल हुये जा रहे हैं मानों डालर हमारा भगवान हो। इसे प्राप्ति के लिये चूहे, मेंढ़क से लेकर, जिसे हम पवित्र एवं माता मानते हैं ऐसी गाय को भी मारकर विदेशों को निर्यात कर रहे हैं। ऐसे डालर से हम विदेशी दूध के चूर्ण (मिल्क पाउडर) के डिब्बे एवं बाल आहार खरीद रहे हैं। गाय का चमड़ा विदेशों को भेजकर प्राप्त डालर से उर्वरकों का आयात कर रहे हैं।

इस प्रकार जहाँ एक ओर हमारे प्रचलित मापदंड गलत हैं, वहीं दूसरी ओर विदेशी व्यापार की नीतियाँ भ्रमित करने वाली हैं। जब तक जनसामान्य का कल्याण नहीं होता, किया गया आर्थिक विकास बेमानी है। दीनदयाल जी ने इसे स्पष्ट करते हुये तीखा व्यंग्य किया कि -

'सिर की जुल्फों (बालों) को बढ़ाने से यह नहीं हो जाता कि व्यक्ति का स्वास्थ्य भी उत्तम है।'

पं. दीनदयाल जी ने भारतीय जनसंघ के लखनऊ के अभ्यास शिविर में कार्यकर्त्ताओं को संबोधित करते हुये, आव्हान किया कि, 'विदेशी सहायता की बैसाखियों को फेंक देने से ही भारत का कल्याण सम्भव है। क्योंकि विदेशी सहायता ने हमारी आदतों को खराब कर दिया है, हमें परावलंबी बना दिया है। हम स्वदेशी के महामंत्र को भूल गये हैं। हम उसे भुला दे, यही विदेशी योजनाकारों की योजना है। भारत के आर्थिक विकास के प्रश्न विदेशी पूंजी की कमी के कारण नहीं उलझे बल्कि विदेशी सहायता की अधिकता ने हमें परावलंबी बना दिया है। यह ऐसा जहर है, जो धीरे-धीरे देश की व्यवस्था रूपी नसों में फैल रहा है। यह सहायता विदेशों की मंदी, बेरोजगारी एवं आर्थिक प्रश्नों को हल कर रही है।'

इस प्रकार विदेशी पूंजी, विदेशी सहायता ने इस देश में पंगुता की स्थिति पैदा कर दी है। इस स्थिति में हमें मजबूर होकर सहारा लेना पड़ रहा है। विदेशी सहायता यदि औषधि की अल्प मात्रा के रूप में प्राप्त हो तो वह तो स्वास्थ्य हेतु (देश के आर्थिक विकास) सर्वोत्तम है। किन्तु जिस प्रकार बड़ी मात्रा में औषधि का स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है वैसा ही इस विदेशी पूंजी का हो रहा है। अतः इसे नियंत्रित एवं नियमित करना होगा अन्यथा देश की स्थिति फिलीपींस, इंडोनेशिया, ब्राजील,

यूगोस्लाविया, चिली और घाना जैसी हो जायेगी जो विकसित देशों के पूर्णतः गुलाम हो गये हैं।

इस प्रकार पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने कृषि, औद्योगीकरण, चिकित्सा, शिक्षा, विदेशी पूंजी, पूंजी निर्माण समेत उच्च एवं न्यूनतम जीवन स्तर, नियोजन आदि अनेकानेक विषयों पर अपने विचार बड़ी स्पष्टता से व्यक्त करते हुये कहा कि प्रत्येक दशा में हमें अपनी स्वयं की तकनीक एवं स्वावलंबन को ध्यान में रखना होगा। भारतीय अर्थव्यवस्था एवं उसकी जुड़ी समस्याओं का समाधान स्वयं यहाँ उपलब्ध है। पश्चिमी दर्शन एवं पाश्चात्य सोच इन समस्याओं का निदान नहीं अपितु इन्हें और ज्यादा उलझाने वाला है। हमें अपनी राष्ट्रीय समस्याओं समेत विश्व समस्याओं का समाधान यदि करना है, तो वह एकात्म दर्शन से ही सम्भव है। जो पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अपने एकात्म मानववाद दर्शन के रूप में हमें दिया है।

❑ ❑ ❑

पं.दीनदयाल उपाध्याय द्वारा लिखित साहित्य

- जगद्गुरु श्री शंकराचार्य
- सम्राट चंद्रगुप्त
- एकात्म मानववाद दर्शन
- राष्ट्र धर्म इतिहास -
    - (१) भारतीय राष्ट्र धारा का पुण्य प्रवाह (बुद्ध से शंकराचार्य तक)
    - (२) भगवान कृष्ण
    - (३) चिति (संस्कृत)
    - (४) राष्ट्र-जीवन की समस्यायें (राजनीति)
    - (५) भारतीय राजनीति की मौलिक भूले
- पांचजन्य इतिहास -
    - (१) लोक मान्य तिलक की राजनीति
    - (२) १४४ (धारा १४४ के इतिहास एवं उपयोग पर व्यंग्य)
    - (३) राजनीतिक आय-व्यय
    - (४) जीवन का ध्येय राष्ट्रीय आत्मानुभूति
    - (५) विजयादशमी
    - (६) भारतीय संविधान पर एक दृष्टि
      (कठोर एवं वृहद् संविधान के निर्माण के स्थान पर
      संवैधानिक विकास प्रक्रिया प्रारंभ)
- अध्यक्षीय - भाषण

सन्दर्भ ग्रंथ - सूची

१.	एकात्म-मानववाद	- पं. दीनदयाल उपाध्याय
२.	पोलिटिकल डायरी	- पं. दीनदयाल उपाध्याय
३.	राष्ट्र जीवन की समस्यायें	- पं. दीनदयाल उपाध्याय
४.	राष्ट्र चिंतन	- पं. दीनदयाल उपाध्याय
५.	तत्व जिज्ञासा (खंड १)	- श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी
६.	एकात्म मानव दर्शन (खंड २)	- श्री विनायक वासुदेव नेने
७.	एकात्म मानव दर्शन (खंड ३)	- श्री भालचंद्र कृष्णा जी केलकर
८.	एकात्म ..नव दर्शन (खंड ४)	- श्री शरद अनंत कुलकर्णी
९.	एकात्म मानव दर्शन (खंड ५)	- श्री चंद्र शेखर परमानंद भिशीकर
१०.	एकात्म मानव दर्शन (खंड ६)	- श्री बलवंत नारायण जोग
११.	एकात्म मानव दर्शन (खंड ७)	- श्री विश्वनाथ नारायण देवधर
१२.	भारतीय अर्थशास्त्र	- रुद्रदत्त सुन्दरम्
१३.	हिन्दुस्तान का राष्ट्रीयत्व	- ज.द. जोगलेकर
१४.	हिन्दुत्व	- वि.दा. सावरकर
१५.	चिरंतन राष्ट्र जीवन	- दत्तोपंत ठेंगड़ी
१६.	अनेकता में एकता	- प्रो. राजेन्द्र सिंह एवं श्री सुदर्शन जी
१७.	हिन्दू चिंतन एवं चुनौतियां	- प्रो. राजेन्द्र सिंह श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी श्री सुदर्शन जी
१८.	पं.दीनदयाल उपाध्याय	- कमल किशोर गोयनका
१९.	पांचजन्य दीपावली विशेषांक	- नवम्बर १९९३
२०.	पं. दीनदयाल उपाध्याय	- नं. मध्वराव

२१. एकात्मता के पुजारी दीनदयाल उपाध्याय	-	भाऊराव देवरस, डॉ. शिव कुमार अस्थाना
२२. भारतीय अर्थशास्त्र	-	डॉ. जगदीश प्रसाद चौरसिया
२३. अब भारत को उठना होगा	-	मिलाप कोठारी
२४. सरल महाकाव्य ग्रंथावली	-	श्री कृष्ण सरल
२५. भारत	-	१९९१ एवं १९९२